राजस्था ... ाहित्य

'राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा', 'डिंगल में वीररस'
'राजस्थान मे हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की
खोज' आदि ग्रन्थों के रचयिता—

डा० मोतीलाल मेनारिया

शक १८८२

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशकीय

हिंदी भाषा और साहित्य से अपभ्रश, ब्रजभाषा [पिंगल], राजस्थानी [डिंगल], अवधी, मैथिली और भोजपुरी आदि भाषाओं और साहित्य का बोध होता है। किन्तु अब तक हिन्दी साहित्य के नाम पर जो इतिहास लिखे गए हैं उनमे अपभ्रश, ब्रज, अवधी और खडी बोली के साहित्य पर ही अधिक विचार हुआ है। इन भाषाओ मे भी ब्रजभाषा और खडी बोली (आधुनिक हिन्दी गद्य) पर ही साहित्यकारो की दृष्टि गई है। प्रान्त-भेद से हिन्दी की विभिन्न बोलियो ने भाषा और साहित्य का रूप धारण किया, तथा उनमे साहित्य की वृद्धि भी हुई। किन्तु अभी तक हिन्दी की इन साहित्य-विभूतियो पर विद्वानो की दृष्टि इतिहास लिखने की दृष्टि से फिरी ही नही। ब्रजभाषा जैसे सुप्रसिद्ध साहित्य पर भी आज तक स्वतत्र रूप से कोई इतिहास नही लिखा गया है।

प्रसन्नता का विषय है कि अब इस आवश्यक अग की ओर साहित्यकारो का ध्यान जाने लगा है। इस दृष्टि से श्री मोतीलाल मेनारिया कृत 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' पुस्तक का प्रकाशन हिन्दी जगत् की महत्वपूर्ण घटना है। राजस्थानी भाषा और साहित्य का महत्व, उसके साहित्य की प्रचुरता एव श्रेष्ठता आदि का परिचय तो श्री मेनारिया जी की इस पुस्तक से हो ही जायगा, अत यहाँ इस साहित्य का विवेचन पुनरावृत्ति मात्र होगा।

सम्मेलन को विश्वास है कि हिन्दी साहित्य के समीक्षक इस ग्रथ से हिन्दी की अन्य भाषाओ और उनके साहित्य पर इस प्रकार के ग्रथ लिखने की प्रेरणा प्राप्त करेंगे। ऐसे सत्प्रयत्नो से हिन्दी की सर्वांगीण समृद्धि

तो होगी ही, साथ ही अहिन्दी जगत् को हिन्दी भाषा के विभिन्न स्वरूपों और प्रकृतियों की जानकारी भी होती रहेगी।

सम्मेलन श्री मेनारिया जी के इस मौलिक प्रयत्न के लिये उन्हें पुनः धन्यवाद देता है।

रामनवमी, २००६ साहित्य मन्त्री
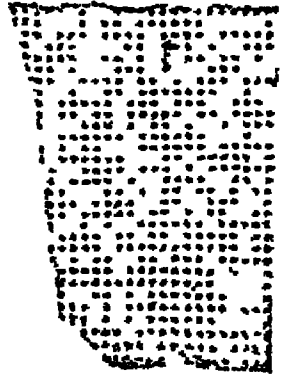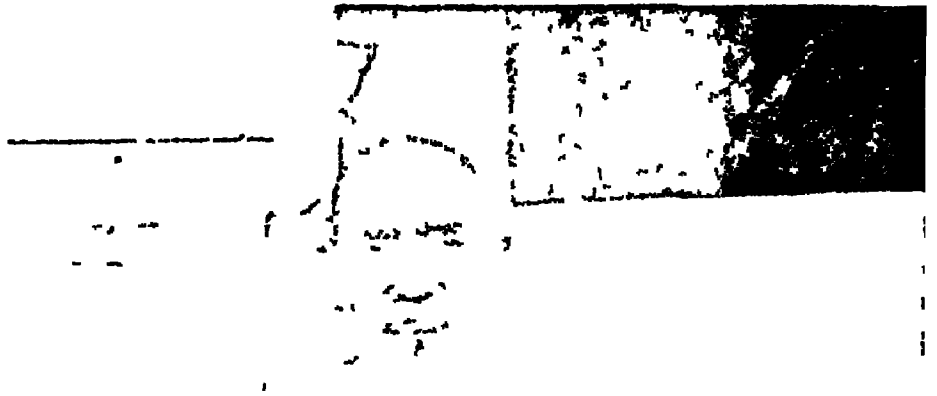
माननीय राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदासजी टंडन

समर्पण

भाँषडतौ* मुगला अगै, फिर फिरँगा रै राज।
टडन कीधौ टडतौ, उण भारत नै आज ॥१॥

उडदू - इगलिश टडती, अण भारत अणमाप।
हिंदी टडै हिंदवाँ, टडन रौ परताप ॥२॥

उत्तम विद्या चातुरी, उत्तम गुण री रास।
उत्तम पुरुषाँ जस कह्यौ, धन पुरुषोत्तमदास ॥३॥

हस वाहणी हस तज, चित लै सौगुण चाव।
टडन रसणा पर रहै, दे सदगुण रौ साव ॥४॥

पोथी हूँ अरपण करूँ, नहँ तव जोग निहार।
वालमीक तुलसी हुता, वे करता इण वार ॥५॥

—लेखक

*दीनता प्रकट करता था।

निवेदन

हिन्दी-साहित्य के निर्माण, विकास एवं प्रसार में भारतवर्ष के जिन-जिन प्रान्तों ने भाग लिया है उनमे राजस्थान का अपना एक विशेष स्थान है। राजस्थान-वासियों को इस बात का गर्व है कि उनके कवि-कोविदों ने हिंदी-साहित्य के प्रायः सभी अंगों पर ग्रंथ-रचना कर उनके द्वारा हिंदी के भांडार को भरा है। राजस्थान मे अनेक ऐसे प्रतिभाशाली साहित्यकार हो गये हैं जिनके ग्रंथ हिंदी-साहित्य की अमूल्य संपत्ति और हिंदी भाषा-भाषियों के गौरव की वस्तु माने जाते हैं। राजस्थान का डिंगल साहित्य, जो वस्तुतः हिंदू जाति का प्रतिनिधि साहित्य है और जिसमें हिन्दू संस्कृति व हिंदू गौरव की झलक सुरक्षित है, यहाँ के साहित्यकों की अपनी एक अपूर्व देन है।

परन्तु इतना सब होते हुए भी राजस्थान इस दृष्टि मे बड़ा अभागा है कि भूल-भ्रान्तियो की मार जितनी अधिक इसे सहन करनी पडी है उतनी अन्य किसी प्रान्त को नहीं सहन करनी पड़ी है और यह मार अधिकतर हिंदीवालो की ओर से पड़ी है जो राजस्थान को हिंदी-क्षेत्र के अंतर्गत और राजस्थानी भाषा-साहित्य को हिंदी-वाङ्मय का एक अविभाज्य अंग बतलाते हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास कहे जाने वाले ग्रंथों में जब कभी राजस्थान के इतिहास, साहित्य एवं भाषा सम्बन्धी वृत्त पढ़ने को मिलते हैं तब देखकर हैरत होती है। कभी-कभी तो मन मे यह विचार आता है कि जिस राजस्थान से सम्बन्धित साहित्य का वृत्तान्त मैं पढ़ रहा हूं, क्या यह वही राजस्थान है जिसका मैं निवासी हूं या कोई दूसरा है! दो-एक उदाहरण देखिए—

(क) "राजपूताना एक ऐसा प्रान्त है जिसके प्रति किसी का विशेष अनुराग नहीं हो सकता। वह प्रान्त मरुस्थान या रेगिस्थान ही है और इसीलिए वहाँ धान्यादिक भोज्य पदार्थ बहुत कम उगते हैं, यहाँ जल की भी बडी न्यूनता है, अत वहाँ जीवन की समस्या बडी ही कठिन होती है, भोग-विलासादि के सुखमय जीवन का प्रश्न तो बहुत ही दूर रह जाता है। यही मुख्य कारण है, कि यह प्रान्त राजपूत राजाओ का प्रधान प्रान्त होता हुआ भी युद्ध-क्षेत्र नहीं हुआ और मुसलमान इसकी ओर कभी नहीं बढे।"

(ख) "राजपूताने मे मेवाड, मारवाड, महोबा, चित्तौड, बूदी, जयपुर, नीमराणा, रीवा, पन्ना और भरतपुर राज्यो मे चारण-साहित्य का निर्माण हुआ।

मेवाड मे राजा जगतसिंह ने १६२८-१६५४ तक, राजसिंह ने १६५४-१६८१ तक और जयसिंह ने १६८१-१७०० तक राज्य किया[१]। राणा जगतसिंह के समय का एक महत्व-पूर्ण ग्रथ जगतविलास है जिसके लेखक के विषय मे विशेष ज्ञात नही[२]। राजसिंह के राजकवि मान ने १६६० मे राजदेवविलास ग्रथ लिखा[३], जिसमे औरगजेब और राजसिंह के युद्धो का

---

१ इन राजाओ के जो शासन-समय बतलाये गये है, वे अशुद्ध है। शुद्ध समय क्रमश ये हैं १६२८-१६५२ १६५२-१६८०, और १६८०-१६९८।

२ मेवाड मे जगतसिंह नाम के दो राजा हुए है। यह ग्रथ दूसरे जगतसिंह के समय मे लिखा गया है जिनका शासन-काल सन् १७३४-१७५१ है। ग्रथ का ठीक नाम 'जग-विलास' और कवि का नन्दराम है। देखिए पृ० २४४।

३ ग्रथ का शुद्ध नाम 'राज-विलास' है। इसका रचना-काल १६६० नही, १६८० है। ग्रथ काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हो चुका है। देखिए पृ० २१६।

- वर्णन है। सदाशिव ने राजरत्नाकर ग्रंथ लिखा। यह ग्रथ वीर काव्य से अधिक वीरस्तुति काव्य (प्रशस्ति) है[४]। एक ग्रथ 'राजप्रकाश' और लिखा गया। इसके रचयिता के विषय मे कुछ पता नही है[५]। इसमें जयसिंह के अनेक युद्धों का वर्णन है। ये युद्ध अन्य हिन्दू राजाओ से ही हुए हैं, मुसलमानी राजसत्ता से नहीं। इसी समय के कवि रणछोड का लिखा हुआ राजपन्ना[६] नाम का एक और ग्रथ मिलता है।"

इसी तरह के और भी उदाहरण मेरे पास भारी सख्या मे सगृहीत है। 'मिश्रबधु-विनोद' तो इनसे भरा पडा है। कहना न होगा कि बगला, मराठी, गुजराती आदि के इतिहास-ग्रथो मे ऐसी अनर्गल बातें प्राय नही मिलती। पाश्चात्य विद्वानो का शोध-कार्य तो उनसे भी अधिक उत्तम और प्रामाणिक है। यह तो हिंदी की ही विशेषता है। मैं नही समझता कि इस तरह का साहित्यिक कार्य हम हिंदीवालो की, जो हिंदी को राष्ट्रभाषा के पद पर आरूढ देखने के लिए आतुर है, गौरव-वृद्धि मे सहायक हो सकता है।

हिंदी के विद्वानो मे सबसे अधिक भ्रान्ति राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति के विषय मे फैली हुई है। कुछ इसे हिंदी की जननी और कुछ हिंदी की

---

४. राज-रत्नाकर हिंदी का ग्रथ नही सस्कृत का है। देखिए, कैटेलॉग ऑव मेन्युस्क्रिप्ट्स इन दि लाइब्रेरी ऑव हिज हाइनेस दि महाराना ऑव उदयपुर, पृ० १२२-१२३।

५ राजप्रकाश के रचयिता का पूरा पता है। नाम किशोरदास है। रचना-काल स० १७१९ है। इसमे जयसिंह के युद्धों का वर्णन तो दूर रहा उनका नाम भी नही है। इसमे राजसिंह के विलास-वैभव और शौर्य-पराक्रम का वर्णन है। देखिए पृ० २१२।

६ ग्रथ का नाम 'राजपन्ना' नही, राज-प्रशस्ति है। यह भी हिंदी का नहीं, सस्कृत का ग्रथ है। देखिए, पृ० १२३ का फुट नोट।

विभाषा (बोली) बतलाते हैं। परन्तु ये दोनो ही धारणाएँ भ्रमात्मक हैं। वास्तव में न तो राजस्थानी हिंदी की जननी है और न हिंदी की विभाषा। ये दो स्वतंत्र भाषाएँ हैं।

इस भ्रान्ति के कई कारण हैं जिनमे एक यह भी है कि 'हिन्दी' की ठीक-ठीक परिभाषा नहीं की गई है। वस्तुत हिंदी कोई एक भाषा नही है। खडी बोली, ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी आदि सात-आठ भाषाओ का समुदाय है जिसमे राजस्थानी भी सम्मिलित है। अत राजस्थानी को हिंदी समुदाय की भाषा अथवा हिंदी से सबधित भाषा मानना एक बात है, और हिंदी की जननी अथवा विभाषा बतलाना दूसरी बात। इस अतर को स्पष्टतया समझ लेने की आवश्यकता है।

आज से कोई पन्द्रह वर्ष पूर्व मेरा ध्यान उल्लिखित भ्रातियो की ओर गया। उस समय मुझे यह भी विचार आया कि इन भ्रान्तियों के लिए केवल बाहरवालो ही को दोषी नही ठहराया जा सकता। राजस्थानवालो का दोष भी उतना ही है। बल्कि उनसे भी अधिक है। क्योकि उन्होने अपने साहित्य के वास्तविक इतिहास को क्रमबद्ध रूप मे ससार के सामने रखने की कभी चेष्टा नही की और सदैव दूसरो ही का मुँह ताकते रहे। इतना ही नही, उन्होंने दूसरो की गलत बातो को भी सच करके माना और उनका प्रचार भी किया। अत मित्रो के आग्रह से मैंने इस काम को हाथ मे लिया, और अपेक्षित सामग्री एकत्र करना आरभ किया जिसके लिए मैं राजस्थान के विभिन्न राज्यो मे तथा ठेठ काशी-कलकत्ता तक घूमा और वहाँ के पुस्तकालयो, व्यक्तिगत सग्रहालयों आदि मे राजस्थानी भाषा के हस्तलिखित ग्रथो को देखा। धीरे-धीरे मेरे पास राजस्थान के लगभग साढे तीन हजार से अधिक साहित्यकारों के सबध की सामग्री इकट्ठी हो गई जिसमे से कुछ का उपयोग मेरी पूर्व प्रकाशित 'राजस्थानी साहित्य की

रूप रेखा', 'डिंगल मे वीर रस' और 'राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रथो की खोज' नामक पुस्तको मे हुआ है।

प्रस्तुत ग्रथ राजस्थानी भाषा-साहित्य पर मेरा चौथा प्रयत्न है। मेरा इरादा इसमे सपूर्ण प्राप्त सामग्री दे देने का था। परन्तु ऐसा हो नही सका—मित्रो ने उचित नही समझा। क्योकि साढे तीन हजार व्यक्तियो तथा उनकी कृतियो का परिचय आदि देने से यह एक सूचीपत्र-सा बन जाता और विशेष लाभ न होता। अत जिन साहित्यकारो की रचनाओ को मैने भाषा, साहित्य व इतिहास की दृष्टि से महत्व का पाया उनको चुन लिया और शेष को रहने दिया। इस चुनाव मे मैने अपनी रुचि से काम लिया है। इसमे मत-भेद हो सकता है। डा० शार्प कृत "ए डिक्शनरी ऑव इगिलश ऑथर्स" के ढग का "राजस्थानी कवि-कोविद कोष" नामक एक दूसरा ग्रथ मैं तैयार कर रहा हूँ। इसमें समस्त सामग्री का समावेश हो सकेगा।

वर्तमान राजस्थान प्रान्त का निर्माण और इसकी हदबदी अग्रेजो ने कुछ तो अपनी शासन-प्रबध की सुविधा और कुछ राजनीतिक कारणो को सामने रखकर की थी। इसलिए मालवे को उन्होने राजस्थान से पृथक् कर दिया। परन्तु सस्कृति, रहन-सहन, इतिहास, जन-तत्व इत्यादि की दृष्टि से वह राजस्थान का स्वाभाविक अश है और उसमे बोली जाने वाली भाषा माळवी राजस्थानी ही की शाखा है। अत राजस्थान और मालवा राजनीतिक दृष्टि से पृथक् होते हुए भी सास्कृतिक दृष्टि से एक हैं। और चूकि राजस्थानी भाषा और साहित्य का इतिहास कही जाने वाली पुस्तक का आधार क्षेत्र तो सास्कृतिक इकाई ही होना चाहिए यह सोचकर मैंने मालवे के कुछ साहित्यकारो का परिचय भी इसमें दिया है। यदि भविष्य मे कभी भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तो का ठीक तरह से विभाजन किया गया, और यदि यह विभाजन भाषा-सस्कृति के आधार पर हुआ, तो मालवे का राजनीतिक दृष्टि से भी राजस्थान के अतर्गत होना निश्चित है।

प्रत्येक देश के इतिहास मे, चाहे वह राजनैतिक इतिहास हो, चाहे साहित्यिक, थोडी-बहुत दन्तकथाएँ अवश्य घुली-मिली रहती हैं। राजस्थान का इतिहास भी इनसे बहुत प्रभावित है। इस पुस्तक मे मैंने बहुत-सी दन्त-कथाओ को ऐतिहासिक तथ्य-प्रमाण की कसौटी पर कसकर उनके वास्तविक स्वरूप को सामने रखने की कोशिश की है। इससे दन्त-कथा-प्रेमी राजस्थान के बहुत से महानुभाव, विशेपकर चारण लोग, मुझसे बहुत नाराज होंगे, पर क्या किया जाय, लाचारी है। सत्य-सत्य ही है। फिर आज के इस वैज्ञानिक युग मे दन्तकथाओ के लिए स्थान कहाँ है ?

उपर्युक्त बातो से मेरा आशय यह नही है कि अपनी इस पुस्तक को मै सर्वथा निर्दोष एव पूर्ण मानता हूँ और दूसरो के ग्रथो मे त्रुटियाँ ही त्रुटियाँ हैं। भूल करना मनुष्य के स्वभाव मे है। इसलिए इसमे भी अनेक त्रुटियाँ होगी, और हैं। हाँ, इतना विश्वास मैं अवश्य दिला सकता हूँ, कि इसके प्रणयन मे मैंने पर्याप्त सावधानी एव निष्पक्षता से काम लिया है और अपनी तरफ से इसे अधिक से अधिक प्रामाणिक बनाने मे कोई कसर नही रखी है। और यह सब हिंदी की सेवा तथा हिंदी का बल बढाने की भावना से प्रेरित होकर किया है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन हमारे देश की एक सुप्रसिद्ध सस्था है। हिंदी की उन्नति के लिए जो अथक उद्योग इसने किया है वह स्वर्णाक्षरो मे लिखने योग्य है। राजस्थानी को भी इसके द्वारा बहुत बल और प्रोत्साहन मिला है। इस पुस्तक को प्रकाशित कर उसने मेरा भी गौरव बढाया है। एतदर्थ मै उसका आभारी हूँ।

जैसा कि ऊपर कहा गया है भारतवर्ष के अन्य प्रान्तो के विद्वानो की जानकारी राजस्थानी भाषा-साहित्य के विषय मे बहुत थोडी है, और जो है वह भी बहुत अशुद्ध एव एकपक्षीय है। यदि इस पुस्तक से उनकी

ज्ञानवृद्धि हुई और उनमे फैली हुई भ्रान्तियो का निराकरण हुआ तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूंगा।

अन्त मे अपने प्रिय मित्र श्री पृथ्वीसिंह महता, विद्यालकार, को धन्यवाद देना मै अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ जिन्होंने पुस्तक के भूमिका भाग को पढने का कष्ट किया और अनेक सुझाव दिये तथा अनेक स्थानो पर सशोधन भी किया। आधुनिक काल के बहुत से साहित्यकारो के परिचय आदि प्राप्त करने मे श्री वृद्धिशकर "हितैषी", सचालक, हितैषी पुस्तक-भडार, से मुझे बहुत सहायता मिली है। अत मैं उनका भी उपकृत हूँ।

उदयपुर (मेवाड)
ता० १-१०-४८

मोतीलाल मेनारिया

विषय-सूची

प्रथम प्रकरण

भूमिका

राजस्थान एक महान प्रदेश है। सदियो तक यह भारतीय संस्कृति शौर्य, साहित्य और कला का केन्द्र रहा हैं। राजस्थान नाम ही मे कुछ ऐसा जादू है कि जिसे सुनकर हृदय मे जोश उमड पडता है। अपने धर्म, अपनी मान-मर्यादा और अपने देश-गौरव के नाम पर मर मिटने वाले असख्य नर-नारियो के रक्त मे सनी हुई यहाँ की धरती तीर्थराज प्रयाग की तरह पवित्र और यहाँ का प्रत्येक रज-कण गगामाटी-रेणुका की तरह मुक्ति को देनेवाला है। महामति कर्नल टॉड के शब्दो मे राजस्थान में कोई छोटा-सा राज्य भी ऐसा नही है जिसमे थर्मापिली जैसी रणभूमि न हो और न कोई ऐसा नगर है जहाँ लियोनिडास जैसा वीर पुरुष उत्पन्न न हुआ हो। एक समय था जब यहा की माँ-बहिनें अपने पुत्र-भाइयो को वीरत्व का पाठ पढाया करती थी और खुद भी देश के लिए जलने-मरने को तैयार रहती थी—

वाळा चाल म वीसरै,' मो थण जहर समाण।
रीत मरताँ ढील की, ऊठ थयौ घमसाण ॥१॥
वींरा लेवण आवियौ, पिउ रण हुआ वहीर।
अब तो वळवा जावस्याँ, अब नहँ आवाँ पीर ॥२॥

सुरपुर तक निभ जावसी, या जोडी या प्रीत ।
सखी पिऊ रै देसडै, सँग बळवा री रीत[1] ॥३॥

राजस्थानी भाषा

जितना महान् यह प्रान्त है और जितनी अधिक इसकी ख्याति है उसी के अनुरूप अत्युन्नत और उच्च कोटि का इसका साहित्य भी है। यह साहित्य राजस्थानी भाषा मे है जो आर्य भाषा की एक शाखा है। इस समय यह लगभग सारे राजस्थान एव मालवा प्रान्त की भाषा है और मध्य प्रान्त सिन्ध तथा पजाब के भी कुछ भागों मे बोली जाती है। यह करीब दो करोड मनुष्यो की मातृभाषा है।

इसके पूर्व मे ब्रजभाषा और बुन्देली, दक्षिण मे बुन्देली, मराठी तथा गुजराती, पश्चिम मे सिंधी तथा हिन्दकी (लहँदा) और उत्तर मे हिन्दकी, पजाबी और बाँगडू भाषाओ का प्रचार है।

भाषा-शास्त्रियो का अनुमान है कि मध्य एशिया को छोडकर जिस समय हमारे पूर्वपुरुष, प्राचीन आर्य, पजाब मे आकर बसे थे और उस समय जो भाषा वे बोलते थे उसके एक रूप से वैदिक सस्कृति की उत्पत्ति हुई। इस वैदिक सस्कृति का ही परिवर्तित साहित्यिक रूप पीछे से सस्कृत कहलाया।

---

१ हे बेटा! अपनी चाल को मत भूल। मेरा दूध जहर के समान है (अर्थात् जो इसे पीता है वह मरता है) फिर मरने की रीति-पालन मे शिथिलता क्यो? उठ, घमासान युद्ध हो रहा है॥१॥ हे भाई? तू मुझे लेने को आया है। लेकिन मेरे पति रण की ओर प्रयाण कर चुके है। अब मैं तेरे साथ पीहर नही आऊंगी सती होने को जाऊँगी ॥२॥ हे सखी! मेरी और प्रीतम की यह जोडी और यह प्रेम स्वर्ग तक निभ जायगा। क्योंकि मेरे पति के देश मे साथ जलने की (सती होने की) प्रथा है ॥३॥

और जन-साधारण की बोलचाल की भाषाएँ प्राकृत नाम से प्रसिद्ध हुई। कालक्रमानुसार इन प्राकृतो को विद्वानो ने दो भागो मे विभक्त किया है पहली प्राकृतें और दूसरी प्राकृते। पहली प्राकृतो का प्रतिनिधित्व पाली और अर्धमागधी करती हैं जिनमे बौद्ध और जैनो के ग्रन्थ लिखे गए थे। दूसरी प्राकृतो मे शौरसेनी, मागधी और महाराष्ट्री मुख्य थी। धीरे-धीरे इन प्राकृतों का भी साहित्यिक सस्कार होने लगा और ये भी क्लासिक भाषाएँ बन गई। परन्तु जन-साधारण की भाषा का जो प्रवाह इनके साथ-साथ अबाध रूप से चल रहा था वह उत्तरोत्तर बढता गया और कालान्तर मे एक नवीन भाषा के रूप मे आविर्भूत होकर अपभ्रश नाम से प्रसिद्ध हुआ। अपभ्रश के कई भेद उपभेदो का पता चलता है। प्राकृतचद्रिका मे इसके सत्ताईस भेद गिनाये गये है—

ब्राचडो लाटवैदर्भावुपनागरनागरौ ।
बार्बरावन्त्यपाचालटाक्कमालवकैकया ॥
गौडोढ्हैवपाश्चात्यपाण्ड्यकौन्तल सैहला ॥
कालिग्यप्राच्यकर्णाटकाञ्च्यद्राविडगौर्जरा ॥
आभीरो मध्यदेशीय सूक्ष्मभेदव्यवस्थिता ।
सप्तविंशत्यपभ्रशा वैतालादिप्रभेदत. ॥

विक्रम की छठी-सातवी शताब्दी से लेकर दसवी-ग्यारहवी शताब्दी तक इन अपभ्रशो का देश के भिन्न-भिन्न भागो मे प्रचार रहा। परन्तु बाद मे इनकी भी वही गति हुई जो पूर्वोक्त प्राकृतो की हुई थी। अर्थात् इनमे भी साहित्य-रचना होने लगी और विद्वानो ने इन्हे भी व्याकरण के अस्वाभाविक नियमो से बाँधना शुरू कर दिया जिससे इनके दो रूप हो गये। एक रूप तो वह था जिसमे साहित्य-रचना होती थी और दूसरा वह रूप जिसका सर्वसाधारण मे प्रचार था। प्रथम रूप तो व्याकरण के नियमो से बँधकर

स्थिर हो गया पर दूसरा बराबर विकसित होता रहा और जिस तरह प्राकृतें पहले अपभ्रंशों में परिवर्तित हो गई थी उसी तरह अपभ्रंश भी आधुनिक आर्य भाषाओं में रूपान्तरित हो गए।

पूर्व-लिखित सत्ताईस अपभ्रंशों में से नागर अपभ्रंश का प्रचार-क्षेत्र डा० ग्रियर्सन ने गुजरात-पश्चिमी राजस्थान होना अनुमानित किया है। इसके विपरीत डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने इस क्षेत्र की अपभ्रंश को सौराष्ट्री अपभ्रंश नाम दिया है[२]। परन्तु ये दोनो ही नाम अस्पष्ट हैं। नागर अपभ्रंश से अभिप्राय नागर जाति की अपभ्रंश से है या नागरिकों की अपभ्रंश से, यह साफ नही है। और सौराष्ट्री अपभ्रंश नाम कुछ संकीर्ण है। इससे इसका दायरा केवल सौराष्ट्र (काठियावाड) ही तक सीमित होना सूचित होता है। हमारे खयाल मे श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी का रखा हुआ नाम गुर्जरी अपभ्रंश अर्थात् गुर्जर देश की अपभ्रंश अधिक सार्थक है[३]। इस नाम से इसके वास्तविक क्षेत्र का अन्दाजा हो जाता है। क्योंकि प्राचीन समय में गुर्जर देश मे आधुनिक गुजरात और आधुनिक राजस्थान दोनो के कुछ अंश सम्मिलित थे जहाँ यह बोली जाती थी। इसी गुर्जरी अपभ्रंश से राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति हुई जिसका एक रूप आगे जाकर डिंगल नाम से विख्यात हुआ।

---

२ उदयपुर विद्यापीठ के तत्वावधान मे राजस्थानी भाषा पर दिया गया भाषण।

३ अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तेंतीसवें अधिवेशन (उदयपुर) का विवरण, पृ० ९

नीचे के वंश-वृक्ष से उपरोक्त बातें और भी स्पष्ट हो जायेंगी।
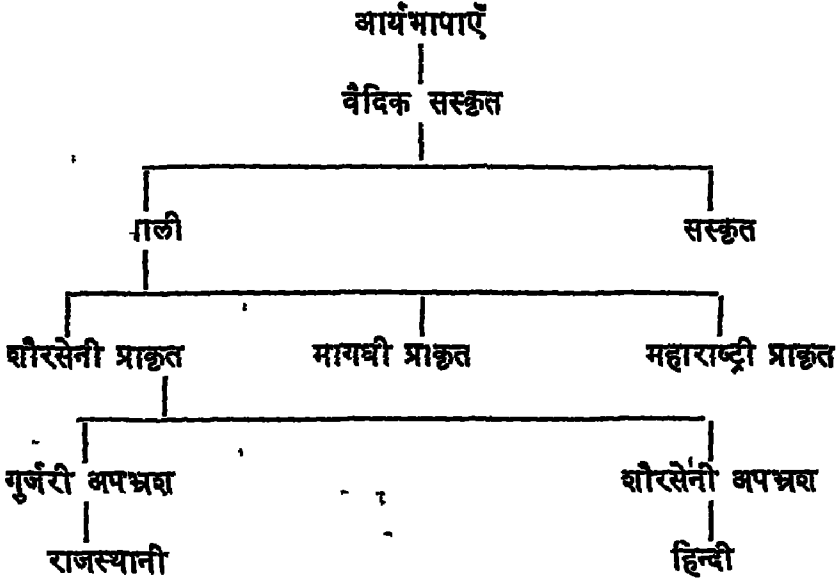
किस निश्चित समय मे राजस्थानी का प्रादुर्भाव हुआ, कहना कठिन है। परन्तु अनुमान होता है कि कोई ग्यारहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे अपभ्रंश से पृथक् होकर इसने स्वतन्त्र भाषा के रूप मे विकसित होना प्रारभ किया होगा।

राजस्थानी भाषा के अन्तर्गत कई बोलियाँ हैं जिनमे परस्पर विशेष अतर नही है। सिर्फ भिन्न-भिन्न प्रदेशो मे बोली जाने के कारण इनके भिन्न-भिन्न नाम पड गये हैं। मुख्य बोलियाँ पाँच है—मारवाडी, ढूँढाडी, माळवी, मेवाती और वागडी।

मारवाडी

मारवाडी का प्राचीन नाम मरुभाषा है। यह जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर तथा सिरोही राज्यो मे प्रचलित है और अजमेर-मेरवाडा

एव किशनगढ तथा पालणपुर के कुछ भागों, जयपुर राज्य के शेखावाटी प्रदेश, सिंध प्रान्त के थोडे से अश और पजाव के दक्षिण मे भी बोली जाती है। मारवाडी का विशुद्ध रूप जोधपुर और उसके आसपास के स्थानों मे देखने में आता है। यह एक ओजगुण विशिष्ट भाषा है। इसका साहित्य भी बहुत बढा-चढा है। इसमे सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश के शब्द विशेष मिलते हैं। कुछ अरबी-फारसी के शब्द भी सम्मिलित हो गये हैं। मारवाडी की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। जैसे, छदो मे सोरठा छद, और रागो मे माँड राग जितना अच्छा इस भाषा मे खिलता है भारत की अन्य किसी प्रान्तीय भाषा मे उतना अच्छा नही खिलता। मारवाडी गद्य और पद्य दोनो के नमूने देखिए—

(क) एक कजूस कनै थोडो-सो धन हो। उणनै रोजीना इण बात रो डर रैवतो कै ससार रा सगळा चोर अर डाकू मारा ही धन माथै निजर गडोयोडा है। ऐडी नही हुवै कै वै कदेई इनै लूट ले। वो आपरा धन नै बचावण वास्ते आपरे कनै जो माल-मत्तो हो सो वेच 'र एक सोना री ईंट मोल लीवी और उणनै घर में एक ओळा री जगा गाड दी। परत इत्तो करणा पर भी ऊँ रो मन धापियो नही जिण सू वो रोजीना उठै जाय र' देख लेवतो कै कोई ईंट ले' र तो नही गयो है। उणनै रोजीना उठै जावतो देख उण रा नौकर ने की भैम हुयो। वो मौको देख एक दिन उठै गयो और जमीन नै खोद' र ईंट काड ले गयो। कजूस आप री रोजीना री विळियाँ जठै ईंट गाडियोडी ही उठै गयो तो देखियो कै ईंट तो कोई चोर' र ले गयो। जरा उणनै वडो सोच हुवो और गैला ज्यू जोर-जोर म् रोवण लागो। उणनै इण तरह रोवतो-रीखतो सुन कोई पाडोसी ऊँरै कनै आयो और दुख रो कारण पूछियो। जद वो पाडोसी उणनै एक भाटो दे' र कैयो—"भाई! अबै रो मती अर औ भाटो इणी जगा गाड दे। अर मन मे समझ ले कै सोना री ईंट ही गडियोडी है। क्यूं कै तूं तो सोना री ईंट ऊँ फायदो

उठावतो नही हो जिण सूं थारे भावैं तो सोना री ईंट अर भाटो सरीसा हीज है।

घन रो उपयोग नही करण सूं धन रो हूवणो अर नही हूवणो बराबर हीज हैं।

(ख) दासी, कण बिलमायो ए अब तक नही आयो रावत वारणैं

वागां मे घूमण गयो म्हारो रावतियो सरदार

वागां मांयली कोयल म्हारो लियो छै भँवर विलमाय ॥ दासो ॥१॥

सैल करण सायवो गयो हूय लीली असवार

कै जगल री मिरगल्यां म्हारो लियो छै स्याम विलमाय ॥ दासी ॥२॥

सरवर न्हावण पीव गयो साथीडां रे साथ।

कै सरवर की मछळियां म्हारो लियो छै भँवर विलमाय ॥ दासी ॥३॥

चढ चढ़ दासी मेडियां झांक झरोखां मांय

जे तनैं दीसैं आवतो म्हारो मद छकियो स्याम ॥ दासी ॥४॥

---

४ एक कजूस के पास थोडा-सा घन था। उसे हमेशा डर लगा रहता था कि ससार भर के सारे चोर और डाकू मेरे ही धन पर नजर लगाये हैं, न मालूम कब वे लूट लेंगे। अपने धन को विपत्ति से बचाने के लिए अपना सब कुछ बेच-बाँचकर उसने सोने की एक ईंट खरीदी। उस ईंट को उसने घर के एक गुप्त स्थान मे गाड रखा। परन्तु इतने पर भी सन्तुष्ट न होकर वह रोज उस स्थान पर जाकर देखता कि कोई सोने की ईंट को चुरा तो नही ले गया। उसको इस प्रकार रोज-रोज एक निर्दिष्ट स्थान पर जाते देखकर उसके एक नौकर को कुछ सदेह हुआ। वह अवसर पाकर एक रोज उसी स्थान पर गया और खोद कर सोने की ईंट निकाल ले गया। कजूस अपने नियमित समय पर जब उस स्थान पर पहुँचा जहाँ ईंट छिपी हुई थी

लीली घोडी हाँसली अलबेलो असवार
कडयाँ कटारी वाँकडी सोरठडी तरवार ॥ दासी ॥५॥

मारवाडी की एक उपबोली मेवाडी है, जो मेवाड राज्य के दक्षिण-पूर्वी भाग को छोडकर सारे मेवाड राज्य और उसके निकटवर्ती प्रदेशो के कुछ भागो मे बोली जाती है। मेवाडी का विशुद्ध रूप मेवाड के गाँवो मे देखने मे आता है जहाँ यह अपनी असली रूप मे प्रचलित है। शहरो मे इसपर हिन्दी-उर्दू का रग चढ गया है जिसकी वजह से यह बहुत कर्णकटु और अटपटी लगती है। मेवाडी मे साहित्य भी है और साहित्यिक परम्पराएं भी बहुत पुरानी है। चित्तौडगढ के कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति मे लिखा

तो देखा कि ईंट को कोई चुरा ले गया है। तब रज के मारे पागल-सा होकर वह बडे जोर-जोर से रोने चिल्लाने लगा। उसका यह रोना-चिल्लाना सुनकर एक पडोसी उसके पास आया और उसके दुःख का कारण पूछने लगा। अत में उसने कजूस को पत्थर का एक टुकडा देकर कहा—"भाई अब और रोओ-चिल्लाओ मत, यह पत्थर का टुकडा इसी जगह गाड दो और मन मे समझ लो कि वह तुम्हारी सोने की ईंट ही गडी है। क्योकि जब तुमने निश्चय कर लिया है कि उससे कोई लाभ न उठाओगे तब तुम्हारे लिए जैसी सोने की ईंट है वैसा ही पत्थर का टुकडा।"

धन का उपयोग न करने से धन का होना और न होना एक-सा है।

५ कण=किसी ने। रावत=बहादुर (पति)। माँयली=भीतर की। भँवर=पति। विलमायो=रिझा लिया। सैल=सैर। करण=करने को। सायबो=पति। लीली=सफेद रग की (घोडी)। मिरगल्याँ=पक्षी। स्याम=पति। न्हावण=स्नान करने को। हाँसली=हीसने वाली। कडयाँ कटारी वाँकडी सोरठडी तरवार=कमर मे वाकी कटारी और सोरठ देश की बनी तलवार बँधी है।

है कि महाराणा कुम्भा (सं० १४९०-१५२५) ने चार नाटक बनाये जिनमे मेवाड़ी का भी प्रयोग किया गया था।[६] राजस्थानी की बोली मे साहित्य निर्माण का यह सबसे पहिला ऐतिहासिक उल्लेख है। मेवाड़ी का नमूना निम्न है—

एक मूजी तीरै घोटोक धन हो। वणी नै हमेसाँ भो लाग्यो रैतो कै दुनियाँ मातर रा चोर और धाड़ेती म्हारा हीज धन ऊपरै आँख लगायाँ है। नी जाणै कदी वी लूटी लेला। वणी आपणा धन नै सकट ऊ बचावा रै वास्तै आपणी हेंगळोई वेच-सोचनै होना री एक इंट मोले लीदी। वणी मूजी घर मे एक छानै री ठौड़े गाट राखी। पण अतरा कँ ज सबर नी राख नै वो रोज वणी ठकाणी जाइनै देखतो कै कोई होना री इंट नै चोरीनै तो नी ले गियो है। वणी नै अणी तरेऊ दन परत एक ठावी जगा जातो देख नै बडा एक चाकर नै कईक भेम पड्यो। वो मौको देखनै एक वणी जगा गियो और खोदनै होना री इंट ले ग्यो। मूजी आपणै रोजीना री वेळाँ जदी वठै पूगो जठै इंट गटी थकी ही तो देख्यो कै इंट नै कोई चोरी ले गियो है। तो दख री मारयो वेड़या ज्यू व्है नै यो घणा जोर-जोर ऊँ रोवा-रीकवा लागो। वटो यो रोवणो हामळ नै एक पाडोसी वणी तीरै आयो और वणी रा दखरी वजै पूछवा लागो। आखर मे वणी मूजी नै भाटा री एक वटको देनै कियो—"भाई! अवे रोवे-रीके मती। यो भाटा री वटको वणी ठकाणै गाड दे और मनमे समझ लै कै वा थारी होना री इंट होज गटी है। क्यू कै जदी थै

---

६ येनाकारि मुरारिसंगतिरस प्रस्यन्दिनी नन्दिनी
वृत्तिव्याकृतिचातुरीभिरतुला श्रीगीतगोविंदके।
श्रीकर्णाटिकमेदपाटसुमहाराष्ट्रादिके योदयत्—
वाणी गुफमयं चतुष्टमय सन्नाटकानां व्यधात् ॥१५८॥

धार लीदी है कै वगी क कई फायदो नीं उठावेला तो थारै वास्ते जसी होना री ईंट है वस्यां ही भाटा री यो वटको।"

धन नै काम मे नीं लावा क धन व्हैणो और नीं व्हैणो बरोबर है।

ढूंढाड़ी

ढूंढाडी जयपुर राज्य के शेखावाटी प्रदेश को छोड़कर सारे जयपुर राज्य, लावा, किशनगढ़-टोंक के अधिकांश और अजमेर-मेरवाड़े के उत्तर-पूर्वी भाग मे बोली जाती है। इस पर गुजराती और मारवाड़ी दोनों का प्रभाव समान रूप से पाया जाता है। साहित्य की भाषा में ब्रजभाषा की भी कुछ विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। ढूंढाडी मे प्रचुर साहित्य है। सन्त दादू और उनके शिष्य-प्रशिष्यों की रचनाएँ इसी भाषा मे है। यह साहित्य गद्य और पद्य दोनों मे मिलता है। ईसाई धर्म-प्रचारकों ने भी बाइबिल आदि अपने धर्म-ग्रन्थों के अनुवाद इस भाषा मे कर इसकी समृद्धि की है। नमूने—

(क) एक मूर्जी कनै थोडो-सो धन छो। ऊंनै हर भगत यो ही डर लग्यो रहै छो क दुनिया भर का सगळा चोर-धाडेती म्हारा ही धन पर आँख गाड मेल्यां छै। काई ठीक कद आ'र लूट लेला। अपणा धन नै ईं आफत सूं बचाबा कै तांईं वो एक उपाय कर्यो। आप को सारो टट्टवारो बेचकर वो एक सोना की ईंट मोल ली। अ'र ऊंनै आपकी जगा मैं एक खाडा मैं गाड दी। पण ईं सैं भी ऊंको मन भर्यो कोनै। वो रोजीना उठ्ठे जा'र देख्यातो क सोना की ईंट नै कोई चोर 'र तो न ले गो। ऊंनै रोजीना एक ही जगा जातो देखबानै ऊंका नौकर न वैम होगो। एक दिन वो भी उठ्ठेई ही गयो अर खोद'र सोना की ईंट निगाळ लेगो। भगत पर जद मूर्जी उठ्ठे गयो जठ्ठे ईंट गडी छी तो ठीक पटीक ईंट नै तो कोई चोर'र लेगो। ई दुख को मार्यो वो गैलो-सो हो'र खूब जोर मैं हाथ धोतो करबा लाग्यो। ऊं को रोवो

सुण'र एक पाडोसी ऊँ कनै आयो पाछल दाय एक भाटो मूजी नै दे'र वो बोल्यो—"दादा। अब रोवै तो मतना ई भाटा का टुकडा नै ई जगा गाड दे और इनैही गडी हुई सोना की ईंट समझ ले। क्यो स जद तू मन मैं धार वैठ्यो छै क ऊँसै कोई फायदो नही उठाणो तो थार भावै जसी सोना री ईंट उस्यो ही भाटा को टुकडो छै।"

धन नै काम मे न ल्यावा सै धन को होवो न होवो इकसार छै।

(ख) पीया म्हाँका जी! थे चाल्या परदेश घराँ कद आवोला
ओ जी म्हाँका नाव!
गोरी म्हाँ की ए! आवाँ छठडै मास थानै तो तरसावाँला
ओ ए म्हाँ की नार!
पीया म्हाँ का जी! तरसै लीर वलाय पिहर उठ ज्यावाँला
ओ जी म्हाँका नाव!
गोरी म्हा-की ए! पीहरिया को लोग मसकरी गाळो छै
ओ ए म्हाँ की नार!
पीया म्हाँका जी! नीची करल्यो नाडर काको ताऊ कहल्याँला
ओ जी म्हाँका नाव!
गोरी म्हाँ की ए! भावज वोलै बोल हियो भर आवै लो
ओ ए म्हाँ की नार!
पीया म्हाँका जी! रुणझुण वहल जुपाय सासरियै उठ आवाँला
ओ जी म्हाँका नाव![७]

ढूँढाडी का जो रूप बूँदी-कोटा मे प्रचलित है वह हाडोती नाम से प्रसिद्ध है। इसमे और ढूँढाडी मे नाम मात्र का अन्तर है। शब्द-कोष और उच्चा-

---

७ नाव=नाह=पति। मसकरी गाळो=मसखरा। नाड=गर्दन। रुणझुण वहल जुपाय=रुनझुन बजता हुआ रथ जुतवाकर।

रण शैली मे थोडी-सी भिन्नता है। हाडोती मे कुछ ऐसे शब्द देखने मे आते है जिनका सबध किसी आर्य या सेमेटिक भाषा से स्थिर नही होता। उच्चारण शैली मे कुछ ऐसी विशेषताएँ है जो न तो सस्कृत और न अर्बी-फारसी मे पाई जाती है। अनुमान होता है कि अतीत मे किसी समय इस भाषा का हूण, गुर्जर अथवा अन्य किसी विदेशी जाति की भाषा से सपर्क रहा है और फलस्वरूप उसी के शब्द इसमे मिल गये है। इसमे लिखित साहित्य नही है। नमूना—

एक गूँजीकै थोडी पूँजी छी। ऊँनै सदा डर लागबो करै छो क ससार भर का सारा चोर अर धाडैती म्हारा ही धन की आडी चोगता-झाँकता रहे छै, न जाणे कद आर यै लूट लैगा। ऊँनै अपणो धन आफत सू बचावा वेई सूना की एक ईंट मोल ली। अपणो सब कुछ वेच-खोज'र ऊँनै वा ईंट घर की एक गपताऊ ठोर मे गाड दी। पण अतना पै भी सतोस न पा'र ऊ रोजीना ऊ ठोर पै जा'र देखतो क कोई ऊ सूना की ईंट नै रचोर' तो नह ले गियो। ऊँनै अशा रोजीना एक ही ठोर पै जातो देख'र ऊँका एक चाकर कै कुछ वैम पड गियो। ऊ डाण देखकर एक दिन ऊ जाग पै गियो अर खोद'र सूना की ईंट नै काड ले गियो। मूजी जद अपणा ठीक ऊ ही बगत पै ऊँ ठोर पै पूग्यो जठै सूना की ईंट मुसाड राखी छी तो देखी ए ईंट कोई चोर' र ले गियो। जद तो चता की मारी उ गैल्यो सो हो'र बडा जोर सू रोवा-चल्लवा लाग्यो। ऊँ को यो रोवो बरळावो सुण'र एक पाडोसी ऊ के नखै आयो, अर ऊ का दुख कै वेई पूछवा लाग्यो। आखर मे ऊनैऊ करपण कै ताई एक भाटा को टूकडो दे'र की—"भाया। अब जादा रोवै—चल्लावै मत। यो भाटा को टूकडो ईं ही ठाम पै गाड दै अर मन मे समझ लै क या थारी सूना की ईंट ही गड री छै। क्यूक जद तने या ही वच्यार लो छी कऊ सूं काई फायदो न उठावणो तो थारै भावै जसी सूना की ईंट छी उसो ही यो भातटा को टूकडो।"

धन नै काम मे न लेवै तो धन को होवो अर न होवो एक सारखो ही छै।

माळवी

माळवी समस्त मालवा-प्रान्त की भाषा है, और मेवाड, मध्य-प्रान्त आदि के भी कुछ भागो मे बोली जाती है। अपने सारे क्षेत्र मे इसका प्राय: एक ही रूप देखने मे आता है। इसमे मारवाडी और ढूंढाडी दोनो की विशेषताएँ पाई जाती हैं। कही-कही मराठी का भी प्रभाव झलकता है। यह एक बहुत कर्णमधुर और कोमल भाषा है। विशेष कर स्त्रियो के मुँह से यह बहुत मीठी लगती है। मालवे के राजपूतो मे इसका एक विशेष रूप प्रचलित है जो रागडी कहलाता है। यह कुछ कर्कश है। माळवी मे भी थोडा-सा साहित्य है। चन्द्रसखी, नटनागर आदि की रचनाओ मे इसका कही-कही अच्छा रूप देखने मे आता है। प्राचीन पट्टो-परवानो मे भी इसके वास्तविक स्वरूप पर अच्छा प्रकाश पडता है। नमूने —

(क) एक मूँजी रे कनै थोडो माल थो। वणी नै हदांई ओ डर लाग्यो रेतो थो के आखी दुनिया रा चोर नै डाकू म्हाराज धन पर आँख्या लगायाँ थका है, नी मालम कदी आई नै वी लूटी लेगा। वणे आपणा माल मत्ता नै ई कट कट ती बचावानै घर रा सब तागडा वेचा-वेची करी नै होना री एक इंट मोल लीदी। वणी ईंट नै वीए घर री एक छाने री जगा मे गाडी राखी। पण अतरा पर भी वीनै धीरप नी आई नै रोज वणी जगा पर जाई नै देखतो के कठै होना री वा ईंट तो कोई चोरी नै नी ग्यो। वणी नै अणी तरे रोज-रोज एकज जगा पर जातो देखी नै वीरा एक नौकर ने कईंक भैम पडयो। मोको देखी नै ऊ एक दन वणी जगा ग्यो और होना री ईंट खोदी नै काढ़ी ग्यो। मूँजी जदी आपणी वधी व्रगत वणी जगा पोच्यो जठै ईंट गडी थकी थी तो देख्यो कै ईंट ने कोई चोरी ग्यो है। पछै तो दुख रे मारे वेंडो वई

नै ऊ घणा जोर-जार ती हागडा पाडी पाडी नै रोवा लागो। वीरो रोवणो-रीकणो हुणी नै एक पडोसी वी कनै आयो नै ई दुख रो कारण पूछवा लागो। आखर वणै मूंजी नै भाटा रो एक टुकडो दई नै कीयो—"ए भई! अवे रो मती। यो भाटा रो टुकडो वणीज जगा गाडी दे नै मन मे हमजी ले के या थारी होना री ईंट ज गडी थकी है। क्यूं कै जदी थें यो थारी लीदो कै वणी ती कई फायदो नी उठावणो तो थारे भावते तो जसी वा होना री ईंट थी वसोज यो भाटा रो टुकडो है।"

धन नै नी वापरे तो धन रो वेणो नी वेणो बरोबर है।

(ख) मिलता जाजो रे मुरारी था की सूरत ऊपर वारी।
जो थें मारो नाम नही जाणो मारो नाम वृषभानी।
सूरज सामी पोळ हमारी माणक चोक निशानी।
वृषभान घर दस दरवाजा नही चोडे नही छाने।
मारे आगन पेड कदम को ऊपर कनक अटारी।
थें जावो काना धेनु चरावा मैं जाऊं जमुना पानी।
था के मारे प्रीत लगी है सारी दुनिया जानी।
चन्द्रसखी ब्रजलाल कृष्ण छव हरी चरण बलहारी।
ऐसी प्रीत निभाजो काना जेसी दूध मे पानी।

मेवाती

मेवाती अलवर-भरतपुर राज्य के उत्तर-पश्चिमी भाग और दिल्ली के दक्षिण मे गुडगाव मे बोली जाती है। इस भाषा-क्षेत्र के उत्तर मे बांगड़, पश्चिम मे मारवाडी एव ढूढाडी, दक्षिण मे डांगी और पूर्व मे ब्रजभाषा का प्रचार है। इस पर ब्रजभाषा का प्रभाव बहुत अधिक देखने मे आता है। इसमे भी थोडा-सा साहित्य है। चरणदासी पथ के जन्मदाता सत चरण दास और उनकी दो शिष्याओ—दयाबाई और सहजोबाई—की रचनाए इसी

भाषा मे है। परन्तु इस समय वह साहित्य अपने असली रूप में नही मिलता। मुद्रक-प्रकाशको ने उसे बहुत भ्रष्ट कर रखा है। नमूने—

(क) एक मांखीचूस के पै कछु माल-मतो हो। वा लू सदा याई डर वणो रह हो कै सारी दुनियाँ का चोर और लूटणियाँ मेराई धन की चगेस मे हैं, कहा थाह जाणै कव लूट लै। या सोच वा नै अपणा माल मत्ता लू वचाण की खातर घर को अट्टस कुट्टस बेच एक सोना की ईंट मोल ली। वा ईंट लू वानै घर का कूणाँ मे एक अवीडी ठौन मे गाड दी। पण या पैं वीं वालू ध्यावस नाय आई। वा रोजीना वाई अवीडी ठौर पै जाकै देखो करै हो कै कोई सोना की ईंट लू चोर कै तो ना लेगो है। वा लू या तरै हर हमेस जातो देख वाई का नौकर लू कछु सुवो हुयो। उ टहलिया मौको पा एक दिन हुई रै ठाण पै लूगो। और हूँ सु मोना की ईंट खोद अपणी आमेज मैं करी। उ माँखीचूस हुँई ठौर पै अपणा लाग्या वध्या टैम पै पहुँचो तो कहा दैखै है कै कोई ईंट लू चोर लेगो है। वा को असोच कै मारै चित चिल्ला सू उतर गो। उ भारी जोर जोर सू विलख विलख कै रोण लगो। वा लू फूट फूट कै रोतो सुण पोडोसिया नै वा सू रोण की वात पूछी। अखीर मे वानै वा मौखीचूस लू एक रोडो दै कै कही—"भाई! अव रोवै-पुकारै मत या भाटा का रोडा लू उई रै ठाण मैं गाड दै और जाण लै कै तेरी सोना की ईंट हुँई गड रही है। क्यूक जव तैंने या पुख्ता इरादो कर लियो है कै वा सू कोई फायदो उठाणो ई नायतो लू जिसी सोना की ईंट उसो भाँटा को रोड।"

धन को मौजू खरच न करण सू धन को होणो न होणो बरावर है।

(ख) सुपना मे छळ ली वन्दी आधी-सी रात
पिया मेरो चौपड कौ खिलारी रै।

तोडू तो मरोडू चरखा दे दू तो मे आग
चरखो मेरी छाती को जळावा! रे
छोटी सी मझोली जा में छोटा छोटा बैल
छोटो सो बलम गढ वाळो रे!
खेलण लू खिंदा मत सासू वणिया की कै लार
वणिया की नै रूकण सू बैलायो रै।
हाथन मै पछेली ता पै चूडी कैसे नांय
दुनिया तो लू राडडी बतावै रै।
काया पै तो मत कर वन्दी गरव गुमान
गरव ही रव नै गाळी रै!
मोडी तो लूटादूं ख्वाजे तेरे दरबार
बिछटो तो मिला दै विणजारो रै[८]।

वागडी

डूगरपुर और बॉसवाडा के सम्मिलित राज्यो का प्राचीन नाम वागड है। वहाँ की भाषा वागडी कहलाती है जो मेवाड के दक्षिणी

---

८ आधी-सी रात्रि मे चौपड के खिलाडी मेरे प्रीयतम ने मुझे स्वप्न मे छल लिया। (सपने मे मै अपना चर्खा कातने में व्यस्त थी। उसने छलने में मेरे प्रीतम का साथ दिया)। हे छाती जलाने वाले चर्खे! मैं क्यो न तुझे तोड-मरोडकर आग में दे दूं? प्रियतम सपने मे छोटी-सी मझोली (यान) मे बैठ कर आए। उसके छोटे-छोटे बैल थे और उसको चलाने वाला भी मेरा छोटा-सा बालम था। ऐसे छोटे-से प्रियतम को हे सास! बनिये की लडकी के साथ कभी खेलने को मत भेजना। वह उसे रुकावण देकर बहला लेगी। (सवेरे हाथ मे चूडियाँ न देख सास ने कहा) तेरे

भाग एव सूथ राज्य के उत्तरी भाग मे भी बोली जाती है[१]। वागडी पर गुजराती का प्रभाव बहुत अधिक है। इसमे 'च' और 'छ' का उच्चारण प्राय 'स', और 'स' का प्राय. 'ह' होता है। इसमे भी कुछ साहित्य है जो अप्रकाशित है। वागडी के नमूने—

(क) एक सामटा नै थोडोक धन हतो। अेने दाहडी ई बीक लागी रेती कै हेती जगत ना हगरा सोर नै डाकू माराज धन ऊपर नजर राखी र्‌या हे। ने जार्णं कारे आवीनैं ई लूटी लहे। अेणे आपडा धन नै आंफत हो बचाववा ना हारु आपडो हँगरो वेसी करी नै होनानी एक ईंट वेसाती लीदी। अेणी ईंट नै अेणे घरनी एक सानी जगा मये खोतरी घाली। अपण अटलो करवा उपरे राजी ने थई नै ई दाहडी अेणी जगा ऊपर जाइनै देकतो कै कोई होना नी ईंट नै सोरी तो ने लईग्यो हे। अेने अेमज दाहडी-दाहडी एकज जगा ऊपर जातो देकीनै ऐने एक नौकर नै कयेक शक थ्यो। ई मोको देकीनै एक दाडो अेणी जगा ऊपर ग्यो नै खोतरी नै होना नी ईंट काढी

हाथो मे केवल पछेली (गहना विशेष) ही कैसे रह गई। चूडियो का क्या हुआ? चूडियो के विना दुनियाँ तुझे विधवा वताएगी। काया का गर्व मत कर। ईश्वर ने सदा गर्व को गला दिया है। (स्वप्न मे जिस प्रीतम ने छला था)। हे ख्वाजा साहव! उस विछुडे प्रियतम से मिला दे। मै तेरे दरवार मे अच्छे पशु भेंट चढाऊँगी।

१ डा० ग्रियर्सन ने वागडी को भीला नाम दिया है। परन्तु उनका दिया हुआ यह नाम असगत है। कारण कि भीलो की कोई अलग निश्चित भाषा नही हे। डूगरपुर-वाँसवाडा मे जो भाषा आमतौर से बोली जाती है उसी का व्यवहार वहाँ के भील लोग भी करते है। सिर्फ उच्चारण आदि की थोडी-सी भिन्नता के कारण वह एक पृथक् भाषा प्रतीत होती है।

लई ग्यो। सामटो दाहडी ना वजू जारे अेणी जगा ऊपर ग्यो ज्यें ईंट हूंपाडी हती। अेणे ऐयें जई नै देक्यो कै ईंट नै तो कोईक सोर सोरी लई ग्यो है। तारे दुकनो मार्‍यो गाडा हरको थई नै खूब जोर थकी रोवा ने डाडे करवा लाग्यो। अेनो ई रोवो नै डाडे करवो हामरी नै एक अेनो पाडोई अेने पायें आव्यो नै अेने दुक नो कारण पूस्योम। आकर ये अेणो सामटा नै एक पाणा नो बडको आली ने क्यु कै–"भाई, हवे नके रोवो नै डाडे नके करो। आ पाणा नो बडको अेणीज जगा ऊपर गाडी दो नै मन मये हमजी लो के ई तमारी होना नीज ईंट गडेली है। केम के तमे नक्की करी लीदो है के तमे अेणा थकी कयेंए फायदो ने उठाव हो तारे हमारा हाथ जेवी होना नी ईंट है अेवोज आ पाणा नो बडको है"।

धन नै ने वेपरावा थकी धन नो हो वो नै ने होवो बराबर ज है।

(ख) लका ते गढ सोनु वापरेयुरे, के आव्यु वागडिये देसरे
मीरा मारा स मारूँ मन रस्यूं रे।
केणे देख्यु ने केणे मूलव्युं रे, केणे खरस्यें दाम रे,
मीरा मारा सुं मारूँ मन रस्युं रे।
जेठे देख्यु ने ससरे मूलव्युं रे, ओजी साहेबे खरस्यें दामरे
मारी मारा सु मारूँ मन रस्युं रे।
सोकमी नो बेटो मारो भाइलो रे ए वीरा मनेसोनु तोली आळरे
मारी मारा सु मारूँ मन स्यु रे।
सोनीडा रो बटो मारो भाइलो, रे ए वीरा मने मारा घडी आल रे,
मारी मारा सु मारूँ मन रस्यु रे।
पटुआ रो बेटो मारो भाइलो रे, ए वीरा मने मारा गाँठी आल रे
मीरा मारा सु मारूँ मन रस्यु रे।

जोसीडा नो बेटो मारो भाइलो रे, ए वीरा मने मूरत जोई आलरे
मीरा मारा सु माळ मन रस्यु रे[10]।

लिपि

राज्यस्थानी लिपि अधिकतर देव नागरी लिपि से मिलती है। कुछ अक्षरो की बनावट मे अन्तर अवश्य है, पर यह अन्तर भी अब दिन-दिन मिटता जा रहा है।

यह लिपि लकीर खीचकर घसीट रूपे मे लिखी जाती है। राजकीय अदालतो आदि मे इस लिपि का प्राय विशुद्ध प्रयोग होता है। परन्तु महाजन लोग अपने वही-खाते मे इसका शुद्ध प्रयोग नही करते। उनकी इस अशुद्ध लिपि-शैली का नाम ही जुदा पड गया है। इसे महाजनी अथवा वाणियावटी लिपि कहते है। और इसके अक्षर 'मुडिया' कहलाते हैं। इसमे मात्राएँ नही रहती। यह एक तरह शॉर्टहैंड का काम देती है।

---

१० मेरा मन माला से लगा हुआ है। अत इस माला के लिए लका से वागडा देश मे सोना आया है ॥१॥ इस सोने को किसने देखा, किसने मोलाया और किसने दाम खर्च कर खरीदा ॥२॥ जेठ ने देखा, ससुर ने मोलाया और पति ने दाम खर्च कर खरीदा ॥३॥ चौकसी (सोने की परीक्षा करने वाला) का पुत्र मेरा भाई है। अतएव हे भाई! तू मुझे सोना तोल दे ॥४॥ सुनार का पुत्र मेरा भाई है। अत हे भाई! तू मुझे सोना घड दे ॥५॥ पटुवे का पुत्र मेरा भाई है। अत हे भाई तू मुझे माला गाँठ दे ॥६॥ ज्योतिषी का पुत्र मेरा भाई है। अत हे भाई! तू मुझे (माला पहिनने का) महूरत देख दे ॥७॥

कहा जाता है कि इन मुडिया अक्षरो के आविष्कर्ता मुगल सम्राट् अकबर के अर्थ-सचिव राजा टोडरमल थे[११]। ऐसा कहनेवाले अपने कथन की पुष्टि मे निम्नलिखित दोहा भी उद्धृत करते हैं जिसे वे खुद टोडरमल का बनाया हुआ बतलाते हैं—

देवनागरी अति कठिन, स्वर व्यजन व्यवहार।
तातें जग के हित सुगम, मुडिया कियो प्रचार॥

डिंगल

कहा जा चुका है कि राजस्थानी का एक रूप डिंगल नाम से भी प्रसिद्ध है। यह नाम पश्चिमी राजस्थानी अर्थात् मरुभाषा या मारवाडी के साहित्यिक रूप को दिया गया है और बहुत प्राचीन नही है। कोई उन्नीसवी शताब्दी से यह व्यवहार मे आने लगा है, और जोधपुर के कविराजा बाँकीदास के 'कुकवि-बत्तीसी' नामक ग्रथ मे, जो स० १८७१ मे लिखा गया था, इसका सर्वप्रथम प्रयोग देखा जाता है[१२]—

डींगलिया मिलियाँ करै, पिंगल तणो प्रकास।
ससक्रती ह्वै कपट सज, पिंगल पढियाँ पास॥

बाँकीदास के बाद उनके भाई या भतीजे बुधाजी ने अपने 'दुआवेत' मे दो-तीन जगह इस शब्द का प्रयोग किया है—

सब ग्रथू समेत गीता, कू पिछाँणै।
डींगल का तो क्या संस्कृत भी जाँणै॥१५५॥

---

११ बालचन्द मोदी, देश के इतिहास मे मारवाडी जाति का स्थान पृ० २३२

१२ बाँकीदास ग्रथावली, भाग दूसरा, पृ० ८१

और भी सांदुओ मैं चैन अरु पीथ।
डीगल मे खूब गजब जस का गीत ॥१५६॥
और भी आसीयू मे कवि वक।
डीगळ पीगळ सस्कृत फारसी मैं निसक ॥१५७॥

तब से बराबर इस नाम का प्रयोग होता आ रहा है और लोग मारवाडी भाषा-कविता के लिए इमी शब्द का प्रयोग करते विशेप देखे गये है।

कुछ लोग डिंगल को मारवाडी से भिन्न चारणो की एक अलग ही भाषा बतलाते है। परन्तु उनका यह विचार भ्रमपूर्ण है। वस्तुत डिंगल और मारवाडी मे उतना ही अन्तर है जितना साहित्यिक हिन्दी और बोलचाल की हिन्दी मे है।

मारवाडी का डिंगल नाम कैसे और क्यो पडा, इन प्रश्नो पर बडा विवाद है और अपनी-अपनी पहुँच तथा बुद्धि के अनुसार लोगो ने भिन्न-भिन्न मत दिए हैं। प्रधान-प्रधान मत और उनकी समीक्षाएँ नीचे दी जाती हैं।

पहला मत--डिंगल शब्द का असली अर्थ अनियमित अथवा गँवारू था। ब्रजभाषा परिमार्जित थी और साहित्य-शास्त्र के नियमो का अनुसरण करती थी। पर डिंगल इस सम्बन्ध मे स्वतत्र थी। इसलिए इमका यह नाम पडा[१३]। --डा० एल० पी० टैसीटरी

समीक्षा--डा० टैसीटरी ने डिंगल को गँवारू का द्योतक मान कर अपने मत का प्रतिपादन किया है। परन्तु उनकी यह मान्यता अयुक्त है। कारण कि प्रारंभ मे डिंगल गँवारो की भाषा नही, बल्कि पढे-लिखे चारण-भाटो

१३. Journal and Proceedings of the Asiatic Society of Bengal, Vol X, p 376

की भाषा थी, जिनका और जिनकी कृतियो का राजदरबारो मे बडा सम्मान हुआ करता था। और, पढे-लिखे लोगो तथा राजदरबार की भाषा कभी गँवारू नही कही जा सकती। दूसरे, उनका यह कहना भी ठीक नही है कि डिंगल भाषा अनियमित और ब्रजभाषा के मुकाबले मे अमार्जित थी। अर्थात् साहित्य-शास्त्र के नियमो से मुक्त थी। डिंगल के प्राचीन ग्रथो तथा फुटकर गीतादि से स्पष्ट विदित होता है कि व्याकरण की विशुद्धता के साथ-साथ छद, रस, अलकार आदि काव्यागो का डिंगल कविता मे भी उतना ही ध्यान रखा जाता था जितना ब्रजभाषा की कविता मे। हाँ, शब्दो की तोड-मरोड ब्रजभाषा की अपेक्षा डिंगल मे अवश्य कुछ अधिक पाई जाती है, पर इसीलिए उसे गँवारू कह बैठना हमारे खयाल से युक्ति-सगत प्रतीत नही होता।

दूसरा मत—प्रारभ मे इसका नाम डगळ था, पर बाद मे पिंगल शब्द के साथ तुक मिलाने के लिए डिंगल कर दिया गया। डिंगल किसी भाषा का नाम नही है। कविता-शैली का नाम है।[14]—हरप्रसाद शास्त्री

समीक्षा—शास्त्री जी ने डिंगल शब्द की व्युत्पत्ति डगळ से बतलाई है और अपने मत के समर्थन मे एक प्राचीन छद का निम्नलिखित थोडा-सा अश भी उद्धृत किया है जो उन्हें जोधपुर के कविराजा मुरारिदान द्वारा प्राप्त हुआ था। इस छद का रचना-काल शास्त्री जी ने चौदहवी शताब्दी बतलाया है—

दीसे जगल डगल जेथ जल बगल चाटे।
अनहुता गल दियै गला हुता गल काटे॥

---

14 Preliminary Report on the Operation in search of Mss of Bardic Chronicles, P 15

ज्ञात होता है, यह पूरा छंद शास्त्री जी के देखने मे नही आया। इसका अर्थ भी उन्होने नही दिया। केवल यही कहकर छोड दिया है कि 'इससे स्पष्ट है कि जगल देश अर्थात् मरुदेश की भाषा डिंगल कहलाती थी'। यदि शास्त्री जी को पूरा छद पढने को मिल जाता तो डिंगल की उत्पत्ति डगळ से बतलाने की भूल उनसे न हुई होती। क्योकि इसमें भाषा का कही जिक्र ही नही है। न यह चौदहवी शताब्दी का लिखा हुआ है। यह अल्लूजी चारण का लिखा हुआ है जो १७वी शताब्दी मे हुए हैं। इसमे ईश्वर की सर्व-शक्तिमत्ता का बखान किया गया है। पूरा छप्पय विशुद्ध रूप मे यहाँ दिया जाता है,—

दीसे जगळ डगळ, जेथ जळ बगलाँ चाढै।
अणहूँता गळ दियै, गळा हूँता गळ काढै॥
मच्छगळागळ माँहि, ग्वाळ ह्वै गळी दिखाळे।
गळी डाळ फळ गजै, गजी डाळाँ फळ गाळै॥
नगळै असुर सुर नाग नर, आपण चै कुळ ऊधरै।
अनत रै हाथ मगळ-अमगळ, कई मगळ विद्या करै[15]॥

इससे स्पष्ट है कि डिंगल का डगळ से कोई सबध नही है। आगे शास्त्री

---

१५ जहाँ उजाड और मिट्टी के ढेले दिखाई देते हैं वहाँ चारो ओर बगलो तक पानी चढ आता है। जिनके पास भोजन नही है उनको वह भोजन देता है और जिनके पास भोजन है उनके गले से भोजन निकाल लेता है। अराजकता के समय वह ग्वाला बनकर मार्ग दिखाता है। वह गली हुई डालियो पर फल लगाता है और जिन डालियो पर फल लगे हुए होते हैं उनको गला देता है। वह असुर, सुर, नाग और नर को निगल जाता है और अपने कुल अर्थात् भक्त समुदाय को बचा लेता है। मगल और अमगल ईश्वर के हाथ है। वह अनेक इन्द्रजालिक क्रियाएँ करता रहता है।

जी ने डिंगल को एक भाषा नहीं, बल्कि काव्य की एक शैली मात्र माना है। परन्तु यह भी उनकी स्पष्ट गलती है। डिंगल एक बहुत उन्नत भाषा है जिसका पृथक् व्याकरण, पृथक् छन्द-शास्त्र एव पृथक् काव्य-परिपाटी है और जो हजारो शब्द-मुहावरो से समृद्ध है। एक समय था जब यह सारे राजस्थानी की साहित्यिक भाषा थी।

तीसरा मत—डिगल मे 'ड' वर्ण बहुत प्रयुक्त होता है। यहाँ तक कि यह डिंगल की एक विशेषता हो गई है। 'ड' वर्ण की इस प्रधानता को ध्यान मे रखकर ही पिंगल के साम्य पर इस भाषा का नाम डिंगल रखा गया है। जिस प्रकार बिहारी लकार प्रधान भाषा है उसी तरह डिंगल भी डाकर प्रधान भाषा है।[१६] —गजराज ओझा

समीक्षा—यह मत भी निराधार है। डिंगल के दो-चार पृष्ठो मे कही 'ड' वर्ण की अधिकता देखकर उसे इसकी विशेषता बतलाना और उसी बुनियाद पर इसका डिंगल नाम पडने की क्लिष्ट कल्पना कर लेना सिवा तर्कदोष के और कुछ नही है। ससार मे अनेक भाषाएँ प्रचलित है। परन्तु किसी खास वर्ण की प्रधानता के कारण किसी भाषा का कोई नाम रखा गया हो ऐसा अभी तक सुनने मे नही आया। बिहारी मे लकार की प्रधानता शायद हो। पर इससे क्या हुआ? इसका प्रभाव उसके नामकरण पर तो कुछ नही पडा। कहलाती तो वह 'बिहारी' ही है। दूसरी आपत्ति इस मत को स्वीकार कर लेने मे यह है कि हमे मान लेना पडता है कि पिंगल के साम्य पर डिंगल शब्द का निर्माण हुआ, जिसका कोई प्रमाण नही है।

चौथा मत—डिंगल शब्द डिम + गळ से बना है। डिम का अर्थ डमरू की ध्वनि और 'गळ' का गला होता है। डमरू की ध्वनि रणचडी का आह्वान करती है तथा वह वीरो को उत्साहित करनेवाली है। डमरू वीर रस के

---

१६ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग, १४, पृ० १२२-१४२

देवता महादेव का बाजा है। गले से जो कविता निकलकर डिम्-डिम् की तरह वीरो के हृदय को उत्साह से भर दे उसी को डिंगल कहते है। डिंगल भाषा मे इस तरह की कविता की प्रधानता है। इसलिए वह डिंगल नाम से प्रसिद्ध हुई[१७]।—पुरुषोत्तमदास स्वामी

समीक्षा—महादेव को वीर रस का देवता और डमरू की ध्वनि को उत्साहवर्धक मानकर इस मत की कल्पना की गई है। पर न तो महादेव वीर रस के देवता है, न डमरू की ध्वनि कही उत्साहवर्धक मानी गई है। वीर रस के देवता महादेव नही, इन्द्र हैं। महादेव रौद्र रस के अधिष्ठाता है। फिर डमरू की ध्वनि की भाँति उत्साहवर्धक और गले से निकली हुई कविता का गठबधन तो बिलकुल युक्ति-शून्य और हास्यास्पद है। अतएव इस मत का निराधार होना स्पष्ट सिद्ध है।

पाँचवाँ मत—डिंगल के कवि पिंगल को पागळी (पगु) भाषा मानते है और पिंगल के मुकाबले मे डिंगल को उडनेवाली भाषा कहते है। क्योंकि पिंगल की अपेक्षा डिंगल के व्याकरण, छदशास्त्र आदि के नियम अधिक सुगम हैं और कवि की इच्छानुसार शब्दो का मनमाना प्रयोग करने को सुविधा भी इसमें बहुत है। डगळ शब्द से जो डिंगल भाषा की उक्त विशेषताओ का सूचक है डिंगल शब्द बना है। डग=पख। ल=लिये हुए। डगल=पख लिये हुए=पखवाली=उडनेवाली=स्वतत्रता से चलनेवाली अर्थात् सुगमता से काम मे आनेवाली।[१८] —उदयराज

समीक्षा—डिंगल भाषा के व्याकरण, छन्दशास्त्र आदि के नियमो को पिंगल के व्याकरण, छन्दशास्त्र आदि के नियमो से अधिक सरल बतलाकर इस मत की सार्थकता सिद्ध करने की कोशिश की गई है। परन्तु वस्तु-

---

१७ नागरी प्रचारिणी पत्रिका; भाग १४, पृ० २५५
१८. क्षात्र-धर्म-सन्देश, वर्ष १, अक ६-७, पृ० १८

स्थिति दूसरी ही है। बिलकुल इसके विपरीत है। सच तो यह है कि डिंगल-व्याकरण और छद-शास्त्र आदि के नियम पिंगल व्याकरण और छन्दशास्त्र आदि के नियमो से अधिक सरल नही, वल्कि अधिक जटिल हैं। साथ ही सख्या मे भी ज्यादा है। उदाहरण के लिए छदो ही को लीजिए। पिंगल मे जितने छन्द है उतने तो डिंगल मे है ही। इनके अलावा गीत जाति के ९४ छन्द और भी है जिनका पिंगल मे कही पता नही है। जैसे—पालवणी, भापडी आदि। इसके सिवा डिंगल मे वैणसगाई का नियम ऐसा कठोर है कि जिसके सामने पिंगल काव्य के सब नियम-बंधन मिलकर भी कुछ नही के बराबर हैं। डिंगल के कवि अपने काव्य-ग्रथ आदि इसलिए इस भाषा मे नही लिखते थे कि व्याकरण, छद आदि की दृष्टि से यह पिंगल से अधिक सुगम थी, वल्कि इसलिए लिखते थे कि यह उनके प्रदेश की भाषा थी। यदि डिंगल वास्तव मे पिंगल से सरल होती तो राजस्थान से बाहर के पिंगल के कवि भी अवश्य इस भाषा मे काव्य-रचना करते। परन्तु किसी ख्यातनामा कवि ने ऐसा नही किया। आगे 'डगळ' से डिंगल की व्युत्पत्ति वतलाई गई है जो भाषाशास्त्र की दृष्टि से अग्राह्य है। भाषाशास्त्रानुसार किसी शब्द मे मात्रा और अनुस्वार दोनो की वृद्धि एक साथ नही होती। इनका लोप अवश्य होता है। जैसे डिंगल अथवा डीगळ का डगळ तो हो सकता है पर डगळ का डिंगल या डीगळ नही हो सकता। अत यह मत भी आधार-शून्य एव खीचातानी का है और भाषाशास्त्र के सर्वसम्मत सिद्धान्तो के विरुद्ध भी है।

इनके अतिरिक्त दो एक मत और भी राजस्थान मे प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए कुछ लोग इसे 'डिभ+गळ' से कुछ 'डिग्गी+गळ' से और कुछ 'डींग' से बना हुआ वतलाते है। स्वर्गीय पडित रामकरणजी आसोपा और ठाकुर किशोरसिंह जी वारहठ ने इसकी उत्पत्ति क्रमश 'डगि' और 'डीङ' धातुओ से वतलाई है। डा० ग्रियर्सन और डा० श्याम-सुन्दरदास ने लिखा है कि जो लोग ब्रजभाषा मे कविता करते थे उनकी

भाषा पिंगल कहलाती थी, और इससे भेद करने के लिए मारवाडी भाषा का उसी की ध्वनि पर गढा हुआ डिंगल नाम पडा है। परन्तु सार की बात इनमे भी कुछ नजर नही आती। इसलिए इनके विषय मे यहाँ कुछ कहना अपना और पाठको का समय नष्ट करना है।

यथार्थत 'डिंगल' शब्द डीगळ का परिवर्तित रूप है। प्रारंभ मे जिस समय मारवाडी के लिए इस शब्द का प्रयोग होना शुरू हुआ उस समय यह 'डीगळ' ही बोला और लिखा जाता था। बाद मे धीरे-धीरे 'डिंगल' हो गया जिसका मूल कारण डा० ग्रियर्सन आदि अग्रेज लेखक हैं। 'डिंगल' शब्द के उच्चारण से अपरिचित होने के कारण उन्होंने 'पिंगल' और 'डीगळ' के उच्चारण मे कोई भेद नही किया। और अपने ग्रथो मे दोनो की हिज्ज एक ही तरह से लिखी, Pingala और Dingala। Pingala का उच्चारण हिन्दीवाले 'पिंगल' करते आ रहे थे। इसीलिए यह समझकर कि 'डीगळ' भी इसी तरह बोला जाता होगा उन्होंने इसे 'डिंगल' बोलना और लिखना शुरू कर दिया। राजस्थान के पढे-लिखे लोगो ने इनका अनुकरण किया और अब यह शब्द इसी रूप मे चल पडा है। परन्तु राजस्थान के वृद्ध राजपूत-चारणो मे, जिनमे डिंगल साहित्य का विशेष आदर और प्रचार है, इसका शुद्ध रूप आज भी ज्यो का त्यो सुरक्षित है। वे लोग इसका उच्चारण 'डिंगल' कभी नही करते, 'डीगळ' ही करते हैं।

यह एक अनुकरणात्मक शब्द है जो शीतल, बोझल, घूमल आदि शब्दो के अनुकरण पर डिंगल साहित्य मे वर्णित अत्युक्त-पूर्ण[१९] वृत्तो

---

१९ In fact, generally, speaking, there is probably no bardic literature in any part of the world, in which truth is so marked by fiction or so disfigured by hyperboles,

को ध्यान मे रखकर उसकी इस विशेषता के द्योतनार्थ गढ लिया गया है। इसकी उत्पत्ति 'डीग' शब्द के साथ 'ल' प्रत्यय जोडने से हुई है। और इसका अर्थ है, डीग से युक्त अर्थात् अतिरजना-पूर्ण। इस तरह शब्द के साथ ल प्रत्यय जोडकर वनाये हुए कई शब्द और भी डिंगल भाषा में देखने में आते हैं। जैसे–

> अकवरिये इक वार, दागळ की सारी दुनी।
> अणदागळ असवार, चेटक राण प्रतापसी[२०] ॥१॥
>
> —विरुदछहत्तरी

> काटळ आवध मूझ कर, मन मदाइण मन्न।
> आवध राखै ऊजळा, मैला ज्यारा मन्न[२१] ॥२॥
>
> —कायरबावनी

---

as in the bardic literature of Rajputana In the magniloquent strains of a charan, everything takes a gigantic form, as if he was seeing the world through a magnifying glass every skirmish becomes a Mahabharata, every little hamlet a Lanka, every warrior a giant who with his arms upholds the sky,—Dr L P Tessitori (Journal and Proceedings of the Asiatic Society of Bengal, Vol XIII 1917, p 228)

२० अकवर ने एक ही वार मे सारी दुनियाँ को (दागल) कलक-युक्त अथवा दागदार वना दिया। सिर्फ चेतक घोडे का असवार राणा प्रतापसिंह (अणदागल) विना दागवाला है।

२१ (कोई कायर अपनी स्त्री से कहता है) मेरे हाथ मे (काटल) जगदार शस्त्र है और मेरा मन आकाश-गगा के समान स्वच्छ है। अपने

बोलचाल की मारवाडी की अपेक्षा यह साहित्यिक भाषा डिंगल समझने मे कुछ कठिन थी और संस्कृत जैसी सुघटित भी न थी। अत अत्युक्ति के भाव के अतिरिक्त दुरूहता एव अनगढता के भी भाव इस "डिंगळ" शब्द के साथ लिपटे हुए हैं। परन्तु सामान्य जनता इसके ये तीनो अर्थ ग्रहण नही कर पाती। सिर्फ वही लोग कर पाते हैं जो सुशिक्षित हैं और जिनका डिंगल भाषा व साहित्य से गहरा परिचय है। आम जनता इससे केवल अनगढता का अर्थ लेती है। क्योंकि अन्य प्रसंगो मे इस शब्द का प्रयोग वह बहुधा इसी अर्थ मे करती है। जैसे–'या तो एक डीगळ बात है', 'मूं तो डीगळ मनख हूं' इत्यादि। अस्तु।

प्राचीन और अर्वाचीन डिंगल

डा० टैसीटरी ने डिंगल भाषा के दो स्वरूप माने है (१) प्राचीन डिंगल और (२) अर्वाचीन डिंगल। लगभग तेरहवी शताब्दी के मध्य से लेकर सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक की डिंगल को उन्होंने प्राचीन डिंगल और सत्रहवीं शताब्दी के मध्य से लेकर आज तक की डिंगल को अर्वाचीन डिंगल बतलाया है[22]। यह स्वरूप-भेद और सीमा-निर्देश उन्होंने डिंगल मे प्रयुक्त कुछ शब्दो की हिज्जे और उच्चारण सबधी कुछ विशेषताओ के आधार पर किया है, व्याकरण के आधार पर नही। उनके कथनानुसार प्राचीन डिंगल और अर्वाचीन डिंगल मे मुख्य भेद यह है कि प्राचीन डिंगल मे जहाँ 'अइ' और 'अउ' का प्रयोग होता था वहाँ अर्वाचीन डिंगल मे क्रमश 'ऐ' और 'औ' का प्रयोग होता है। अपनी इस बात को सिद्ध करने के लिए उन्होंने अपने सम्पादित प्राचीन डिंगल ग्रथो तथा फुटकर गीतादि

शस्त्रो को उज्ज्वल अथवा मँजे हुए तो वे लोग रखते है जिनके मन मैले है।

२२ वचनिका राठौड रतनसिंह जी री महेसदासओतरी, भूमिका पृ० ४।

मे सर्वत्र 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' और 'औ' के स्थान पर अउ' का प्रयोग किया है और माथै, चकवै, जैतमी, राठौड, रौद्र, चित्तौड, फौज, चूंडौ, जोवौ इत्यादि शब्दो को क्रमश मायइ, चकवइ, जइतसी, राठउड, रउद्र, चितउड, चूडउ, जोवउ इत्यादि कर के लिखा है।

भाषा एक परिवर्तनशील वस्तु है। अन्य वस्तुओ की तरह इसका रूप भी सर्वदा बदलता रहता है। इसलिए आज की और आज से २००-४०० वर्ष पहले की डिंगल मे अन्तर होना स्वाभाविक है। परन्तु जिस आधार पर डा० टैसीटरी ने प्राचीन और अर्वाचीन डिंगल का भेद खडा किया है वह उनका मनमाना और डिंगल की प्रकृति एव उच्चारण शैली के विपरीत है। पहली बात तो यह है कि डिंगल मे साहित्य-रचना का श्रीगणेश ही पद्रहवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे स० १४६० के बाद हुआ है और इसलिए प्राचीन डिंगल का चार सौ वर्षो का जो काल (स० १२५७-स० १६५७) उन्होने निश्चित किया है वही गलत है। इस काल को अधिक से अधिक दो सौ वर्षो का माना जा सकता है। दूसरे, शब्द-रचना का उनका उक्त तरीका भी ठीक नही है। सिर्फ डिंगल का प्राकृत-अपभ्रश से सबध बतलाने के लिए इसकी कल्पना कर ली गई है। इसमे सन्देह नही कि डिंगल अपभ्रश के द्वारा प्राकृत से निकली है। परन्तु इस बात को सिद्ध करने के लिए यह आवश्यक नही है कि डिंगल मे प्राकृत-अपभ्रश की सभी विशेषताओं के विद्यमान होने की क्लिष्ट कल्पना कर ली जाय। हिन्दी की तरह डिंगल की भी एक बहुत बडी विशेषता यह है कि इसमे भी जो शब्द जिस तरह बोला जाता है ठीक उसी तरह लिखा भी जाता है। राजस्थान मे कोई भी जइतसी, राठउर आदि नहीं बोलता। न कोई लिखता है। सभी जैतमी राठौड आदि लिखते और बोलते है। यदि कोई यह कहे कि इनका उच्चारण आजकल तो जडतमी, राठउड आदि नही होता, पर प्राचीन काल मे शायद होता हो तो इसका उत्तर यह है कि डिंगल के बहुत से प्राचीन ग्रथ एव

फुटकर पद्य मिल चुके हैं और उनमे जैतसी, राठौड आदि रूप ही लिखे मिलते है। यह दूसरी बात है कि प्राकृत-अपभ्रंश से मिलते-जुलते प्राचीन रूपो का व्यवहार भी डिंगल के कवियो ने परम्परा के विचार से यत्र-तत्र किया हो। परन्तु इन थोडे से प्राचीन रूपो के आधार पर कोई व्यापक सिद्धान्त कदापि स्थिर नही किया जा सकता। यदि डा० टैसीटरी ने अपना यह शब्द-विधान कुछ शब्दों तक ही सीमित रखा होता तब भी कुछ ठीक था। परन्तु उन्होंने तो चित्तौड, नागौर, जोधौ इत्यादि व्यक्तिवाचक संज्ञाओं तक को चितउड, नागउर, जोधउ इत्यादि बनाकर उनके प्रकृत रूप को विकृत कर दिया है। अच्छा हुआ कि दो-एक व्यक्तियों को छोडकर राजस्थान के विद्वानों मे से किसी ने डा० टैसीटरी की चलाई हुई इस गलत पद्धति का अनुकरण नही किया और यह एक पोथियो की ही बात रह गई।

डिंगल भाषा से संबंधित जातियाँ

डिंगल भाषा का उदय और उत्थान होने से पूर्व राजस्थान के राज-दरबारो मे मुख्यत. संस्कृत भाषा का दौर-दौरा था। प्रत्येक राजसभा मे संस्कृत के पंडित और कवि रहा करते थे जो राजकुमारो को शिक्षा देते और प्रशस्तिया आदि लिखते थे। परन्तु बाद मे जब डिंगल अच्छी तरह से विकसित होकर प्रौढावस्था को पहुच गई तब इसका भी राजदरबारो मे प्रवेश हुआ और संस्कृत के साथ-साथ इसे भी सम्मान मिलने लगा। डिंगल को राजसभाओं मे पहुचाने मे मुख्य हाथ चारण आदि कुछ विशेष जातियों के लोगों का था जो राजा-महाराजाओं की प्रशंसा मे ग्रथ तथा फुटकर गीत आदि लिखते और उन्हे सुना-सुनाकर अपनी उदरपूर्ति करते थे। धीरे-धीरे डिंगल का प्रचार बढा और ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि अन्य जातियो के लोग भी इसमे साहित्य-रचना करने लगे। परन्तु इन दूसरी जातियो का रचा हुआ डिंगल साहित्य बहुत थोडा है। वस्तुत डिंगल भाषा साहित्य-सृजन का

मुख्य श्रेय चारण[२३] जाति को और उसके बाद भाट, राव, मोतीसर और ढाढ़ी जातियों को है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जातियाँ विश्व-विख्यात हैं और इनके विषय में अनेक ग्रंथ लिखे जा चुके हैं। परन्तु चारण, भाट, राव आदि जातियों के बारे में लोगों में बड़ा भ्रम फैला हुआ दीख पड़ता है। कोई-कोई तो चारण और भाट जाति को एक ही समझते हैं। इतना ही नहीं, जहा कहीं अंग्रेजी के 'बार्ड' शब्द का अनुवाद करना होता है वहा कुछ लोग उसका अनुवाद 'चारण' और कुछ 'भाट' करते हैं। वस्तुत ये दोनों ही पर्याय गलत हैं। क्योंकि अंग्रेजी का 'बार्ड' शब्द जहा किसी जाति विशेष का सूचक नहीं है वहा 'चारण' और 'भाट' शब्द दो भिन्न जातियों के सूचक हैं। इस तरह की भ्रान्तियों को दूर करने के लिए डिंगल भाषा-साहित्य से विशेष सम्बन्ध रखनेवाली उल्लिखित पाचों जातियों का संक्षिप्त परिचय हम यहा देते हैं।

चारण

"चारयन्ति कीर्तिम् इति चारणा"। अर्थात् कीर्ति का प्रचार करते हैं इसलिए इनकी संज्ञा चारण है। यह एक बहुत प्राचीन जाति है। वाल्मीकि रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत आदि पुराणों में अनेक स्थानों पर इस जाति का उल्लेख मिलता है। चारण-इतिहासवेत्ता स्वर्गीय कविराज श्यामलदास ने अपने "वीरविनोद" नामक ग्रंथ में अपनी जाति का परिचय देते हुए लिखा है कि 'यह जाति सृष्टि सृजन-काल से पाई जाती है, क्योंकि

---

२३ राजस्थानी के प्राचीन ग्रंथों में चारण के लिए ईसर, कव, कवि, कविजण, गढवी, गुणियण, ताकव, दूधी, दीपण, पात, पालपात, बारहठ, भाणव, मागण, रेणव, वीदग और इनव शब्दों का प्रयोग भी देखने में आता है।

हमारे भारतवर्ष का पहिला मुख्य शास्त्र वेद माना गया है उसमे भी चारण जाति का नाम मिलता है[24]। श्यामलदास का सकेत यजुर्वेद के इस मन की ओर है—

यथेमा वाच कल्याणीमावदानिजनेभ्य
ब्रह्मराजन्याभ्या शुद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणायच[25]।
अध्याय २६, म० २

परन्तु इसका अर्थ उन्होने गलत समझा है। 'चारणाय' शब्द यहा चारण जाति का द्योतक नहीं है। वेदो के सुप्रसिद्ध तीनो भाष्यकारो—सायण, उव्वट और महीधर—ने इसका च + अरणाय पदच्छेद करके 'अरणाय' का अर्थ 'प्रिय न लगनेवाले' किया है। प्रसग और विषयानुक्रम को देखते हुए इन विद्वानो के इस अर्थ मे किसी प्रकार की शका व मतभेद की गुजाइश नहीं है।

अतीत मे किसी समय यह जाति गन्धमादन पर्वत पर रहती थी। जब महाराज पृथु ने यज्ञ किया तब उन्होने चारणो को भी उसमे सम्मिलित होने के लिए बुलाया, और यज्ञ की समाप्ति पर उनको तैलग देश दक्षिणा मे दिया। तब से ये लोग गधमादन पर्वत को छोडकर तैलग देश मे रहने लगे। कोई आठवी शताब्दी तक ये तैलग देश मे रहे। बाद में सिन्ध प्रान्त मे जाकर बस गए जहाँ से धीरे-धीरे कच्छ, काठियावाड, राजस्थान, मालवा आदि प्रान्तो मे फैले है। राजस्थान मे इनकी सब से अधिक सख्या मारवाड मे है। परन्तु मेवाड, जयपुर, कोटा, बूदी आदि अन्य रियासतो मे भी ये बहुत सख्या मे पाये जाते है।

---

२४. वीर विनोद, प्रथम भाग, पृ० १६८

२५. मैं जिस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र तथा वैश्य और अपने प्रिय लगने वाले और (अरणाय) प्रिय न लगने वाले जनो के लिए इस कल्याणकारिणी वाणी को बोलूँ।

चारण जाति चार भागो मे विभक्त है—मारु, काछेला, सौरठिया और तुम्बेल। इनके ये नाम भिन्न-भिन्न प्रान्तो मे बसने के कारण पड गये हैं। उदाहरणार्थ, मारवाड मे रहने के कारण वहाँ के चारण मारू और कच्छ मे रहने के कारण वहाँ के काछेले कहलाने लगे हैं। राजस्थान मे मारू चारण अधिक मिलते है। इनकी कई शाखा-प्रशाखाएँ है। जैसे आशिया, टापरिया, रोहडिया इत्यादि।

चारण लोग अपने को चार वर्णों से बाहर देव जाति मे मानते है। ये शाक्त मतावलवी हैं, देवी को जोगमाया के नाम से पूजते है और अपने ही में से बहुत सी औरतो को शक्ति अर्थात् देवी का अवतार मानते हैं और उनकी पूजा भी देवियो के समान करते हैं। कहते है कि इस जाति मे कई लाख देवियो का जन्म हुआ है जिनमे सब से पहली देवी हिंगुलाज मानी जाती है। इन देवियो मे करणीजी का स्थान सबसे ऊँचा माना गया है। करणी जी की शपथ चारणो मे बहुत प्रामाणिक समझी जाती है। चारण लोग अपनी संतानो के नाम भी कभी-कभी इन देवियो के नाम पर रखते हैं। जैसे, हिंगुलाजदान, करणीदान, आवडदान आदि। ये नाम क्रमश: हिंगुलाज, करणी, आवड आदि इनकी आराध्य देवियो के नाम पर रखे गये है।

राजस्थान के चारणो की रहन-सहन, रीति-रिवाज, वेष-भूषा, खान-पान, आचार-व्यवहार आदि सब यहाँ के राजपूतो से मिलते-जुलते है। केवल एक बात मे भेद है। राजपूतो मे ज्येष्ठ पुत्र अपने पिता की सम्पत्ति का अधिकारी होता है और छुटभाइयो को उनकी आजीविकार्थ कुछ मिल जाता है। परन्तु चारणो मे पिता की सम्पत्ति का बँटवारा सभी पुत्रो मे बराबर होता है। छोटे बडे का कोई लिहाज नही रखा जाता।

चारण राजपूतो की याचक जाति है। राजपूतो को छोडकर इस जाति के लोग किसी दूसरी जाति से नही माँगते। राजपूत भी चारणो को बड़ी

श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं और 'भाभा', 'बारहठजी'[२६] आदि आदर-सूचक शब्दो द्वारा इनको सबोधित करते है। राजस्थान की छोटी-बडी सभी रियासतो मे राजपूतो ने चारणो को गाँव दे रखे हैं जिनमे इनका जीवन निर्वाह होता है। राजस्थान में शायद ही कोई ऐसा अभागा चारण मिलेगा जिसके पास दो चार बीघा जमीन न हो। कइयो के पास तो दस दस बीस-बीस हजार की वार्षिक आय के बडे बडे गाँव है। जोधपुर राज्य का मूंधियाड ठिकाना तो लगभग साठ हजार का माना जाता है। इन गाँवो पर इनको किसी प्रकार का कोई लगान नही देना पडता। राजस्थान मे इनको 'माफी के गाँव' कहते है। अकेले जोधपुर राज्य मे चारणों के लगभग पौने चार सौ गाँव हैं जिनसे इनको अनुमानत चार लाख रुपयो की वार्षिक आमदनी होती है।

इसके अलावा जब कभी किसी प्रतिष्ठित राजपूत के घर विवाह आदि का कोई शुभ अवसर होता है तब इनको दान मिलता है। इस दान को ये 'त्याग' कहते हैं। कुछ वर्ष पूर्व इस 'त्याग' के लिए चारण राजपूतो को बहुत तंग किया करते थे। ये राजपूतो से अधिक 'त्याग' लेना चाहते और वे कम से कम देने की कोशिश करते थे। कहा जाता है कि इस 'त्याग' के

---

२६ बारहठ उन चारणो को कहते हैं जिनको राजपूत लोग अपनी पोल (स० प्रतोली) का नेग देते है। जब कोई वर किसी के घर विवाह करने को जाता है तब दुलहिन के पिता का चारण उसके प्रवेश-द्वार पर खडा रहता है। वर जिस हाथी अथवा घोड़े पर चढकर तोरण वदाता है उस हाथी अथवा घोडे को लेने का अधिकार उस चारण का होता है। 'बार' दरवाजे को कहते हैं, और दरवाजे पर हठ कर के नेग लेने वाला चारण बारहठ कहलाता है। डिंगल साहित्य मे प्रयुक्त बारठ 'बारैठ' शब्द इसी 'बारहठ' के रूपान्तर है।

दुःख से बचने के लिए बहुत गरीब से राजपूत कभी-कभी अपनी कन्याओं को मार भी डालते थे, ताकि न उनका विवाह हो और न त्याग देने की परेशानी का सामना करना पडे। परन्तु आजकल पढे-लिखे चारण 'त्याग' लेना पसद नही करते। कुछ सुधार-प्रिय व्यक्तियो ने इसके विरुद्ध आवाज भी उठाई है। सरकार ने भी इस पर थोडा-सा प्रतिबध लगा दिया है। इससे इस कुप्रथा मे कुछ कमी अवश्य आई है, पर बिलकुल बद फिर भी नही हुई है। किसी न किसी रूप मे जारी ही है।

प्रचीन काल मे अधिकाश चारण राज दरबारी हुआ करते थे और कविता करके अपना पेट भरते थे। परन्तु आधुनिक दुनियाँ मे इस तरह के धंधो के लिए अब कोई स्थान नही रह गया है। अत जिन चारणो के पास बडी बडी जागीरें है वे तो घर बैठे अपना जीवन-निर्वाह कर लेते है। परन्तु जो गरीब है और जिनके पास बडी-बडी जागीरें नही हैं वे खेती, नौकरी, पशु-पालन आदि द्वारा अपनी जीविका चलाते हैं।

चारण जाति एक राज-भक्त और स्वामि-भक्त जाति है। बहुत दीर्घ काल तक इसने राजपूतो को उनके स्वाधीनता सग्राम मे सहायता दी है। इसने दुःख और सुख की, युद्ध और शाति की, निराशा और आशा की सभी तरह की अच्छी और बुरी घडियो मे राजपूत जाति का साथ दिया है। इसकी वीर वाणी ने अतीत मे कई कायरो मे जीवन फूंका है। कई हताश व्यक्तियों को आशावान बनाया है। कई हारे हुए युद्धो को जिताया है।

राजपूतों के साथ-साथ चारण का भी ह्रास हुआ है। इस समय इस जाति मे न तो कोई अच्छे कवि है, न विद्वान्। दो-एक जो है वे भी लकीर के फकीर बने हुए है। शिक्षा की भी इस जाति मे बहुत कमी है। यदि यह जाति उन्नति करे तो प्राचीनकाल की तरह अर्वाचीन काल मे भी देश के लिए बडी हितकर सिद्ध हो सकती है। क्योंकि देश के लिए जनमत तैयार

करने तथा लोगो मे उत्साह भरने की एक ऐसी ढब इस जाति मे पाई जाती है जो इसी की चीज है, इसी को फबती है।

भाट -

भाट शब्द सस्कृत भट्ट का रूपान्तर है। "शब्द-स्तोम-महानिधि", "शब्द-कल्पद्रुम", "शब्दार्थ-चिन्तामणि", "वृहत्सस्कृताभिधान" इत्यादि सस्कृत-कोषो मे 'भट्ट' शब्द के दो अर्थ मिलते है (१) वेदाभिज्ञ पण्डित और (२) स्तुति पाठक जाति विशेष। परन्तु इससे बना हुआ भाट शब्द ये दोनो अर्थ नही देता। इसके केवल दूसरे अर्थ अर्थात् उस जाति का बोध होता है जो ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जातियो की वशावलियाँ रखती है। यह जाति ब्राह्मण नही है। भाट सभी जातियो के होते है। भिन्न-भिन्न जातियो के भाट भिन्न-भिन्न नामो से प्रसिद्ध हैं। जैसे, राजपूतो के भाट वडवा और महेसरियो के जागा कहलाते हैं। स्वय भाटो के भी भाट होते है जो 'वही-बँच्या' भाट कहे जाते हैं।

भाटो की कई जातियाँ-उपजातियाँ हैं। इनका मुख्य कर्म अपने यजमानो की पीढियाँ रखना है। परन्तु कोई-कोई भाट ग्रन्थ तथा गीत-कवित्त भी लिखते है। भाटो की वहियो पर लोग बहुत विश्वास करते हैं और बहुत से मामलो मे सरकार भी इनको प्रमाणिक मानती है।

इनके विवाह आदि के रस्म-रिवाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि अन्य जातियो के समान ही हैं। ये मदिरा, माँस और तमाखू का सेवन करते है। इनमें नाता (पुर्नविवाह) भी होता है।

राव

अधिकाश मनुष्य राव और भाट जाति को एक समझते है। परन्तु राव लोग इसे स्वीकार नही करते। वे अपने को भाट जाति से भिन्न मानते हैं और अपनी उत्पत्ति ब्रह्मा के यज्ञ से बतलाते हैं। हमारे विचार से भी राव

और भाट जाति में थोड़ा सा अन्तर है पर वह अन्तर वर्ण का नहीं, कर्म का है। जो लोग पीढ़ी-वंशावलियाँ रखते हैं और जिनकी यजमानी ब्राह्मण वैश्य आदि सभी जातियों के यहाँ है वे भाट कहलाते हैं और जो केवल राजपूतों के याचक या राज दरबारी हैं और पीढ़ी वंशावलियाँ रखने का काम नहीं करते वे 'राव' नाम से प्रसिद्ध हैं। यह 'राव' इस जाति की पदवी है जिससे इनका असली नाम छिप गया है। राजस्थान में ऐसी कुछ और भी जातियाँ हैं जिनके नाम उनकी पदवियों में छिप गए हैं। जैसे—पानेरी, मेहता, भंडारी, कोठारी आदि।

यह राजपूतों की याचक जाति है। उनसे 'त्याग' लेती है और उनके अलावा दूसरों से नहीं माँगती। राजपूत लोग इनको भी बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं और अपने राजदरबारों तथा घरों में बड़ा सम्मान देते हैं। उनकी तरफ से इनको सैकड़ों गाँव मिले हुए हैं जिन पर इनका गुजारा होता है।

इस जाति में डिंगल और पिंगल के कई अच्छे-अच्छे कवि और विद्वान् हो गए हैं। इनमें चंदबरदाई, किशोरदास, बख्तावरजी, गुलाबजी आदि के नाम विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं।

गुजरात आदि प्रान्तों में राव जाति इस समय बड़ी समृद्धावस्था में है। उधर के राव अब याचक वृत्ति नहीं करते। व्यापार करते हैं और व्यापार के द्वारा बड़े धनी-मानी बन गए हैं। परन्तु राजस्थान के रावों की हालत बहुत बिगड़ी हुई है। अधिकांश लोग गरीब हैं। शिक्षा का अभाव है। और आगे बढ़ने की महत्वाकांक्षा भी इनमें कम दिखाई देती है।

मोतीसर

इस जाति का प्रामाणिक इतिहास नहीं मिलता। कहा जाता है कि कच्छभुज के राजकवि भादाजी नामक किसी चारण ने अपनी एक

कन्या का विवाह माणकजी नामक एक राजपूत के साथ कर दिया था जिनकी सतान मोतीसर कहलाती है।

मोतीसरो की सख्या अव वहुत थोडी रह गई है और दिन-दिन घटती जा रही है। इनकी आठ खाँपें (शाखाएँ) है जिनके नाम इस दोहे मे गिनाए गये है —

वालण खीला विजमला, रामहिया पडिहार ।
माँगलिया नै चाँदगा, मकवाणा सरदार ॥

मोतीसर चारणो के याचक है। जिस तरह चारण राजपूतो के सिवा किसी दूसरी जाति से नही माँगते उसी तरह मोतीसर भी चारणो के अतिरिक्त दूसरो के समाने हाथ नही पसारते। दशहरे के वाद ये लोग अपने घरो से निकलते है और दो चार महीने चारणो के गाँवो मे घूम-घामकर अपने गुजारे भर के लिए कुछ ले आते है। जव कोई मोतीसर किसी चारण के घर जाता है तव वह उससे उठकर मिलता है और उसके प्रति वडा आदरभाव वतलाता है। चारण-मोतीसरो के पारस्परिक व्यवहार के विषय मे किसी चारण के वनाये हुए प्राचीन गीत की यह पक्ति राजस्थान मे प्रसिद्ध है—

"मोतीसर म्हारै सिर ऊपर, हूँ व्हाँरै कदमाँ रै हेठ"

मोतीसर वहुत पढे-लिखे नही होते पर डिंगल भाषा के गीत वनाने मे वहुत पटु होते हैं। इनके गीत चारणो के गीतो से भी जोरदार माने गए हैं। कोई-कोई धनवान चारण किसी होशियार मोतीसर को अपने यहाँ नौकर रख लेते हैं और उससे गीत वनवा कर खुद राज-दरवारो आदि मे ले जाकर पढते हैं।

ढाढ़ी

यह ढोलियो से मिलती-जुलती जाति है। केवल इतना अतर है कि ढोली ढोल वजाते हैं और ढाढी सारगी या रवाव वजाते हैं। ढाढ़ियो का

कहता है कि हम श्री रामचन्द्र के समय में विद्यमान थे और उनके जन्मदिन हमको बधाई भी मिली थी। अपने इस कथन की पुष्टि में निम्नलिखित पद्य भी ये जब तब दोहराया करते हैं —

दशरथरे घर राम जनमियों, हँस ढाढिन मुख बोरी।
अठारा करोड़ लै चीक भेलिया, काम करन को छोरी॥

कृष्ण जन्माष्टमी के दिन वैष्णव मन्दिरों में भगवान् श्रीकृष्ण की मूर्ति के सामने ढाढी-ढाढिन बनकर गाने-नाचने की प्रथा मारवाड़ में अनेक स्थानों पर बहुत प्राचीन काल से चली आती है। एक आदमी ढाढी का स्वाँग भरता है और दूसरा ढाढिन का। फिर दोनों मिलकर खूब नाचते-गाते हैं। इस पर उनको कुछ इनाम-इकराम भी मिलता है।

इस प्रथा से ढाढी जाति की प्राचीनता पर कुछ प्रकाश पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह जाति श्रीकृष्ण के समय में विद्यमान थी और उस समय इसका हिन्दू मंदिरों में प्रवेश भी होता था। परन्तु बाद में अस्पृश्यता का जोर बढ़ने से अथवा अन्य किसी कारण से उन जातिवालों का हिन्दू मंदिरों से निष्कासन हो गया और इनका स्थान दूसरी जातियों के लोगों ने ले लिया जो अब इनका स्वाँग भरकर इनकी कमी पूरी करते हैं।

आइने-अकबरी में भी इस जाति का उल्लेख हुआ है। अबुलफज़ल ने लिखा है कि बहुत से ढाढी रणभूमि में शूरवीरों की तारीफ करते हैं और लड़ाई के मैदान को चमकाते हैं। मारवाड़ में इसको 'सिंधू देना' कहते हैं। यह एक राग है जिसे ढोली और ढाढी सेना के आगे-आगे गाते हुए चलते हैं।

उपरोक्त बातों से इतना तो स्पष्ट है कि यह एक प्राचीन जाति है। परन्तु कितनी प्राचीन है, इसका ठीक-ठीक उत्तर देना अशक्य है। अस्पृश्य

होने से इस जाति के विषय में प्राचीन हिन्दू ग्रथों में भी कुछ लिखा नहीं मिलता।

ढाढी हिन्दू भी हैं और मुसलमान भी। मुसलमान ढाढी मलानूर कहलाते हैं। किसी का कहना है कि औरंगजेब के समय में ये हिन्दुओं से मुसलमान हुए हैं।

हिन्दू ढाढी जाट, सुनार, छीपी आदि जातियों में माँगते हैं। ये अपने यजमानों की पीढ़ियाँ जबानी याद कर लेते हैं और उनकी प्रशंसा के गीत बना-बना कर भी गाते हैं। इनकी औरतें विवाह, जन्मोत्सव आदि के मौकों पर अपने यजमानों के घरों में गाने-बजाने का काम करती हैं।

डिंगल भाषा का संक्षिप्त व्याकरण

स्वर

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ अं अः।

व्यंजन

क ख (ष) ग घ ङ। च छ ज झ ञ। ट ठ ड ढ ण। त थ द ध न। प फ ब भ म। य र ल व। श ष स ह। ळ ँव ड़ ढ़

उच्चारण

(१) डिंगल में 'ल' का उच्चारण कहीं दन्त्य 'ल' और कहीं वैदिक भाषा तथा मराठी, गुजराती आदि के 'ळ' की तरह मूर्धन्य होता है। आजकल कुछ लोगों में 'ळ' के स्थान पर 'ल' लिखने तथा बोलने की प्रवृत्ति दिखाई देती है जो गलत है। यह 'ळ' जब किसी शब्द के आदि अथवा मध्य में आता है तब उसके स्थान पर 'ल' लिखने व बोलने से उसके अर्थ में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता, यद्यपि उच्चारण की अशुद्धता वहाँ अवश्य रहती है। परन्तु बहुत से ळकारान्त शब्द ऐसे हैं जिनको लकारांत कर देने से उनका अर्थ बिलकुल बदल जाता है। यथा—

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
माळी	जाति विशेष	माली	आर्थिक
महळ	स्त्री	महल	राजप्रासाद
खाळ	पनाळा	खाल	चमडा
चचळ	घोडा	चचल	चपल
पाळ	बाँध	पाल	बिछाने का कपडा

(२) डिंगल मे बहुत से शब्द ऐसे हैं जिनका उच्चारण करते समय किसी अक्षर विशेष पर ज़ोर देना पडता है। जोर देकर न पढने से उस शब्द का अर्थ कुछ और निकलता है और जोर देकर पढने से कुछ और हो जाता है। उदाहरणार्थ 'मौर' शब्द को लीजिए। इसमे 'मौ' पर जोर देकर न पढने से इसका अर्थ 'पीठ' होता है, पर जोर देकर पढने से 'मुहर' हो जाता है। इस तरह के कुछ और शब्द देखिये —

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
नार	स्त्री	नार	सिंह
कद	ऊँचाई	कद	कब
नाथ	स्वामी	नाथ	नथबधन
पीर	पीडा	पीर	पीहर

(३) 'ब' का उच्चारण डिंगल मे दो तरह से होता है, एक सस्कृत 'व' अथवा अग्रेजी W की तरह और दूसरा अग्रेजी V की तरह। उच्चारण का यह अन्तर बतलाने के लिए लिखने मे एक व तो वैसा ही रहने दिया जाता है पर दूसरे के नीचे बिंदी (व) लगा दी जाती है। ऐसा न करने से अनेक स्थानो पर भ्रम हो जाने की सभावना रहती है। क्योकि 'ब' के स्थान पर 'व' और 'व' के स्थान पर 'ब' का प्रयोग होने से शब्द का अर्थ बिलकुल पलट जाता है। ऐसे कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं जिनसे स्पष्ट होगा

कि 'व' के नीचे बिंदी न लगाने से शब्द का क्या अर्थ होता है और बिंदी लगा देने से उच्चारण के अनुसार उसका अर्थ किस प्रकार परिवर्तित हो जाता है—

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
वार	दिन, आक्रमण	वार	सहायतार्थ चिल्लाना
वीर	बहादुर	वीर	वीरोन्माद
वचियो	बच गया	वचियो	छोटा सा बच्चा
वात	वायु	वात	कहानी

(४) डिंगल की वर्णमाला मे तालव्य श नही है। अत लिखने मे तालव्य श के स्थान पर दन्त स ही लिखा जाता है। परन्तु बोलते समय जहाँ जो 'श' अथवा 'स' बोला जाना चाहिये वही बोला जाता है। यथा—

व्याकरण पुराण समृति सासत्र विधि
वेद च्यारि पट अग विचार।
जाणि चतुरदस चौसठि जाणी
अनत अनत तसु मधि अधिकार॥

यह पद्य लिखने मे उपरोक्त ढग से लिखा जायगा पर पढते समय इसमे आये हुए विभिन्न सकारो का उच्चारण निम्नलिखित ढग से होगा —

व्याकरण पुराण समृति शासत्र विधि
वेद च्यारि पट अग विचार।
जाणि चतुरदश चौसठि जाणी
अनत अनत तसु मधि अधिकार॥

(५) मूर्धन्य 'ष' का उच्चारण डिंगल मे प्राय 'ख' होता है। परन्तु

तत्सम शब्दो मे कही-कही शुद्ध सस्कृत उच्चारण भी होता है। जैसे—पोष, आषाढ, भीष्म आदि।

(६) डिंगल में 'य' का उच्चारण 'य' और 'ज' दोनो तरह से होता है। जब 'य' किसी शब्द का पहला अक्षर होता है तब इसका उच्चारण प्राय 'ज' किया जाता है और 'ज' ही लिखा जाता है। परन्तु जब 'य' शब्द के पहले अक्षर के बाद आता है तब वह ज्यो का त्यो 'य' बोला और लिखा जाता है। जैसे—(क) जुद्ध (युद्ध) जोधा (योद्धा), जात्रा (यात्रा) जमराज (यमराज)। (ख) न्याय, ख्यात, रायजादा, माया, सयन, वयण, गुणियण।

(७) डिंगल मे विसर्ग ( ) का प्रयोग नही होता और अनुनासिक (ँ) का प्रयोग भी अभी-अभी होने लगा है। प्राचीन लिखित ग्रथो मे अनुनासिक के स्थान पर सर्वत्र अनुस्वार ही लिखा मिलता है। जैसे-दात, आत, भात आदि।

(८) राजस्थान-वासियो की प्रवृत्ति अनुस्वार प्रयोग की ओर कुछ विशेष देखने मे आती है। अनेक स्थानो पर जहाँ अनुस्वार की आवश्यकता नही होती वहाँ भी ये अनुस्वार का उच्चारण करते है। अत डिंगल मे अनेक स्थानो पर अनुस्वार का अनावश्यक प्रयोग देखने मे आता है। परन्तु कही-कही आवश्यक होते हुए भी उडा दिया जाता है। दोनो तरह के उदाहरण देखिये—

(क) माण, भाण, असमान, सैण, राधा इत्यादि।

(ख) सिंह-सीह या सी (प्रतापसी, जैतसी आदि) साँस-सास, पाँव-पाव इत्यादि।

वर्णागम और वर्णव्यत्यय

(१) डिंगल मे ऋ का स्वतन्त्र प्रयोग नही होता। किसी दूसरे वर्ण के साथ होता है। जैसे— ममृति, वृत।

पूरे ऋ के स्थान पर प्राय रि का प्रयोग देखने मे आता है। जैसे, ऋषि-रिषि, ऋतु-रितु।

(२) डिंगल मे रेफ का प्रयोग नही होता। रेफ या तो पूरे रकार मे बदल जाता है या स्थानान्तरित हो जाता है। जैसे—

(क) दुर्लभ-दुरलभ, दुर्ग-दुरग, कीर्ति-कीरत।

(ख) धर्म-ध्रम, कर्म-क्रम, निर्मल-न्रिमळ।

(३) डिंगल मे अनेक स्थानो पर 'ए' का 'हे', 'स' का 'छ' और 'व' का 'म' हो जाता है। जैसे—

(क) एक-हेक, एकठा-हेकठा एकल-हेकल, एव-हेव।

(ख) सावाण-छावाण, तुलसी-तुलछी, सभा-छभा, अपसर-अपछर।

(ग) हैवर-हैमर, किवाड-किमाड, रावण-रामण, सुहावणो-सुहामणो।

(४) डिंगल मे 'ए' कभी-कभी 'ओ' मे और 'ओ' कभी-कभी 'ए' मे बदल जाता है। जैसे—

(क) लेग-लोग, गेंहू-गोहू, बेर-बोर।

(ख) कौरव-कैरव, म्हौल-म्हैल।

(५) डिंगल मे पाद-पूर्त्ति के लिये कही-कही 'ह' और कही-कही 'र' आगम होता है। जैसे—

(क) समर-समहर, अवर-अवहर, सजळ-सरजळ, सधीर-सरधीर।

(ख) रजपूती-रजपूतीह, कहियो-कहियोह, रामो-रामोह, मोती-मोतीह।

(६) डिंगल मे मुखोच्चारण अथवा पादपूर्ति के लिये शब्द के प्रारम्भ मे कभी-कभी कोई स्वर जोड देते है। जैसे—थाण-आथाण रण-आरण।

(७) संस्कृत हिन्दी के नकारान्त शब्द डिंगल मे बहुधा णकारान्त कर दिये जाते है। जैसे—जीवन-जीवण मान-माण, रानी-राणी।

लिंग

डिंगल मे दो लिंग होते हैं (१) पुल्लिग और (२) स्त्रीलिंग। प्राचीन काल मे डिंगल पर गुजराती का प्रभाव बहुत अधिक था जिसके फलस्वरूप डिंगल के प्राचीन ग्रथो मे कही कही नपुसकलिंग के उदाहरण भी मिलते हैं—

(१) घर घर मिंग मघर सुपीन पयोधर, घणू खीण कटि अति सुघट।

(२) उम्बरा नरां असपति सू कही जान का सू कहां।

परन्तु इनको अपवाद स्वरूप समझना चाहिये। नपुसकलिंग अब पुलिंग मे छिप गया है।

कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो पुलिंग और स्त्रीलिंग दोनो मे काम आते हैं। जैसे—टावर, मावीत आदि।

वचन

डिंगल मे दो वचन होते हैं (१) एकवचन और (२) बहुवचन। सस्कृत मे जिस तरह द्विवचन होता है, डिंगल मे नही होता। हिन्दी मे एकवचन से बहुवचन बनाना कुछ कठिन नही है, पर डिंगल मे कुछ कठिन है। डिंगल मे एकवचन से बहुवचन बनाने के कुछ साधारण नियम ये है—

(१) अकारान्त पुलिंग तथा अकारान्त स्त्रीलिंग शब्दो का बहुवचन अत्य स्वर के बदले 'आ' करने से बनता है। जैसे—

(क) पुलिंग—नर-नरा, खेत-खेता, कायर-कायरा।

(ख) स्त्रीलिंग—रात-राता, चील-चीला, आख-आंखा।

(२) इकारान्त-ईकारान्त पुल्लिग तथा इकारान्त-ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्दो के बहुवचन मे 'यां' लगाया जाता है। जैसे—

(क) पुलिंग—कवि-कवियां, अरि-अरियां, तेली-तेल्यां।

(ख) स्त्रीलिंग—मूरति-मूरत्या, रोटी-रोट्या, घोडी-घोड्या।

(३) ओकारान्त पुल्लिग शब्द वहुवचन मे आकारान्त हो जाते है। जैसे—घोडो-घोडा या घोडां, भालो-भाला या भाला, पोतो-पोता या पोता।

(४) आकारान्त, ऊकारान्त तथा ओकारान्त स्त्रीलिंग शब्दो के बहु-वचन मे 'वाँ' लगाया जाता है। जैसे—

(क) मा-मावा, भासा-भासावा।

(ख) लू-लूवा, वहू-वहुवा।

(ग) पो-पोवा, गौ-गौवा।

कारक-विभक्तियाँ

डिंगल मे कारको के निर्विभक्तिक और सविभक्तिक दोनो रूप देखने मे आते है। एक 'ए' विभक्ति डिंगल मे ऐसी है जो सम्बोधन को छोडकर प्राय शेष सभी कारको मे पुलिंग एकवचन मे लगती है। वहुवचन में प्राय 'आँ' अथवा 'याँ' हो जाता है। कर्ता के पुलिंग वहुवचन मे विकल्प से 'आ' भी होता है। सम्बन्ध कारक मे 'ए' के अलावा 'ह' विभक्ति भी लगती है। सम्बोधन के चिह्न डिंगल मे 'ऐ' और 'रे' है।

कर्ता—

(१) ढोलै करह चलावियौ, करि सिणगार अपार (एकवचन)।

—ढोलामारू रा दूहा

(ढोला ने वहुत शृगार करके ऊँट को चलाया)

(२) समरै मरण सुधारियौ, चहुँ थोकाँ चहुँआण (एकवचन)।

—दुरसाजी

(चौहाण समरा ने चारो तरह से अपनी मृत्यु को सार्थक किया।)

(३) कायरडा मजन करै, आँसू धार मंझार (वहुवचन)।

—कायरबावनी

(कायर आँसुओ की धार मे स्नान करते हैं।)

(४) पारख कीधी पँडितां, सरब मिलै सतांह (बहुवचन)।

—वचनविवेकपच्चीसी

(सब पडितो और सतो ने मिलकर परीक्षा की है।)

(५) अखियातां वातां वचै, जरा काल डर छड्ड (बहुवचन)।

—सुजस छत्तीसी

(जरा और मृत्यु का डर छोडकर प्रसिद्ध बातें बचती है।)

(६) जाया रजपूताणियां, वीरत दीधी वेह (बहुवचन)

—बाँकीदास

(राजपूतानियो ने जन्म दिया, विधाता ने वीरता दी।)

कर्म—

(१) हाथी घोडाए मारयौ

(हाथी ने घोडे को मारा)

(२) किरि कठचीत्र पूतळी निज करि, चीत्रारै लागी चित्रण (एकवचन)

—वेलि

(मानो काठ मे चित्रित की हुई पुतली अपने चित्रकार को अपने हाथो से चित्रित करने लगी हो।)

(३) भिडजां भडां चारणां भाटां, मुहगा वरतणहार मुवौ (बहुवचन)

—फुटकर

(घोडो, बहादुरो, चारणो और भाटो को मुहगा रखने वाला मर गया।)

(४) नरा न ठांणो नारियां, पेरखौ सगत एह (बहुवचन)।

—सूर्यमल

(हे पुरुषो! स्त्रियो को दोष मत दो। यह तो सगत का फल देखना चाहिए।)

(प्रतापसिंह को पास न देखकर हृदय से निश्वास छोड़ता है।)

(२) चिहुरे जळ लागौ चुवण (एकवचन)।

—वेलि

(केशपाश से जल टपकने लगा।)

(३) तात विदेसां आवियौ, कौळें दीठा हाथ (बहुवचन)।

—नाथूदान

(पिता विदेशो से आया, मकान के दरवाजे पर कर-चिह्न दिखाई दिए)

संबंध—

(१) ढोलै मन आणद भयौ, मारू तणै उछाह (एकवचन)।

—ढोला मारू रा दूहा

(ढोला के मन मे मारू के मिलने के उत्साह से आनन्द हुआ।)

(२) भव टाळियै भवांह, भव कीजै भागीरथी (एकवचन)।

—पृथ्वीराज

(जन्म-जन्मान्तर का आवागमन तूने टाल दिया। मेरा भी कल्याण कर।)

(३) पँवारां सदन वरमाळ सू पूजियौ (बहुवचन)।

—बाँकीदास

(पवारो के घर वरमाला से पूजा गया।)

(४) माथै मुगलाळांह वधि वधि खांडा वाहतो (बहुवचन)।

—रतनरासौ

(मुगलो के सर पर बढ-बढकर तलवारें चलाता था।)

(५) हलधर का वाहतां हळांह (बहुवचन)।

—वेलि

(बलराम के चलाए हुए हलो के प्रहार से।)

सम्प्रदानकारक—नै, प्रति।

अपादानकारक—कनै, थी, हूंत, हुतां, हूंती।

सबंधकारक—रा, री, रे, रो, चा, ची, चै, चौ, केरी, केरा, केरो, तणा, तणी, तणो।

अधिकरणकारक—मझार, मांझ, मां, मांझल, मधि, मे इत्यादि।

कर्म—

(१) धूमकुंवर नै मारियौ, चौपड पासा चौळ।

—प्राचीन

(धूमकुंवर को चौपड-पासे के खेल मे मार डाला।)

(२) लागै माघि लोक प्रति लागौ, जळ दाहक सीतल जलण।

—वेलि

(माघ के लगते ही लोगो को जल जलानेवाला और अग्नि शीतल लगने लगी।)

करण—

(१) मुख करि किसू कही जै माहव, अतरजामी सू आलोज।

—वेलि

(हे माधव! अतर्यामी से मन के विचार मुख से कैसे कहे जायें।)

(२) अवधेस रा रूप सूं रीझि आई।

—सूरज प्रकास

(रामचन्द्र के रूप से मोहित होकर आई।)

संप्रदान—

(१) महारुद्र नै सिर पेस करा।

—रतन रासौ

(महादेव को सर भेंट करें।)

(२) प्रभणन्ति पुत्र इम मात पिता प्रति।

—वेलि

(पुत्र माता-पिता को इस प्रकार कहने लगा।)

अपादान—

(१) इन्द्र मांगै जिन कनै दक्षिणा

—प्राचीन

(इन्द्र जिन से दक्षिणा माँगता है।)

(२) विहाणै म्रातलोक थी सगलोक जाइस्याँ।

—रतन रासौ

(सुवह मृत्युलोक से स्वर्गलोक जायंगी।)

(३) रक कुकवि दोनू रहै, कोस हूंत[27] सौ कोस।

—कुकवि बत्तीसी

(निर्धन और कुकवि दोनो द्रव्य से सी कोस दूर रहते हैं।)

(४) कुन्दणपुर हुंता वसां कुन्दणपुरी, कागळ दीधो एम कहि।

—वेलि

(कुन्दनपुर से आया हूँ, कुन्दनपुर मे रहता हूँ। यह कहकर पत्र दिया)

(५) हूँ ऊधरी त्रिकूटगढ हूंती।

—वेलि

(मेरा लका से उद्धार किया)

---

२७ इसका प्रयोग कभी-कभी अधिकरण मे भी होता है जैसे—
घावाँ कत पधरिया, पाँवा हूँत प्रणाम।

—सूरजमल

(घायल कत आ गये हैं, उनके पाँवो मे प्रणाम।)

सबध—

(१) महाराज आजरी वेढ रा धणी राठौड।
(महाराज! आज की लडाई के स्वामी राठौड।)
इसडी आवाज महासतियाँ रे काने आई।
(ऐसी आवाज महासतियो के कान मे आई।)
तीन प्रकार रौ पवन वाजै छै।
(तीन प्रकार का पवन चलता है।)

—रतनरासौ

(२) डूगर केरा वाहळा, ओछाँ केरा नेह।
वहता वहै उतावळा, झटक दिखावै छेह॥

—ढोला मारू रा दूहा

(पहाडो के नाले और ओछे पुरुषो का प्रेम बहते समय तो बडी तेजी बताता है। परन्तु तुरन्त ही अत दिखा देते है।)

अदता केरी अत्थ ज्यू, कायर री किरमाळ।
कोड प्रकारा कोस सूँ, नहँ पावै नीकाळ॥

—बाँकीदास

(करोडो प्रकार के उपाय करने पर भी कायर की तलवार और मूँजी का धन अपने कोष से नही निकल पाते।)

चोली केरे पान ज्यूँ दिन दिन पीळी थाइ।

—ढोला मारू रा दूहा

(मजीठ के पत्तो की तरह दिन-दिन पीली पडती जा रही है।)

(३) प्रभू घणा चा पाडिया, दैत्य वडा चा दत।

—नागदमण

(प्रभु ने बहुत से बडे-बडे राक्षसो के दाँत गिराये।)

घर चौ बाहर करण नूं, मिलियौ आय मरट्ट।

(देश की सहायता करने के लिए वह वीर शीघ्र पहुंचा)

हीदूनाथ दिल्ली चै हाटै, पतो न खरचै खत्रीपण।

—राठौड़ पृथ्वीराज

(हिंदुओं का नाथ महाराणा प्रताप दिल्ली के बाजार मे अपने क्षत्रियत्व को नही बेचता।)

कागळ चौ ततकाळ कृपानिधि, रथ बैठा सांभळि अरथ।

—वेलि

(पत्र का आशय समझकर कृपानिधि तुरन्त रथ मे जा बैठे।)

(४) अचरज हुवौ लोक अजमेरां, वड दळ देखे बीक तणा।

—चानण

(बीकाजी की बडी सेना को देखकर अजमेर के लोगो को बडा आश्चर्य हुआ।)

तिणी वार त्रिया रतनेस तणी, विधि साहस सोल सिंगार वणी।

—रतन रासौ

(उस वक्त रतनसिंह की पत्नी ने विधिपूर्वक सोलह शृंगार किये।)

वेप नट तणैं खडी वन वीथियां, वटपडो कुंवर व्रजराज वाळो।

—बांकीदास

(व्रजराज का कुंवर, लुटेरा कृष्ण, नट के वेप मे व्रज की गलियो मे खडा है।)

बीरोचद-सुत अहियापुर वारै, रवि सुत तणौ अमरपुर राज

—प्राचीन

(नागलोक मे बलि मुझे दूर भगाता है और देवलोक मे कर्ण का राज्य है।)

(५) गणपत हुंदा बाप री, धवळ उठावै भार।

—धवल-पचीसी

(महादेव का बोझ श्वेत वर्ण का बैल उठाता है।)

वां हुंदी आसा करै, सैराती षटव्रस।

—दातार बावनी

(उसका दान लेने वाले षट्दर्शन आशा करते हैं।)

सादूळो खीजै सुणं, जळहर हुंदी गाज।

—सीह-छत्तीसी

(सिंह मेघ की गर्जना को सुनकर खीजता है।)

तौ दाता हुंवै करग, धन ठहरे चित धार।

—दातार-बावनी

(तब मन मे समझो कि दाता के हाथ मे धन रह सकता है।)

अधिकरण—

रिण नहं भीनी रुधर सू, मद सूं गोठ मंझार

—मावड़िया मिजाज

(युद्ध मे रक्त से नही भीगी, किन्तु दावत में मदिरा से भीगी)

मेवाड़ों तिण माह, पोयण फूल प्रतापसी।

—राठौड पृथ्वीराज

(उनमे मेवाड का राणा प्रताप कमल के फूल के समान है।)

बाहर था जै ऊगरै, भीगा माझ घरेह।

—ढोला मारू रा दूहा

(जो बाहर थे वे भीग गए और मैं घर मे भीग रहा हूं।)

काठी साहँत मूठि मा कोडी कामी सत।

—ढोला मारू रा दूहा

(वे मुट्ठी मे कसकर पकड़ते और मैं खूब प्रसन्न रहती।)

अरि देखे आरण में, मृग मुग माझल स्यांह।

—सूर-छतीसी

(शत्रु को युद्ध में देखकर ही मुंह में तिनका ले लेते हैं।)

बीचे मधि माणिक हीरा कूंदण, मिळिया कारीगर मयण।

—वेलि

(कामदेव रूपी कारीगर ने कुंदन में हीरे जड़कर बीच में माणिक मिला दिया है।)

पड़ै आगि में उडि-उडि जेहा पतग।

—रतनरासौ

(जैसे पतिंगे उड़ कर आग में पड़ते हैं।)

सर्वनाम

डिंगल के सर्वनाम शब्दों के रूप बहुत कुछ अपभ्रंश के सर्वनाम शब्दों के रूप से मिलते हैं। हिन्दी की तरह डिंगल में भी सर्वनाम शब्दों के रूप लिंग के कारण नहीं बदलते। भिन्न-भिन्न सर्वनामों के रूप इस प्रकार होते हैं।

पुरुष वाचक सर्वनाम (हूँ=मैं)—(तूं=तू)

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	हूँ, म्हूं	म्हे
कर्म	मूं, हूँ, मुझ, अम्ह	म्हां
संबंध	मुझ, मुज्झ, म्हारौ, मो, मूं, अम्हांणो।	म्हारौ, अम्हांणौ अम्हां

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	तू, तै, थे,	थे
कर्म	तईं	तुम्ह, तुम्हां, थां
संबंध	तुझ, तुज्झ, थारौ, थारी (स्त्री०)	म्हांरो, थांको, थांके

निश्चयवाचक सर्वनाम (ओ=यह)—(वो, सो=वह)

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	ओ, ए, एह, आ	अै, इणां, या, एह
कर्म	इण, अण, एह, एण, इणनै।	इण, अण, एह, इणांनै, आंनै
संबंध	इणरा, ईंरा,	इणांरा, अंरा, यांरा

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	सो, सु, ऊ, उण, तै, तिको, तिका, वो, सोइ, तिणि।	सो, उणां, ते, तिके, वै तेह तिणां, वा।
कर्म	उण, तिणि, तेण, त्यां, ता, तिणनै	उवां, त्यां, तांह, तिणांनै
संबंध	उणरो, तास, तसु, तस, तिणरा	तिणका, तांहका, तिणांरा उणांरा वांरा।

संबंधवाचक सर्वनाम (जो, जिको- जो)

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	जो, जिको, जु, जा, जिका, जे जिण।	जे, जिका, जिकां, जिणां
कर्म	जिण, जेण, जां, ज्यां, जांह, जे, जिणानै।	जे, जिका, जिकां, जिणांनै
संबंध	जास, जिणरा, जिणरो, ज्यांरो, जिए।	जिणांरा, ज्यांरा, जिणको, ज्यांको

प्रश्नवाचक सर्वनाम (कुण=कौन)

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	कुंण, कूण, कवण, को, का, किण	कुण किणा
कर्म	किणनै, किण, किणि, केण, कवण, कीनै,	कीनै, कणांनै
संबंध	कीरा, किणरा, कुणह	किणांरा

(४) पूजा रै मिसि अविका रै देहरै नगर वाहिरि हूं आवूं छूं।

—वेलि की टीका

(नगर के वाहिर अविका के मदिर मे मैं पूजा के वहाने आती हूं।)

(५) माणस हुवांत मुख चवां, म्हे छां कूंझडियांह।

—ढोला मारू रा दूहा

(मनुष्य हो तो मुख से कहे, हम तो कूंझें हैं।)

भूतकाल—

डिंगल मे भूत काल की क्रिया के रूप प्राय एक वचन मे ओकारात और वहुवचन मे आकारान्त होते हैं[२८]। जैसे—

(१) भोळा की डर भागियो।

—सूर्य्यमल्ल

(हे मूर्ख! किस डर से भाग आया।)

(२) ऊभी गोख अवेखियो।

—वीर सतसई

(झरोखे मे खडी हुई ने देखा।)

(३) ब्रह्मा विसन महेस इन्द्र सुर साथी आया।

—रतन रासो

(ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, इन्द्र और देवता साथ मे आये।)

---

२८ 'होना' क्रिया के रूप भूतकाल मे लिंग-वचन के अनुसार हुओ हुआ तथा हुई भी होते हैं और थयो, थया तथा थई भी होते है। कही-कही भयो, भया और भई का प्रयोग भी देखने मे आता है।

भविष्यत काल—

डिंगल मे भविष्यत काल स्यॉं, सी आदि प्रत्यय लगाकर भी बनाया जाता है और 'ला' प्रत्यय लगाकर भी। जैसे—

(१) दिली जीवतॉं जदी देखम्यॉं, जद यॉंनै देस्यो जोधॉण।

—फुटकर

(हम लोग जीते जी दिल्ली तभी देख सकेंगे जब की इनको जोधपुर मिल जायगा।)

(२) जोडै हरि अटका रहजासी, आसी बटका कुण अरथ।

फुटकर

(यह जगन्नाथ के अटको की तरह हो जायगा फिर ये टुकडे किस काम आवेंगे।)

(३) बूडैला बुध-बायरा, जळ विच छोड जहाज।

—हरिरस

(वे बुद्धिहीन प्राणी समुद्र मे नाव से गिरनेवाले मनुष्य के समान ससार सागर मे डूब जायंगे।)

(४) पाकड जम घातेला फॉंसी, पापी इण दिन नै पछतासी।

—फुटकर

(यमराज पकड कर फाँसी पर चढा देगा। हे पापी! उस दिन तू पछतावेगा।)

पूर्वकालिक क्रियाए डिंगल मे प्राय क्रिया के अन्त मे 'अ' 'इ' 'र' 'एवि' 'नै' 'ह' आदि प्रत्यय लगाकर बनाई जाती है। जैसे—

पालिअ (पालनकर), ठानि (ठानकर), जायर (जाकर), प्रणमेवि (प्रणामकर), लिखनै (लिखकर), भरेह (भरकर) इत्यादि।

आज्ञार्थ क्रिया—

आज्ञार्थ क्रियाओ के रूप डिंगल मे प्राय मूल क्रिया के अन्त मे 'वै' तथा 'जै' प्रत्यय जोडने मे बनते हैं। जैसे—

लिखावै, करावै, दिरावै, दीजै, लीजै, पेखिजै इत्यादि।

क्रिया विशेषण

काल वाचक—

आज, अज्ज, कद, कदै, कालै, नत, तडकै, रातै, जद, तद, पछै, हित, पुणि, अजै, मांडौ, वेगौ, परभातै।

स्थान वाचक—

किह, किहाँ, केथि, कांही, इहाँ, एथि, तिहाँ, उवाँ, जह, जिह, जहाँ, ऊपरै, नीचै, आगै, पाछै, अठै, उठै, तठै, जठै, वार, पार, नेडो, कनै, परै, दूर, दूरी, वाँमै, तलै, हेठै, नजीक, पाछलौ, आगलौ, पूरवलौ, माथै, विचलौ, आगल।

रीति वाचक—

इम, एम, यूं जिम, जेम, ज्यूं, जूं, किम, केम, क्यू, जं, जेण, केण, तिण, तिम, तिह, जथा, तथा, कदास, अचाणक, हाँ, किरि, झट, नाहक, हकनाक, जेज, तो, पण, पिण, नीठ, अपूठौ, न, नहं, म, माँ, मति, त, अवस, सही, वेमक, कदैक, जदकद।

परिमाण वाचक—

घणौ, थोडो, काँईक, कित्ताँ, वहु, अत, अत्यन्त भारी, इतरौ, उतरौ, जितरौ।

डिंगल साहित्य

"साहित्य किसी देश या जाति के काल विशेष के विचारों और भावों का प्रतिबिंब होता है' यह उक्ति डिंगल साहित्य पर भी ठीक-ठीक घटती है। डिंगल साहित्य में राजस्थान के सैकड़ों वर्षों के उत्थान, उसका संघर्षमय लोक-जीवन तथा उसका इतिहास प्रतिबिंबित है और उसमें उसकी भावनाएं व्यक्त हुई हैं। देश-प्रेम, जातीय गौरव तथा आजादी के प्रभावोत्पादक बहुमूल्य संदेशों से यह ओतप्रोत भरा हुआ है। इस साहित्य में पटरानियों के अट्टहास, नायक-नायिकाओं के गुप्त मिलन और राज-महलों के विलास-वैभव का वर्णन नहीं है। इसमें है रणोन्मत्त बहादुर वीरों, मरणातुर राजपूत महिलाओं और रणांगण की रक्तरंजित हाय-तौबा का भावमय चित्रण। यह साहित्य जीवन का साहित्य है और सदा जीवन को लेकर आगे बढ़ा है। यह ऐसे लोगों का साहित्य है और ऐसे लोगों द्वारा रचा गया है जिन्होंने तलवार की चोटें अपने मस्तक पर झेली हैं, जीवन-संग्राम में जूझकर प्राण दिए हैं।

ऐतिहासिक महत्व

साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होने के साथ ही साथ यह साहित्य इतिहास की दृष्टि से भी परम उपयोगी है। पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय साहित्य में यह कमी बतलाई है कि इसमें इतिहास विषयक सामग्री का एक तरह से अभाव है। परन्तु उनका यह आक्षेप डिंगल साहित्य पर लागू नहीं होता। डिंगल साहित्य उनके इस कथन का अपवाद है। इतिहास विषयक सामग्री डिंगल में मिलती है और प्रचुर मात्रा में मिलती है। बल्कि कहना चाहिए, डिंगल में इतिहास सम्बन्धी सामग्री ही का प्राधान्य है। पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक के लगभग चार सौ वर्षों के दीर्घकाल में यहाँ हिन्दू-मुसलमानों में जो अनेकानेक युद्ध हुए और फलस्वरूप भारतवासियों के राजनैतिक, धार्मिक तथा सामा-

जिक विचारो मे जो क्रातियाँ हुई उनका सविस्तार वृत्तान्त यदि कही मिलता है तो डिंगल साहित्य मे। परन्तु ऐसे उपयोगी साहित्य की अभी तक उपेक्षा की गई है। भारतवर्ष के मुसलमानकालीन इतिहास पर जितने भी ग्रथ अभी तक लिखे गये हैं उनके प्रणयन मे मुसलमानी तवारीखो ही से सामग्री ली गई है और डिंगल साहित्य को बिलकुल छोड दिया गया है। अत वे इतिहास बहुत कुछ अधूरे, भ्रमात्मक, एकपक्षीय और प्राग्भावपूर्ण हैं। मध्ययुगीय भारत का सच्चा इतिहास लिखने के लिए डिंगल साहित्य की छानबीन भी आवश्यक है।

डिंगल की इतिहास विषयक यह सामग्री गद्य और पद्य दोनो मे मिलती है।

गद्यात्मक सामग्री अधिकतर ख्यात, वात, विगत और पीढी-वशावलियों के रूप मे पाई जाती है। जैसे—

(१). ख्यात[२९]—सीसोदियाँ री ख्यात, राठौडाँ री ख्यात, कछवाहाँ री ख्यात, मुहणोत नैणसी री ख्यात, महाराजा मानसिंह जी री ख्यात, जोधपुर री ख्यात, उमरावाँ री ख्यात, बीकानेर री ख्यात, देवलियै राधणियाँ री ख्यात, चहुवाँण सोनगराँ री ख्यात, जाडेचाँ री ख्यात इत्यादि।

(२) वात[३०]—राणै उदैसिंघ री वात, हाडै सूरजमल री वात, राणाँ कूँभा चितभरमिया री वात, राव बीकैजी री वात, पाबूजी री वात, राव लूणकरण री वात, जैसलमेर री वात, सोढाँ री वात इत्यादि।

---

२९ 'ख्यात' सस्कृत शब्द 'ख्याति' का रूपान्तर है। राजस्थान मे यह 'इतिहास' के अर्थ मे प्रयुक्त होता है।

३० राजस्थानी भाषा मे 'वात' कहानी को कहते है। यह सस्कृत शब्द 'वार्ता' से बना है।

(३) विगत—मेवाड़ रा भाखरां री विगत, सीसोदिया चूडावतां री साख री विगत, गैहलोता री च्यांवीस साखां री विगत, कछवाहा सेखावतां री विगत, जोधपुर बीकानेर टीकायतां री विगत, जोधपुर रा निवाणां री विगत, गढ कोटां री विगत इत्यादि।

(४) पीढ़ी—ईडर रा धणी राठौड़ां री पीढ़ियां, राठौड़ा री सांपां री पीढ़ियां, हमीरोत भाटियां री पीढ़ियां, आहाडा री पीढ़ियां, भायला री पीढ़ियां, चन्द्रावतां री पीढ़ियां इत्यादि।

(५) वंशावळी—राठौड़ां री वंशावळी, झालां री वंशावळी, बीकानेर रै राठौड़ राजावां री वंशावळी, रजपूतां री वंशावळी, उदैपुर रा राजावां री वंशावळी, जैसलमेर रा भाटी महारावळ री वंशावळी इत्यादि।

पद्यात्मक सामग्री क्रमबद्ध काव्य-ग्रंथो के रूप मे भी पाई जाती है और फुटकर कविता के रूप मे भी।

क्रमबद्ध ग्रंथों मे अधिकांश ग्रंथ इस तरह के देखने मे आते है, जिनके नाम या तो उनके चरित्र-नायकों के नाम के साथ रासो, प्रकास, विलास, रूपक और वचनिका जोड़कर रखे गये है। या उनमे व्यवहृत छंदो के आधार पर रखे गये है। यथा—

(१) चरित्र-नायकों के नाम पर रखे गये ग्रंथों के नाम

(क) रासो—रायमल रासो, राणा रासो, संगतसिंघ रासो, रतन रासो, महाराजा श्री सुजाणसिंघजी रो रासो इत्यादि।

(ख) प्रकास—राजप्रकास, सूरजप्रकास, भीमप्रकास, रतनजस प्रकास, कीरतप्रकास इत्यादि।

(ग) विलास—राजविलास, जगविलास, विजैविलास, रतनविलास, अभयविलास, भीमविलास इत्यादि।

(घ) रूपक—राजरूपक, गोगादेरूपक, राव रिणमल रो रूपक, महाराजा गजसिंघजी रो रूपक, रतनरूपक इत्यादि।

(ङ) वचनिका—अचलदास खीची री वचनिका, राठौड रतनसी री महेसदासौत री वचनिका इत्यादि।

(२) छदो के आधार पर रखे गये ग्रथो के नाम

(क) नीसाणी—गोगैजी चहुंवाण री नीसाणी, राठौड अजवसिंघ गगासिघोत री नीसाणी, आंबेर रा महाराजा प्रतापसिघजी री नीसाणी, राव खगारजी री नीसाणी, नीसाणी वीरमाण री इत्यादि।

(ख) झूलणा—सोढो रा गुणझूलणा, राजा गजसिघजी रा झूलणा, राव सुरत्राण देवडै रा झूलना, अमरसिह जी रा झूलणा इत्यादि।

(ग) वेल—राजकुमार अनोपसिहजी री वेल राजा रायसिघजी री वेल राणै उदैसिघजी री वेल, राठौड देईदास जैतावत री वेल, राजा सूरजसिघजी री वेल इत्यादि।

(घ) झमाल—वीदावत करमसेण हिमतसिंघोत री झमाल, झमाल जोरसिंघ चाँपावत री, झमाल आउआ री इत्यादि।

(ङ) गीत—सीधलाँ रा गीत, पँवाराँ रा गीत, जाडैचा रा गीत, राठौड रामसिघजी रा गीत, राजा रायसिघजी रा गीत इत्यादि।

(च) कवित्त—महाराज अभैसिघजी रा कवित्त, पँवार अखैराज राठौड रतनसी रा कवित्त, जोधपुर महाराज गजसिघजी रा निर्वाण रा कवित्त, चहुँवाण सांवलदासजी करमसिघजी रा कवित्त इत्यादि।

(छ) दूहा—पाबूजी रा दूहा, राव अमरसिघजी रा दूहा, सागै राणै रा दूहा, हमीर राणै रा दूहा, समरसी चहुवाण रा दूहा, लाखै फूलाणी रा दूहा इत्यादि।

इनके अतिरिक्त पाघडी, दवावैत, त्रोटक आदि दो-एक अन्य छन्दो मे ग्रथ रचे भी कुछ मिलते है।

ये ग्रथ भिन्न-भिन्न समय और भिन्न-भिन्न स्थानो मे लिखे गए है पर इनके लिखने का प्रकार लगभग समान ही है। प्रारभ मे मगलाचरण

और मुख्य-मुख्य देवी-देवताओ और गुरु की स्तुति की गई है। इसके बाद राजवशावली शुरू होती है जिसमे सृष्टिकर्ता ब्रह्मा से लेकर ग्रथनायक तक के राजाओ के नाम गिनाए गए है। बीच मे कही-कही बडे-बडे राजाओ का वर्णन कुछ अधिक विस्तार से भी कर दिया गया है। मुख्य कथा चरित्र-नायक के जन्म दिन से प्रारम्भ होती है। चरित्र-नायक के युद्ध, उसकी वीरता, उसके आतक-पराक्रम, उसके बाहुबल और सैन्यबल का बहुत सजीव एव वीरदर्प-पूर्ण वर्णन इन ग्रथो मे देख पडता है। प्राय ग्रथनायक की किसी बहुत बडी विजय अथवा उसकी मृत्यु के साथ ग्रन्थ की समाप्ति हो जाती है।

फुटकर कविता

फुटकर कविता दोहा, कवित्त (छप्पय) और गीत छन्दो से लिखी अधिक मिलती है। इस तरह की कविता को रजस्थान मे 'साख री कविता' (साक्षी की कविता) कहते है, क्योकि यह किसी प्राचीन घटना आदि के सत्य होने का प्रमाण अथवा गवाही देती है।

राजस्थान मे असख्य वीर एव दानी पुरुष हो गए है और अनेक युद्ध-घटनाएँ घटी है। ये फुटकर दोहे, कवित्त और गीत इन महान् व्यक्तियो तथा ऐतिहासिक घटनाओ के छोटे-छोटे फोटोग्राफ है जो थोडी देर के लिए उनके वास्तविक स्वरूप को हमारी आँखो के सामने ला खडा करते है। किसी मे किसी महत्त्वपूर्ण प्राचीन घटना-तिथि का उल्लेख है तो किसी में किसी युद्ध का चित्राकन और किसी मे किसी सुपात्र की वीरता-दानशीलता की प्रशसा या कुपात्र की कायरता-कदर्यता की निंदा[31]। यथा—

---

३१ राजस्थान मे कविता दो तरह की मानी गई है (१) सर और (२) विसर। प्रशसात्मक कविता को यहाँ सर और निन्दात्मक कविता को विसर कहते है। उद्धृत दोहो मे पाँचवाँ दोहा सर और छठवाँ

दूहा

(क) तेरा सौ तेरा तवाँ, जनम्यौ धाँधल धाम।
तेरा सौ सैंतीस मैं, कमधज आयौ काम ॥१॥
पनरै सैं पैंताळवै, सुद वैसाख सुमेर।
थावर बीज थरप्पियौ, बीकै बीकानेर ॥२॥
पत्तौ पावडियाँ लडै, जयमल महलाँ बीच।
रण आँगण कल्लौ लडै, केसर हुदो कीच ॥३॥
कट पडियौ ठाकर कनै, असमर झडियौ अग।
लडियौ सग सुरताण रै, रूपावत नै रग ॥४॥
देता अडव-पसाव नित, धिनौ गौड वछराज।
गढ अजमेर सुमेर सू, ऊँची दीसै आज ॥५॥
महाराज अजमाल री, जद पारख जाणीह।
दुरगौ देसाँ काढियौ, गोलाँ गागाणीह ॥६॥[३२]

विसर है। क्योकि इनमे क्रमश गौड वछराज की प्रशसा और महाराजा अजीतसिंह की निंदा की गई है।

३२ स० १३१३ मे धाँधल के घर जन्म लिया और स० १३३७ मे राठौड (पावूजी) मारा गया ॥१॥ स० १५४५ वैशाख सुदी दूज शनिवार के शुभ दिन बीकाजी ने बीकानेर को स्थापित किया ॥२॥ पत्ताजी सीढियो पर, जयमलजी महलो मे तथा कल्लाजी रणागण मे लड रहे हैं और रक्त का कीचड हो गया है ॥३॥ अपने ठाकुर के पास कटकर गिर पडा और तलवार से उसके शरीर के टुकडे हो गये। रूपा के वशज को रग है कि वह सुरताण के साथ लडा ॥४॥ गौड वछराज को धन्य है कि जो हमेशा क्रोडपावस अर्थात् एक करोड रुपये का दान देता है। और जिसकी वजह से आज अजमेर का गढ सुमेर पर्वत से भी ऊँचा दिखाई

(ख) अलावदी प्रारम्भ, कीध सोनागर ऊपर।
हुवी समर तलहटी, जुडै चहुवाँण मछर भइ॥
सकतीपुर चौ साम, प्राण सुरताँण मँकायौ।
गाँजै घड गजरूप, चीत आलम चमकायौ॥
रीजियौ राव कान्हड रिणह, कोतक रिव-रथ थमियौ।
वरमाल कठ अपछर वरै, साल्ह विवाणे मालियौ[१]॥

गीत

(ग) वूझै पतमाह पता दै कूची
वरा पलटी न कीजै धौड।
गढ री वणी कहै गढ माहरी
चूडाहरी न दियै चितौड॥१॥

दे रहा है॥५॥ महाराजा अजीतसिंह की परीक्षा नव हुई जव उन्होंने दुर्गादास को देश से निकाला और गोलो को गाँगाणी गाँव दिया॥६॥

३३ एक वार सुलतान अलाउद्दीन ने जालौर पर आक्रमण किया उस समय चौहाणो की सोनगरा शाखा का कान्हडदेव वहाँ का राजा था। इस युद्ध मे उसके एक वीर साल्हा ने वडी वीरता दिखाई। उसी का वर्णन इस छप्पय मे किया गया है।

अलाउद्दीन ने सोनगरे (कान्हडदेव) पर आक्रमण प्रारम्भ किया। तलहटी मे युद्ध हुआ। क्रोध मे भर कर चौहाण भिड गये। दिल्ली के सुलतान के प्राण शका मे पड गये। गजवाहिनी का गजन कर संसार के चित्त को चमत्कृत कर दिया। रण को देख राव कान्हडदेव वहुत प्रसन्न हुआ कौतुक देखने को सूर्य का रथ रुक गया। गले मे माला डाल कर अप्सराओ ने वरण किया। साल्हा विमान मे वैठ गया।

गोळ्या नाळ चत्रकोट गाजै घणी
हिन्दु तुरक आवटै घणा।
जग्गा सुत न दीयै जीवतो
तीजा लोचन पृथी तणा॥२॥
झटका झडा औझडा झाडै
अटका अझा रोकै रिमराह।
ऊभै पतै चढयौ नहिं अकब्बर
पडियै पतै चढयौ पतसाह॥३॥
पतसाही साल राण घर आडौ
मुगला मारण कियौ मतौ।
उदयसिंह राणी इम आखै
धरा पलटी न धणी पतौ[34]॥४॥

३४—स० १६२४ मे मुगल सम्राट अकबर ने चित्तौड पर चढाई की। उस समय महाराणा उदयसिंह वहाँ राज्य करते थे। उन्होंने किले की रक्षा का भार पत्ता और जयमल नामक अपने दो सामतो को सौंप दिया और खुद पहाडो मे चले गये। बहुत दिनो की लडाई के बाद अकबर जब किले पर पहुँचा तब वहाँ पत्ताजी ने उसका सामना किया। इस गीत मे उसी का वर्णन है।

बादशाह कहता है कि हे पत्ता! पृथ्वी पलट गई है तू विघ्न मत डाल, किले की चाबी मुझे दे दे। लेकिन गढ का स्वामी, चूडा का वशज, पत्ता, कहता है कि गढ मेरा है और वह चित्तौड नही देता है॥१॥ चित्तौड पर बहुत बदूक-गोलियाँ गरज रही हैं। बहुत हिन्दू-तुर्क उबल रहे हैं। लेकिन जग्गाजी का बेटा, जीते जी चित्तौड नही देता है। ॥२॥ (खड्ग आदि के) प्रहार की झडियो से वह ओझडियाँ काटता है और हठ करके

अन्य विषय

इतिहास संबंधी ग्रंथों के अतिरिक्त धर्म, नीति, तत्वज्ञान, वृष्टि-विज्ञान, शालिहोत्र इत्यादि कुछ अन्य विषयों पर लिखे ग्रंथ भी डिंगल में मिलते हैं। ये ग्रंथ प्राचीन संस्कृत ग्रंथों के आधार पर रचे गए हैं और विषय की दृष्टि से मौलिक नहीं हैं। परन्तु भाषा-शास्त्र की दृष्टि से बड़े उपयोगी हैं और राजस्थानी भाषा के क्रमिक इतिहास का ज्ञान कराने में सहायक हो सकते हैं।

डिंगल काव्य

विशुद्ध काव्य की दृष्टि से डिंगल-साहित्य कैसा है, यह बात भी विचार करने योग्य है। आचार्य मम्मट ने काव्य रचना के यश-प्राप्ति, धन प्राप्ति इत्यादि छह प्रयोजन बतलाए हैं[35] और अधिकतर इन्हीं पर नजर रख कर डिंगल काव्य रचा गया है। अत प्राचीन भारतीय काव्य-परिपाटी के अनुसार यह ठीक है। परन्तु पाश्चात्य काव्य-मर्मज्ञ इसे उचित नहीं सम-झते। उनका कहना है कि धन की आशा में, प्रतिष्ठा के लोभ से, श्रोताओं को प्रभावित करने के अभिप्राय से, अथवा इसी प्रकार के अन्य किसी सासारिक लाभ की इच्छा से जो कविता की जाती है वह कविता कविता नहीं रह

शत्रु के मार्ग को रोके हुए है। पत्ता जब तक खड़ा रहा, बादशाह किले पर नहीं चढ़ सका। पत्ता के धराशायी होने पर ही चढ़ा ॥३॥ बादशाह के लिए शल्य और राणा के घर का रक्षक उस पत्ता को मुगलों ने मार डालने का निश्चय किया। राणा उदयसिंह कहता है कि पृथ्वी के पलट जाने पर भी स्वामी पत्ता नहीं पलटा ॥४॥

३५—काव्य यशसेऽर्थकृते, व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्य परनिर्वृत्तये, कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥

जाती, वाग्मिता बन जाती है।"[३६] इसी बात को गोस्वामी तुलसीदास ने यो कहा है—

"कीन्हे प्राकृत जन गुण गाना, सिर धुनि गिरा लगत पछिताना"

मत यथार्थ है। और इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो डिंगल-काव्य दोषयुक्त है नि सदेह डिंगल मे भी कुछ कवि ऐसे हुए है जिन्होंने स्वान्त सुखाय रचना की है किन्तु, ऐसे कवियो की सख्या अधिक नही है। एक, दो, तीन और बस।

रस

डिंगल कविता प्रधानतया वीर रसात्मक है। दान-वीर, धर्म-वीर, युद्ध-वीर और दया-वीर सभी का इसमे बहुत सजीव और स्वाभाविक वर्णन मिलता है। वीर रस का वर्णन सस्कृत, हिन्दी, बंगला आदि अन्य भारतीय भाषाओ के कवियो ने भी किया है परन्तु उनके वर्णन मे वह ओज और सचाई नही है जो डिंगल के कवियो मे पाई जाती है। इसका कारण है डिंगल के कवि निरे कवि न थे, अपितु योद्धा भी थे। युद्ध सबधी बातो का उन्हें अनुभूत ज्ञान था। इसके विपरीत सस्कृत आदि के कवि कोरे कवि थे और रणभूमि से कोसो दूर किसी शान्त वातावरण मे बैठे केवल सुनी-सुनाई बातो के आधार पर अपनी कल्पना द्वारा वीररस के चित्र अकित किया करते थे जो बहुधा अस्पष्ट, अपूर्ण और अस्वाभाविक

---

३६ When a Poet turns round and addresses himself to another person, when the expression of his emotions is tinged also by that desire of making an impression upon another mind, then it ceases to be poetry and becomes eloquence John Stuart Mill

होते थे। उनकी कल्पना शक्ति को प्रत्यक्षानुभव का सहारा तनिक भी न रहता था। अत जिस तरह उपन्यासकार किया करते है उस तरह इन कवियों ने भी रणभूमि की प्रचडता-युद्ध की भयकरता, सेनाओं की विशालता, शत्रु के आतक हाथी-घोडो की रेल-पेल इत्यादि बाह्य बातो का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन तो किया और बहुत अच्छा किया परन्तु वीर-वीरागनाओ के मनोभावो का विश्लेषण उनमे न हो सका जो डिंगल के कवियो ने बडी मार्मिकता के साथ किया है। उदाहरण लीजिए—

एक बार कोई युवक किसी युद्ध मे गया। उसकी माँ उसी युद्ध मे स्वयसेविका के तौर पर घायलो को जल पिलाने का काम करती थी। दुपहरी को जब युद्ध समाप्त हुआ तब वह घायलो को जल देने के लिए अपने घर से रवाना हुई। उसके साथ उसकी पुत्रवधू भी थी। पुत्रवधू के सर पर पानी का एक घडा था और माँ के हाथ मे एक करवा। दोनो रणक्षेत्र मे पहुँची। माँ को आई देखकर घायल बेटे ने पुकारा—"माँ, पानी"। इस पर माँ ने पूछा—"तुम्हारे कितने घाव है, बेटा"। "सात घाव", बेटे ने उत्तर दिया। इतने मे कोई दूसरा घायल चिल्ला उठा—"मेरे दस घाव है। माँ ने जाकर उसे पानी पिलाया। इस तरह माँ अधिक-अधिक घाववाले योद्धाओ को जल देती रही और बेटे की बारी ही नही आई। बेटा घावो की पीडा, दुपहर की गर्मी और मारे प्यास से तडप रहा था। माँ की तरफ से निराश होकर उसने अपनी स्त्री को इशारा किया। परन्तु वह क्या करती। विवश थी! पानी पिलाने की 'ड्यूटी' माँ की थी। अपनी निःसहायता प्रकट करती हुई वह बोली—

किण विध पाऊँ आणियौ, बोलता जळ लाव।
बाँटै सास वळोवळी, भाला हूदा घाव॥[३७]

---

३७ तुम्हारे यह कहने पर कि मुझे जल पिला, कैसे मैं तुम्हें जल लाकर

भाव की बडी कोमलता और मर्म-स्पर्शिता है इस दोहे मे। रणभूमि की विकरालता, बेटे की बेचैनी, बहू की असमर्थता और माँ की निष्पक्षता का चित्र आँखो के सामने घूमने लगता है। और मन मे माँ के प्रति श्रद्धा, बेटे के प्रति सहानुभूति और पुत्रवधू के प्रति करुणा के भाव उमडने शुरू होते हैं।

और भी—

तात विदेसाँ आवियौ कौलै दीठा हाथ।
एण वधाई हूलसै, सुत-बहू वलिया साथ॥[३८]

किसी वीर युवक का पिता कहीं परदेस मे गया हुआ था। कुछ महीनो के बाद वह वापस लौटा। अपने मकान से जब वह कोई चालीस-पचास गज की दूरी पर था तब क्या देखता है कि मकान के दरवाजे की दीवार पर दोनो तरफ कुकुम भरे हाथो की छापें लगी हुई हैं। उसने अनुमान लगा लिया कि उसका बेटा कही युद्ध मे मारा गया है और उसकी स्त्री उसके साथ सती हुई हैं। हाथ के चिह्नो द्वारा प्राप्त हुई इस बधाई से वह बहुत उल्लसित हुआ।

पिला दूँ। सास तो एक के बाद दूसरे को भालो के घावों के अनुपात से जल दे रही है।

३८ पिता जब विदेश से आया तब उसने दरवाजे पर हाथ देखे। इस बधाई से कि बेटा और बहू दोनो साथ साथ लडे हैं वह बहुत प्रसन्न हुआ।

प्राचीन समय मे राजस्थान मे यह रिवाज था कि जब कोई स्त्री सती होने के लिए अपने घर से रवाना होती तब अपने घर के दरवाजे के दोनो पार्श्व पर कुकुम भरे पूरे हाथो के चिह्न लगा जाती थी। बाद मे इन कर-चिह्नो पर पन्नी चढा दी जाती थी और लोग इनकी पूजा करते थे। राजस्थान के गाँव नगरो मे अनेक घरो के दरवाजो पर ये चिह्न आज भी ज्यो के त्यो दिखाई देते हैं।

दोहा राजस्थान की संस्कृति की जीती-जागती तस्वीर है। बेटा युद्ध में मारा गया इसलिए वह बहादुर। उसकी पत्नी उसके साथ सती हुई इसलिए वह भी बहादुर। दोनों की मृत्यु पर पिता ने हर्ष प्रकट किया इसलिए वह भी बहादुर। अर्थात् सारा घर का घर बहादुर। बात साधारण है। परन्तु बहुत अनूठे ढंग से कही गई है। दोहे में 'बधाई' शब्द बड़े मार्के का है। उसने दोहे को सप्राण बना दिया है। घर का बड़ा-बूढ़ा कुछ दिनों के लिए जब कहीं बाहर जाता है और उसकी अनुपस्थिति में उसके घर में पुत्र-जन्म अथवा उसी तरह की कोई खुशी की बात पैदा होती है तो उसकी खबर सुनाने के लिए घर वाले बड़े आतुर रहते हैं, और जब उसके वापस लौटने के समाचार मिलते हैं तो दौड़कर रास्ते में उसे हर्ष-संवाद सुनाते हैं। यहां अवसर पुत्रोत्पत्ति का नहीं है, पुत्र की मृत्यु का है। परन्तु एक समय था जब राजस्थान में युद्ध में मरनेवाले पुत्र की मृत्यु के दिन भी उतना ही हर्ष प्रकट किया जाता था जितना उसके जन्म-दिन पर। अतः बहादुर पिता के लिए यह अवसर भी खुशी का ही है। परन्तु उसकी खबर देने वाला अब घर में कोई नहीं रह गया है। अतः दरवाजे पर अंकित सती के हाथों के मूक चिह्न बधाई देने का काम करते थे। बड़ी सुन्दर कल्पना है!

डिंगल की वीर रसात्मक कविता में एक विशेषता और भी दृष्टिगोचर होती है। संस्कृत, हिन्दी आदि के कवियों ने स्त्री जाति को शृंगार अथवा करुण रस के आश्रय-आलम्बन के रूप में ही अधिक ग्रहण किया है और वीर रस के लिए अनुपयुक्त समझकर स्त्री-समाज की बड़ी अवज्ञा की है। वीर रस का वर्णन करते समय उनकी आँख हमेशा पुरुष जाति पर गड़ी रही और कभी यह नहीं सोचा कि स्त्रियाँ भी बहादुर होती हैं, उनमें भी वीरोल्लास का अक्षुण्ण प्रवाह प्रवाहित होता है और मरने-मारने की इच्छा उनमें भी उतनी ही प्रबल होती है जितनी पुरुषों में। परन्तु डिंगल-कवियों ने उन्हें नहीं भुलाया। पद्मिनी, करुणावती, जवाहर बाई, कृष्णकुमारी आदि वीर नारियों

के असख्य उदाहरण सामने रहते हुए वे भुलाते भी कैसे ? अत नारी समाज की वीर भावनाओं को भी उन्होंने अपनी कविता मे ला उतारा जो विश्व-साहित्य को उनकी एक अपूर्व देन है। उदाहरण—

हाकलियां पागथियां, हियौ द्रमक्कं स्यांह।
आभरणौ नह् वधियौ, कोरी काळोयांह् ॥१॥
मतवाळा घूमै नही, नहं घायल घरणाय।
वाळ सखी ऊ देसड़ौ, भड़ बापड़ा कहाय ॥२॥
देवै गीवण दूडबडी, समळी चपै मांस।
पख अपेटां पिउ नुवै, हूं बळिहार थईस ॥३॥
वव घावां छकिया घणां, हेली आवै दीठ।
मारगियौ कंकू वरण, लीलौ रग मजीठ ॥४॥
नहं पडोस कायर नरां, हेली वास सुहाय।
वळिहारी उण देस री, माया मोल विकाय ॥५॥
पथी हेक सदेसड़ौ, बाबल नै कहियाह्।
जायां थाळ न वज्जिया, टामक टहटहियाह् ॥६॥
घोडै चढणौ सीखिया, भाभी किसडै काम।
वव सुणीजै पार री, लीजै हाथ लगाम ॥७॥ [1]

---

२९ प्राचीन समय मे जब कोई स्त्री सती होने को अपने घर के बाहर निकलती तब उसके सर के बाल खुले रहते थे और उस पर कोई आभूषण नही रहता था। इसी भाव को लेकर यह दोहा कहा गया है।

जिनकी हुंकार से वडे-वडे वहादुरो के दिल दहल जाते है। उनकी स्त्रियाँ भी अपने काले केशो पर आभूषण नही पहिनती। (कारण कि सर पर आभूषणो के होने से उनको खोलने मे समय लगता है और सती होने मे देरी पडती है। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि वीर पुरुष

इसके साथ-साथ सेना, युद्ध आदि वीर रस से सबद्ध अन्यान्य ऊपरी बातो का भी डिंगल के कवियो ने बडा भव्य, मनोहर और रोमहर्षण वर्णन किया है।

वीर रस की प्रधानता देख कर कुछ लोगो ने यह निष्कर्ष निकाला है कि डिंगल भाषा जितनी वीर रस के लिए उपयुक्त है उतनी दूसरे रसो के लिए नही है। परन्तु यह उनकी भ्रान्त धारणा है। वीर रस के अतिरिक्त शृगार आदि अन्य रसो के निरूपण की क्षमता भी डिंगल मे पूरी-पूरी पाई जाती है और अन्य रसो की भी बडी सरस, भावपूर्ण एव विशिष्ट कविता डिंगल मे हुई हैं—

की स्त्रियाँ भी वीर होती हैं। वे भी मरने को पहले ही से तैयार रहती हैं) ॥१॥ हे सखी! उस देश मे आग लगा दे जहाँ मतवाले योद्धा नही घूमते हैं। घायल नही चक्कर खाते हैं और जहाँ बहादुर को 'बेचारा' कहा जाता है॥२॥ मैं उस स्थान पर बलिहारी जाती हूँ जहाँ गिद्धनी थपथपी देती है। चील सर चापती है और पति पखो की झपेटो मे सोते है॥३॥ हे सखी! पति बहुत से घावो से छके हुए आते नजर आ रहे हैं। रास्ता (रक्त के बहने से) कुकुम-वर्ण का और उनका श्वेत अश्व मजीठ के रग का हो गया है॥४॥ हे सखी! मुझे कायर पुरुषो का पडोस अच्छा नही लगता। मैं उस देश पर बलिहारी जाती हूँ जहाँ मस्तक मोल बिकते है ॥५॥ हे पथी! मेरे पिता को एक सदेशा कह देना—जिस समय मैं पैदा हुई थी उस समय थाली भी नही बजी पर इस समय (जब कि मैं सती होने को जा रही हूँ) मेरे आगे ढोल बज रहे है॥६॥ हे भाभी! घोडे पर चढना किस लिए सीखा था? दुश्मन की बब सुनाई दे रही है। लगाम को हाथ मे ले लो॥७॥

शृंगार रस—

(क) घण चौतरफ घटा घुममारै। केकी ममन होय कोहोकारै॥
सुजळ अथाह फैलियो सारै। पण आलो कद पीव पधारै॥
उझट जीव लग रह्यो उदासी। व्याप अन्त उर वाढ व्यथासी॥
देखू वाट ए री सुण दासी। आ कह री वालम कद आसी॥
निरख रहूं इकटक नैणा सू। सौहो मनवार करू वैणा सूं॥"[40]

(ख) नैण थकाणा मग निरख, कई सिधाणा कौल॥
पण न थकाणा राज रा, वाट जैकाणा बोल॥१॥
मैं जोवन री मार, मदमाती जाणी नहीं।
तिय लूटै सी वार, वार न छूटै वींझरा॥२॥
टोळी सू टळियांह, हिरणां मन माठा हुवै।
वालम बीछडियांह, जीवै किण विध जेठवा॥३॥
दुनियां जोडी दोय, सारस नै चकवा सुण्यां।
मिल्यो न तीजो कोय, जो जो हारी जेठवा॥४॥"

---

४० चारों ओर घनघोर घटा छाई है और मोर मस्त होकर कुहुक रहे हैं। अपार जल सर्वत्र फैल गया है। पर हे सखी! पति कब आएंगे। मन उचट गया है। उदासी लगी हुई है और अन्तस्थल में व्यथा की बाढ सी आ गई है। हे दासी? मैं वाट देख रही हूं। यह बता कि प्रीतम कब आएगें। मैं नेत्रों से टकटकी लगाकर उनको देखूंगी। वचनों से बहुत मनुहार करूंगी।

४१ मार्ग देखते-देखते आँखें थक गई हैं और तुम्हारी कई प्रतिज्ञाएं यों ही निकल गई है। लेकिन प्रतीक्षा करनेवाले तुम्हारे ये वचन अभी तक नहीं थके है॥१॥ मुझ मदमाती ने यौवन की मार को नहीं

करुण रस—

तू क्यू कूकै कूकडा, झलती मांझल जोग।
विहग थनै ई वीटियौ, वाघा तणी विजोग॥१॥
की कह की कह की कहूं, की कह करु बखाण।
थारौ म्हारौ नह कियौ, औ वाघा अहनाण॥२॥
चाल मना रै कोटडै, पग दै पांवडियांह।
वाघा सूं वातां करां, दे गळ बांहडियांह॥३॥
वड वावडी तणांह, नीमाणा नीलो थयौ।
वाघा वीछडतांह, साख तणा सूखो नही॥४॥
वाघा जी रै कोटडै, टकी लाल कचाण।
साजनियां सालै नही, सालै आहीठांण॥५॥[४२]

समझा था। हे वीझरा! तिथि तो सौ वार टूटती है पर वार नही टूटता ॥२॥ हे जेठवा! अपनी टोली से विछडते हुए हिरणो के भी (जो पशु हैं) मन उदास हो जाते है तो फिर मनुष्य योनि वाली मै अपने वालम के विछुडने पर कैसे जीवित रह सकती हूं॥३॥ हे जेठवा! इस ससार मे जोडी दो ही की सुनी है। सारस की और चकवे की। सारे ससार को खोज-खोजकर हार गई पर तीसरी नही मिली॥४॥

४२ हे मुर्गा! इस अर्द्ध रात्रि मे तू क्यो कुरलाहट कर रहा है। क्या तुझे भी वाघजी के वियोग ने घेर लिया है॥१॥ मैं अब क्या-क्या कहूं और वाघजी का क्या वखान करू उसकी तो पहिचान ही यह थी कि वह किसी वस्तु के लिए यह मेरी और यह तेरी ऐसा नही कहता था॥२॥ हे मन! इन सीढियो पर पैर रखकर कोटडे को चल। वहाँ पर वाघजी के गले मे बाँहें डालकर वातें करेंगे॥३॥ हे वावडी के ऊपर वाले निर्लज्ज वरगद! वाघजी का चिरवियोग होने पर भी तेरी शाखा और तना सूखे नही है और

हास्य रस—

> पिऊ समर में जावता, पाछा गया पगार।
> सहियो दीठो भींत पर, भाला सहित सवार॥१॥
> पीव डमा रण चढ्ढिआ, हथ लीधी तरवार।
> दीठी तन री छाँहिली, उभा पाडै वार॥२॥'

भयानक रस—

> चहूं चक्क चलचलिय, सेस चलचलिय सहस सिर।
> कमठ पीठ कलमलिय, ग्रहण दलमलिय सुचर थिर॥
> दहले दिग्गज दिसा, मेर मरजादा मुक्किय।
> अदल वदल जल उदध, चडि सिध आसन चुक्किय॥
> भयभीत हुआ चौदह भुवण, स्रवै गरभ तिय दिस दसिय।
> रघुनाथ कहो सझ डंबर रिण, कमर आज किण पर कसिय॥"

तू हरा-भरा ही है॥४॥ बाघजी के कोटडे मे उनकी लाल कमान टगी हुई है। मित्र का वियोग इतना नही सताता जितना कि उनका स्थान सताता है॥५॥

४३ (किसी कायर को पत्नी कहती है) मेरे पति युद्ध मे जा रहे थे सो वापस लौट आए। क्योकि रास्ते मे कही दीवार पर उन्होंने भाले सहित सवार का चित्र देख लिया ॥१॥ पति ने हाथ मे तलवार ली और रण के लिए चढे। परन्तु अपनी छायाकृति देख खडे-खडे सहायतार्थ चिल्लाने लगे ॥२॥

४४ हे रघुनाथ! बताइए आज आपने यह आडंबर सजाकर युद्ध के लिए किस पर कमर बाँधी है जिससे चारो दिशाएं चलायमान हो गई हैं। शेषनाग के हजार मस्तक मलसला गए हैं। कच्छप की पीठ कलमला गई है। चराचर जीवो के स्थान दहल गए है, दिशाओ के हाथी डर गए

अद्‌भुत रस—

> सीस सरग सात मे, परग सात मे पयालै।
> अरणव साते उदर, विरथ रोमाच विचालै॥
> नदी सहस नाडियाँ, प्रगट परवत मसपूरज॥
> श्रुत दिस पवन उसास, सकल लोयण ससि सूरज॥
> सिव सूँ उमग पूछै सगत, इचरज अत आवत यहै।
> ऊ कहो मोंहि प्रभु सत उर, रात दिवस किण विध रहै॥[४५]

रौद्र रस—

> विस्वामित्रेस एण वात, कोपियौ भयकरा।
> गिरा तरास ए गभीर, धूजवै वसूँधरा॥
> रोमच अग घोम रूप, ब्रह्मतेज मे वणै।
> जटा छटा छटा जडागि, आगि नेत्र ऊफणै॥[४६]

हैं। सुमेर पर्वत ने अपनी मर्यादा छोड दी है। समुद्र का जल उथल-पुथल हो गया है। चडी और सिद्धो के आसन हिल गए हैं। चौदह भुवन भय-भीत हो गए हैं और गर्भवती स्त्रियो के गर्भ गिर गए हैं।

४५. पार्वती शिव से पूछती है कि जिस प्रभु का मस्तक सातवें स्वर्ग मे है। चरण सातवें पाताल मे है। सातो समुद्र जिसके पेट में है। बीच-बीच के वृक्ष जिसकी रोमावलि है। हजारो नदियाँ जिसकी नाडियाँ हैं। पर्वत जिसकी हड्डियाँ हैं। दिशाए कान हैं। पवन जिसका श्वासो-च्छ्वास है कला सहित चन्द्रमा और सूरज जिसके नेत्र है। वह सन्त पुरुषो के हृदय मे रात-दिन कैसे निवास करता है।

४६ इस बात से विश्वामित्र को भयकर क्रोध आ गया। उनकी गभीर वाणी के त्रास से पृथ्वी कपायमान होने लगी। रोमाच हो आया और ब्रह्मतेज युक्त उनके शरीर ने (घोम) अग्नि का रूप धारण कर

बीभत्स रस—

> करं सिरमाळ वहं तिण काळ। कटं भड़पाळक भाळ कपाळ।
> कटं जरदाळ वहै छक डाळ। गळं वरमाल कुळं रुहिराळ।
> महेस कपाळ चणै कज माळ। चलं रत खाळ नठं पद चाल।
> धड़े लगि सार उठै रत धार। उगी फळ दिव कि कार अपार।
> हुए इक सत्य विना खग हत्थ। मिलं लथवत्थ विना दे मत्थ।
> रडव्वड मुड गडं चडि रुड। निमा विण मुड वणं गजतुड॥
> हिंचं नर वीर नगा कर हाक। छकी रिण चौसठ जोगण छाक॥"

शांत रस—

> थारी नहीं देह परवार न थारो, वित थित घर थारो नहीं वेक।
> सुत पित मात वडाणं सारै, हटवाडा रो मेळो हेक॥१॥

किया। उनकी जटा दीपक ज्योति के समान बिखर गई और आँखों से आग उफनने लगी।

४७ उस समय हाथ मे तलवार चलती है। सेनापतियो के ललाट और कपाल कटते हैं। कवच वाले वीर कटते है और हाथी कटते हैं। वरमाला पडती है और रक्त बहता है। अपनी माला के लिए शिव कपाल चुनते हैं। रक्त का प्रवाह बहता है वहा पाव फिरते हैं। धड पर तलवार के लगने से रक्त की धार उठती है, मानो विषफल की टहनी उग रही है। कई योद्धा एक साथ बिना खड्ग और हाथ के हो जाते है और कई बिना मस्तक के भी गुत्थमगुत्था करते है। रुड-मुड इधर उधर लुढकते और पडते हैं। उसी तरह हाथियो के मस्तक बिना सूडो के हो जाते हैं। वीर पुरुष हुंकार करके तलवारो मे युद्ध करते है। चौसठ योगिनियाँ रण-मद से तृप्त हो गई हैं।

काचो पिंड कुटुम धन काचो, सह काचो ससार सपेख।
भाईबंध काचा रै भाया, सपना री दौलत स विसेख॥२॥
काया धन सुत कलत्र कारमो, खलक कारमो बाजीगर खेल।
दीसण तणो चलाचल दीसै, औ सारो पाणी कल्लेल॥३॥
ओहला तिर तिर बहु आया, करमा वस बन बन री काट।
करम कमाई भुगत कानियां, बहणो उठ आया जिण बाट॥४॥"[48]

अलंकार

डिंगल कविता सीधी-सादी कविता है। इसमे अलकारो की प्रधानता नही है, भाव या अर्थ की प्रधानता है। अलकारो का प्रयोग भी डिंगल के कवियो ने किया है। परन्तु बहुत थोड़ा और सयम के साथ। अलकार-ज्ञान-प्रदर्शन के हेतु भाव को भ्रष्ट करने की प्रवृत्ति इनमें कही दिखाई नही देती। अर्थालकारो मे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि सादृश्य मूलक अलकार डिंगल मे अधिक देखने में आते है, खासकर उन स्थानो पर जहाँ सेना, युद्ध, प्रकृति और रूप-सौन्दर्य का वर्णन किया गया है। सागरूपक डिंगल कवियो के

---

४८ देह तेरी नही है न परिवार तेरा है। धन, स्थिति और घर को अपना मत समझ। बेटा, माता-पिता और बड़े सब एक हटवाड़े का मेला है॥१॥ शरीर कच्चा है, कुटुम्ब और धन कच्चा है। सारे ससार को कच्चा मान। हे भाई! भाईबन्द कच्चे हैं। विशेष कर दौलत एक सपना है॥२॥ शरीर, धन, सुत-कलत्र एक कारवाँ है। ससार एक कारवाँ, बाजीगर का खेल है। चल और अचल जितना भी दिखाई देता है वह सब पानी की लहर के समान अस्थायी है॥३॥ बहुत से तैर-तैरकर पार आ गये है। कर्मों के वशीभूत तू वन-वन का काठ हो रहा है। हे कानियाँ! कर्मों की जो कमाई की है उसे भोग। उठ, जिस रास्ते से आया है उसी से वापस चलना है।

विशेष रूप से बहुत सुन्दर बन पड़े हैं। इनमें बड़ी क्रांति, स्वाभाविकता और पूर्णता है। उदाहरण—

गीत छोटो साणोर

पो कीरत बीज खेत रजपूती
दाह खत्रा उर खात दियौ।
हळ भालौ करता खड हाळी
करसण आरम्भ गजब कियौ॥१॥
काकळ प्रथळ वाहणी काढै
महत सबळ घणा दळ माण।
भग्रहर डगळ किया मह मूधा
दळ चाउर फेरै दइवाण॥२॥
अरि अळियो जड हूत उपाडै
साकुर धोरी हाँक सरै।
ल्हास[४९] करै फौजा खड लंगर
कीध नीनाणी समर करै॥३॥
लगरवत दूल्हावत लाला
सुपह दात फरसा कर सार।
मर डूचण दौध्या रण सरसा
वड करसा झोका इण वार॥४॥

---

४९ खेती के काम मे सहायता देने के लिए बुलाए हुए अवैतनिक व्यक्तियो को जो खाना दिया जाता है वह ल्हास कहलाता है। इसी का दूसरा नाम हलमा भी है।

पाहड़ धरा अवर कुण पूगै
जुगतहरा हासल री जोड़।
रस आई जाणी रजवाड़ा
रजवट री नेती राठोड़ ॥५॥"

कवित्त

(२) भड़ धड़ पाळ प्रवध, अग छग किया तरोवर।
रोहर नीर सम भरे, मछ नाचत सरोवर॥
सीस कँवळ फूलियो, चवर सेवाळ परठ्ठं।
भंवर ग्रीध भणहूणं, हूम राता कर दिठ्ठं॥

---

५० पृथ्वी मे कीर्ति बीज है, रजपूती खेत है और शत्रुओ के हृदय की दाह खाद है। हे वडे खेतिहर! भाले को हल बनाकर तूने गजब की खेती करना प्रारभ कर दिया है॥१॥ युद्ध मे जबरदस्त सेना लेकर, बहुत से बलवान राजाओ की सेना का मान-मर्दन कर, तूने शत्रु-रूपी समस्त ढेलो को सीधा कर दिया है और हे श्रेष्ठ! उन पर अपनी सेना का पहटा फेर दिया है॥२॥ अश्वरूपी बैलो को हाँककर तू ने शत्रु-रूपी कूडा-कर्कट को जड से उखाड दिया है, बडी सेना को रहास बनाकर तू ने समय-रूपी निराई कर डाली है॥३॥ हे सेनाओ से युक्त! दूल्हा के पुत्र! राजा लालसिह! तेरे हाथ मे तलवार रूपी दाँती-फरसा है। तू रण मे शत्रुओ के सरो को दवाने वाला है। हे वडे कृपक! इस बार तुझे धन्य है॥४॥ हे जुगतसिह के पोते! ऐसी पहाडी धरती तक और कौन पहुँच सकता है। और कौन तेरे हासिल की बराबरी कर सकता है। तेरी खेती मे रस आया, यह सब रजवाडो ने जान लिया है। हे राठौड! यह रजपूती की खेती है॥५॥

सुण सूर चप रिडमाल सुत काळीकी खप्पर भरै।
सत दूण सगण पडोर जिम, रिण ताला मजण करै॥१॥[५१]

शब्दालकारो मे वैणसगाई डिंगल का एक अत्यन्त लोकप्रिय अलकार रहा है। यह एक प्रकार का शब्दानुप्रास है। परन्तु सस्कृत-हिन्दी के अलकार ग्रथो मे इसका नाम नही मिलता। यह डिंगल का अपना अलकार है। डिंगल के रीतिग्रथो मे इसकी बडी महिमा गाई गई है और कहा गया है कि जिस स्थान पर वैणसगाई सगठित हो जाती है वहाँ फिर अशुभ गण, दग्धाक्षर इत्यादि के दोष नही रह जाते—

आवै इण भाखा अजल, वयण सगाई वेस।
दग्ध अगण वध दुगण रो, लागै नहं लवलेस॥
खून कियाँ जाणै खलक, हाड वैर जो होय।
वैण सगाई वयण तो, कल्पत रहै न कोय॥

वैणसगाई 'वैण' और 'सगाई' इन दोनो शब्दो से मिलकर बना है और इसका अर्थ होता है, वर्ण का सबध या वर्ण द्वारा स्थापित सबध। वैणसगाई का साधारण नियम यह है कि छद के किसी चरण के प्रथम शब्द

---

५१ शत्रुओ के अगो को वृक्षों को छाँगने के समान काट-काटकर तालाव की पाल के समान ढेर लगा दिया है। जिससे पानी के स्थान पर रक्त भरा हुआ है। वीरो के टूटे हुए अगो के टुकडे मछलियो की भाँति उसमे नाच रहे हैं। उनके सिर फूले हुए कमल के समान और केश सिवार के समान शोभा दे रहे हैं। गिद्ध-रूपी भौंरे भिनभिना रहे हैं, उनके हाथ प्रसन्न चित्त हस के समान दिखाई दे रहे है। रिणमल के पुत्र शूरवीर चाँपा के युद्ध की प्रशसा सुन कालिका खप्पर भर रही है। और चौदह ही गण निरंतर पानी के अन्दर रहने वाले कमल के समान स्नान कर रहे हैं।

का प्रारम जिस वर्ण से हुआ हो उसके अतिम शब्द का प्रारभ भी उसी वर्ण से होना चाहिए। जैसे–

(१) सखा अमीणो साहिबो, सूर वीर समरत्थ।
जुध मे वामण डड जिम, हेली वाधै हत्थ॥

(२) दाटक अनड दड नह दीधी
दीयण धड सिर दाव दियौ।
मेळ न कियौ जाय विच महला
कैल्पुरै खग मेळ कियौ॥

वैणसगाई के सात भेद माने गये है जिनमे तीन मुख्य हैं–अधिक, सम और न्यून। इनको क्रमश उत्तम, मध्यम और अधम भी कहते हैं।

(१) अधिक–जहाँ चरण के पहले शब्द और अतिम शब्द के आदि के वर्णो को मिलाया जाय। यथा–

विकट करो तीरथ वरत, धरा भेप के वार।
विना नाम रघुवीर रे, परत न उतरै पार॥

(२) सम–जहाँ चरण के प्रथम शब्द के आदि के अक्षर और अतिम शब्द के मध्य अक्षर का मेल किया जाय। यथा–

नाम लियाँ थी मानवाँ, सरकै कलुप विसाल।
मह जैसे मेटै तिमिर, रसम परस किरमाळ॥

(३) न्यून–जहाँ चरण के आदि के और अन्त के अक्षरो को मिलाया जाय। यथा–

मरद जिके ससार में, लखजै जीव विमाल।
रात दिवम रघनाथ रा, लेवे नाम रसाल॥

डिंगल के रीति ग्रन्थो मे 'वैणसगाई' का निर्वाह न होना कोई दोष नही माना गया है। परन्तु प्राचीन कवियो ने और विशेषकर मध्यकालीन कवियो ने इसका ऐसी कट्टरता से पालन किया कि परवर्ती कवियों के लिए यह एक अनिवार्य नियम-सा बन गया, और छोटे बडे सभी कवि इसका निर्वाह करते रहे। यदि किसी स्थान पर वैणसगाई का निर्वाह किसी कवि से न होता तो वह काव्य-दोष तो नही माना जाता था परन्तु उस कवि की कवित्व-शक्ति की कमजोरी का सूचक अवश्य समझा जाता था। बूदी के कवि राजा सूरजमल पहले व्यक्ति थे जिन्होने पहले पहल इस बात का अनुभव किया कि वैणसगाई एक प्रकार का कृत्रिम बंधन है जो न केवल कवि-कल्पना की स्वाभाविक गति को बाधा पहुचाता है, बल्कि उसकी वजह से भाव के स्पष्टीकरण मे भी कठिनाई होती है, और कभी-कभी रसोद्रेक को भी आघात पहुँचाता है। अतएव उन्होंने इसकी उपेक्षा करना प्रारम्भ किया। परन्तु अपने समकालीन कवियो के रोष का भय उन्हे भी था। इसलिए अपनी 'वीर-सतसई' मे यह दोहा लिखकर उन्होने अपनी सफाई दी—

> वैंण सगाई वाळियाँ, पेखिजै रस पोस।
> वीर हुतासण बोळ मे, दीसे हेक न दोस॥"[५२]

सूरजमल अपने समय मे राजस्थान के सर्वश्रेष्ठ कवि थे और राजस्थान के कवि-समाज पर उनका बडा दबदबा था। अत उनकी देखा-देखी दूसरे लोग भी वैणसगाई के प्रयोग मे कुछ ढिलाई करने लगे। परन्तु इसका प्रयोग बिलकुल बन्द फिर भी नही हुआ। सूरजमल के पहले यह बात थी कि वैणसगाई के बिना डिंगल कविता की कल्पना ही नही की जा सकती

---

५२ वैणसगाई के नियम को जला देने से वीर रस का पोषण ही दिखाई देता है। उस हुतासन (अग्नि) के रग मे दोष तो एक भी दिखाई नही देता।

थी। वैसी बात तो फिर नही रह गई। लेकिन वैणसगाई का निर्वाह करने वाले कवियो को तरजीह फिर भी दी ही जाती थी जो प्रवृत्ति आज भी कुछ लोगो मे देखी जाती है। और डिंगल के गीतो मे तो वैणसगाई का पालन आज भी उसी कठोरता से किया जाता है जैसा प्राचीन-काल मे कभी किया जाता था।

छंद

सस्कृत-हिन्दी मे प्रयुक्त गाहा, पद्धरि, मुक्तादाम, भुजगप्रयात, तोमर, त्रोटक इत्यादि प्रसिद्ध-प्रसिद्ध प्राय सभी छन्दो का प्रयोग डिंगल के कवियों ने भी किया है। परन्तु दोहा, कवित्त (छप्पय), नीसाणी, झूलना, कुड-लिया, दवावैत, वचनिका, झमाल, वेअक्खरी और गीत छदो का प्रयोग अधिक देखने मे आता है। इनमे भी दोहा, कवित्त और गीत का प्रयोग विशेष रूप से बहुत ज्यादा हुआ है।

दोहा

दोहा एक मात्रिक छन्द है। राजस्थान मे यह 'दूहो' कहलाता है। इसका बहुवचन 'दूहा' होता है। हिन्दी मे 'दोहा' एक ही प्रकार का माना गया है। परन्तु डिंगल मे इसके पांच भेद बताए गए हैं—दूहो, सोरठियो दूहो, वडो दूहो, तूंवेरी दूहो और खोडो दूहो।

(१) दूहो—इसमे चार चरण होते हैं। पहले और तीसरे चरण मे १३।१३ मात्राए तथा दूसरे और चौथे चरण मे ११।११मात्राए होती हैं। जैसे—

जिण वन भूल न जावता, गैंद गिवल गिडराज।
तिण वन जवुक ताखडा, ऊधम मडै आज॥

(२) सोरठियो दूहो—यह हिन्दी का सोरठा है। डिंगल के कवियो

ने इसकी बडी प्रशंसा की है। इसके पहले और तीसरे चरण मे ११।११ मात्राएँ तथा दूसरे और चौथे मे १३।१३ मात्राएँ होती हैं। यथा-

अकबर समंद अथाह, सूरापण भरियो सजळ।
मवाडो तिण मांह, पोयण फूल प्रतापसी॥

(३) वडो दूहो—इसे सांकळियो दूहो भी कहते हैं। इसके पहले और चौथे चरण मे ११।११ मात्राएँ तथा दूसरे और तीसरे चरण मे १३।१३ मात्राएँ होती हैं। जैसे-

रोपी अकबर राड, कोट झडै नहं कांगरै।
पटकै हायळ सीह पण, वादल ह्वै न बिगाड॥

(४) तूवेरी दूहो—इसके पहले और चौथे चरण मे १३।१३ मात्राएँ तथा दूसरे और तीसरे चरण मे ११।११ मात्राएँ होती हैं। जैसे-

मेवा तजिया महमहण। दुरजोधन रा देस।
केळा छोत विसेस, जाय विदुर घर जीमिया॥

(५) खोडो दूहो—इसके पहले और तीसरे चरण मे ११।११ मात्राएँ तथा दूसरे और चौथे मे क्रमश १३ और ६ मात्राएँ होती हैं। जैसे-

नाडी भरियौ नीर टापरियौ झूलण गयौ।
तरै न पूगौ तीर, वो डूबौ।

कवित्त

सस्कृत मे यह षट्पदी और हिन्दी मे छप्पय कहलाता है। हिन्दी मे एक ही प्रकार का छप्पय प्रसिद्ध है। परन्तु डिंगल मे इसके तीन भेद कहे गये है (१) कवित्त, (२) सुध कवित्त और (३) दोढो कवित्त।

(१) कवित्त—इसमे छह चरण होते है जिनमे पहले चार चरण रोला के और शेष दो दोहा के होते है। जैसे-

हहो करै हित हाण, झझो तन व्याध जगावै।
वघो राज भय घरै, ररो धन नाम करावै॥
घघो घरण घट घाट, निफल नर ननो नमाडै।
खय जस करै खकार, भभो परदेस भभाडै॥
अक आठ कहिया असुभ, चित धुर धरो विचार।
अवध ईस गुण गावतां, लगै न दोस लगार॥

(२) सुध कवित्त—यह हिन्दी का छप्पय है। इसमे भी छह चरण होते हैं, पहले चार रोला के और और अंतिम दो उल्लाला के। जैसे—

एक पडै ऊपडै, रघ ऊवडै वक्कतर।
सार वहै सूरमा, पार विण छूटै पजर॥
एक पहर नभ अरक, ईख रहियो अचरज्जै।
निरख काळ नच्चियौ, समै खग चाल महज्जै॥
आवरत जुद्ध परखै अमर, हरखै रिख नारद्द हर।
कमवज्ज निहट्टै किरमरा, अत जुटै खूटै असुर॥

(३) दोढो कवित्त—इसमें आठ चरण होते है। इनमे पहले छह चरण रोळा के और बाद के दो उल्लाला के होते हैं। जैसे—

प्रथम लाख समपियौ, कवी बारट सकर कर।
लखपति बारट लाख, दीध दूजौ करि डवर॥
तीजौ लख तिण वार, अजा भादा करि अप्पै।
भणि ताराचद भाट, मौज लख चवथ समप्पै॥
पात नाम भट गोप, करै जस प्रगट प्रकासा।
मौज लाख पाचमी, जेण वगसै महराजा॥
पुह सूर करै रूपक परख, स्रवै कुरब वहां कीत वरि।
छत्रपति लाख दोधी छठी, कविया भानीदास करि॥

गीत

गीत नाम से प्राय उस पद्यात्मक रचना का भान होता है जो गाई जाती है परन्तु डिंगल भाषा के गीत दूसरी तरह के है। ये गाये नही जाते विशेष ढग से पढे जाते है। और इनके लिखने की भी, एक खास शैली है। एक गीत मे तीन या तीन से अधिक पद होते हैं। प्रत्येक पद (stanza) दोहला कहलाता है। पूरे गीत मे एक ही घटना अथवा तथ्य का वर्णन रहता है। जिसे सभी दोहलो मे प्रकारान्तर से दोहराया जाता है। पहले दोहले मे जो बात कही जाती है वही दूसरे मे भी रहती है। परन्तु दोहराई इस तरह से जाती है कि पढने व सुननेवालो को उसमे पुनरावृत्ति दिखाई नही देती और उसका प्रभाव उन पर अधिकाधिक दृढ एव गहरा होता जाता है। नमूने के तौर पर एक गीत यहाँ दिया जाता है —

गीत

पाताळ तठै वळि रहण न पाऊ।
    रिध माडे जग करण रहूं॥
मो म्रितलोक राइसिघ मारै।
    कठै रहूं हरि, दळिद्र कहे॥१॥
वीरोचद-सुत अहिपुर वारै।
    रवि-सुत तणी अमरपुर राज॥
निधि-दातार कलावत नरपुर।
    अनत रौर गति केही आज॥२॥
रयण-दियण पाताळ न राखै।
    कनक-भ्रवण रूघी कविळास॥
महि पुढि गज-दातार ज मारै।
    विसन, किसै पुढि माडू वास॥३॥

नाग अमर नर भुवण निरखता।
हेक ठौड छै, कहै हरि॥
घर अरि नान्हा सिंघ घातिया।
कुरिंद, तठै लाइ वास करि॥४॥[५३]

इस गीत मे बीकानेर के महाराजा रायसिंह की दानशीलता का वर्णन है। यही इसका केन्द्रीय भाव है। इसी को शब्दान्तर के साथ चारो दोहलो मे दोहराया गया है जो गीत-रचना के नियमानुसार आवश्यक है। यदि कवि एक ही बात को इस प्रकार दूसरे शब्दो मे पुनरावृत्ति न कर सके तो उसकी रचना साहित्य की दृष्टि से हीन श्रेणी की समझी जाती है।

---

५३ पाताल मे बलि है इसलिए मैं वहाँ नही रह पाता हूं। स्वर्ग मे ऋद्धि सहित कर्ण रहता है। इस मृत्यु लोक में मुझे रायसिंह मारता है। दारिद्रय कहता है कि हे हरि! आप ही बताइए अब मैं कहाँ रहूं॥१॥ नागलोग मे विरोचन का पुत्र बलि मुझे दूर भगाता है। देवलोक मे सूर्य के पुत्र कर्ण का राज्य है। नरलोक मे कल्याणसिंह का पुत्र, निधि दातार (रायसिंह) है। हे अनन्तदेव मेरी आज अन्यत्र कहाँ गति है? ॥२॥ पृथ्वी का दान करने वाला बलि मुझे पाताल मे नही रखता। स्वर्णदान करने वाले कर्ण ने मेरे लिए स्वर्ण का द्वार बन्द कर रखा है। इस पृथ्वी मडल पर हाथियो का दान देने वाला रायसिंह मुझे मारता है। हे विष्णु, मैं किस लोक मे अपना निवास बनाऊ॥३॥ नागलोक, अमरलोक एव नरलोक का निरीक्षण करने के बाद हरि कहते हैं कि अब एक स्थान बाकी है। हे दारिद्रय! तू रायसिंह द्वारा परास्त शत्रुओ के घर मे जाकर वास कर॥४॥

राजस्थान में एक कहावत प्रसिद्ध है जिससे गीत रचना की महिमा और लक्ष्य का पता लगता है। "गीतड़ा कै भींतड़ा" अर्थात् मनुष्य का यश या तो गीतों से अमर रहता है या देवालय, जलाशय आदि बनवाने से। अत मानव-कीर्ति को अक्षुण्ण रखने के अभिप्राय से लिखे गए गीत डिंगल में हजारों ही मिलते हैं और यह डिंगल साहित्य की प्रमुख विशेषता है। उत्तरी भारत की अन्य किसी भाषा में इस तरह के गीत नहीं पाए जाते। कहते हैं कि दक्षिण भारत के मलाबार प्रान्त की भाषा मलयाली में इनसे मिलते-जुलते कुछ गीत प्राप्त होते हैं।

डिंगल में गीत भक्ति, शृंगार आदि अनेक विषयों पर रचे गये हैं। परन्तु वीर रस गीतों की सख्या बहुत अधिक है। प्राचीनकाल में इन गीतों को सुनकर वीर पुरुष पतगों की तरह रणाग्नि में कूद पड़ते थे और वीरागनाएँ जौहर-ज्वाला में बैठ जाती थीं। इस तरह के गीत लिखनेवाले अब राजस्थान में गिने-चुने रह गए हैं और ठीक तरह से रिसाइट करने वाले भी दो चार ही हैं। यह कला अब दिन-दिन नष्ट हो रही है।

कहा जा चुका है कि ये गीत रिसाइट करने के लिए हैं। इनका सौन्दर्य और चमत्कार अधिकतर ठीक तरह से रिसाइट करने पर निर्भर रहता है। पत्रारूढ होते ही इनका सारा ओज एव चमत्कार नष्ट हो जाता है। प्राय देखा गया है कि जो गीत लिखित रूप में बहुत साधारण कोटि का प्रतीत होता है, वही जब किसी योग्य व्यक्ति के मुँह से बाहर निकलता है तब दूसरा ही दिखाई देने लगता है। अतएव कागज पर पढ़कर इनकी अच्छाई-बुराई के विषय में सम्मति देना अनुचित है, जैसा कि कुछ लोगों ने किया है।

गीतों के कई भेद हैं। डिंगल के भिन्न-भिन्न रीति ग्रथों में इनकी सख्या भिन्न-भिन्न बतलाई गई है। उदाहरणार्थ रणपिंगल में ३३, रघुनाथ-

रूपक मे ७२ और रघुवरजसप्रकास मे ९१ प्रकार के गीतो का लक्षण-उदाहरण सहित विवेचन है।

इन गीतो मे विशेष प्रचलित गीत 'छोटो साणोर' है। डिंगल के कवियो ने इसी का व्यवहार अधिक किया है। अत इसके स्वरूप को समझ लेना आवश्यक है। इसके प्रत्येक दोहळे मे चार चरण होते हैं, और पहले तथा तीसरे चरण मे १६।१६ मात्राएँ और दूसरे तथा चौथे चरण मे यदि अत मे गुरु हो तो १४।१४ मात्राएँ और लघु हो तो १५।१५ मात्राएँ होती हैं। परन्तु प्रथम दोहळे के प्रथम चरण मे १८ मात्राएँ होती है। जैसे—

कर थानँ मूछ कही की ऊपर
ठाकर बोगा वाद ठहै ।
राजकुळा पँतीस रायमल
करवा ओळग मेल कहै ॥१॥

कनक तुरी डँड लै कुंभावत
राया माल मलकर मन रीस ।
मडलवै मेवाड नरेसुर
पाय विलग्गा कुळ पतीस ॥२॥

बळ परहरै वना वध बोलै
मनस समा रावै घर मूत ।
राण तुहाळी पोळ रायमल
राजघणी सेवै रजपूत ॥३॥

काव्यदोष

काव्य के मुख्य अर्थ की प्रतीति को हानि करनेवाली वस्तु को दोष कहते हैं। डिंगल मे काव्य-दोष ग्यारह प्रकार के माने गए हैं—अध, छत्रकाळ

हीण, निनग, पागळो, जातिविरोध, अपस, नाळछेद, पखतूट, बहरो और अमंगळ।

(१) अंध—जहाँ उक्त विषय का निर्बाध निर्वाह न हो सके और किसी चरण मे उक्त विषय सम्मुख और दूसरे मे परामुख हो तो वहाँ यह दोष माना जाता है। जैसे—

दिलड़ा! समझ रे सगलो जग दाखै
पछै भणी पिछतासी।
पुरुष जनम कद तू पामैला
गुण कद हरि रा गासी ॥१॥
मात-पिता बंधव दौलत-मद
सुत त्रिय जोड़ संधाणो।
माया रा आडंबर माँहै,
वदा! केम बंधाणो ॥२॥
समुझे क्यू न अजू समझाऊँ,
भूल मती हिव माया।
दौड़ै ऊमर चटक देतो •
छिन जिम बादळ छाया ॥३॥
सोवै खाय करै नहं सुकृत
खोवै दीह खलीता।
प्रीत करै सिमरै सीतापत
जिकै जमारो जीता ॥४॥

इस गीत के प्रथम और द्वितीय दोहळे मे परामुख उक्ति है। तृतीय मे सम्मुख उक्ति है। और फिर चतुर्थ मे परामुख उक्ति है। एक ही उक्ति का निर्वाह नही हुआ है। अत यहाँ अंध दोष है।

(२) च्युतकाळ—विरुद्ध भाषाओं अथवा विभिन्न भाषाओं को छिन्न में मिला देने से दोष आ जाता है। जैसे—

प्रीति करै जिन्ह तें अति,
मौज दियै मन मानी ।
लाग्यो न मन इन पग जिहि लाई
पार न डारै प्रानी ॥१॥
रस विलास करता के नानी
के सर्ज रंगु लेटे ।
परयो न दिल प्रभु के पद-पंकज
निस्त न त्योंकि भेंटै ॥२॥

यह पद्य छिन्न भाषा का है। परन्तु उसमें 'प्रानी' शब्द ब्रज-भाषा का और 'निसत' शब्द फारसी का आ गया है। इसलिए च्युतकाळ दोष है।

(३) हीण—जहाँ कोई निश्चित अर्थ न हो सके अथवा जहाँ अर्थ का अनर्थ होने की संभावना हो वहाँ यह दोष होता है। यथा—

"अज अजेय जगदीश"
"जग में राम तुम्हारे जोटै, हुवो न कोई फेर हुवै"।

प्रथम उदाहरण में 'अज' से अभिप्राय शिव से है या ब्रह्मा से या विष्णु से यह बात स्पष्ट नहीं है। क्योंकि ये तीनों ही अजन्मा और जगत् के ईश हैं। दूसरे में 'राम' शब्द से यह पता नहीं लगता कि कवि रामचन्द्र का वर्णन कर रहा है अथवा परशुराम का अथवा बलराम का। अत हीण दोष है।

(४) निरस—जहाँ क्रमभंग वर्णन हो अर्थात् जो बात पहले कहने

की हो उसे बाद में कहा गया हो और जो बाद मे कहने की हो उसका उल्लेख पहले कर दिया गया हो, वहाँ यह दोष होता है। जैसे—

"रद नद तिरत कवध, सार इम चली निनग भुज।"

पहले तलवारें चलती है बाद मे रक्त बहता है और फिर कवध तैरते हैं। परन्तु उक्त पक्ति मे उलटा वर्णन किया गया है। इसमे रक्त की सरिता मे कवध के तैरने का वर्णन पहले और तलवार के चलने का वर्णन बाद मे किया गया है। अत निनग दोष है।

(५) पागळौ—छद शास्त्र के नियमो के विरुद्ध किसी छद के किसी चरण मे कम अधिक मात्राओ का होना पागळौ दोष कहलाता है। जैसे—

सागर पूछै सफराँ, आज रतवर काह।
भारत तणी उमेदिया, खाग भकोळी माँह ॥

यह दोहा है। छद शास्त्र के अनुसार इसके पहले तथा तीसरे चरण मे १३।१३ मात्राएँ और दूसरे तथा चौथे मे ११।११ मात्राएँ होनी चाहिएँ। परन्तु यहाँ ऐसा नही हुआ है। पहले चरण मे बारह ही मात्राएँ हैं। इसलिए पाँगळौ दोष है।

(६) जाति विरोध—यदि किसी गीतादि के भिन्न-भिन्न चरण भिन्न भिन्न जाति के छदो के हो तो वहाँ यह होता है। जैसे—

अवनी मे जिके भलाई आया
करै सदा सुकरत रा काम।
दान सदा वितसारू देवै
नित रसणा लेवै हरिनाम ॥१॥
गिणजै सद ज्याँरी जिंदगाणी
उभै विरद धरियाँ अखत।

प्रारम्भै दौलत पुत्र गाणो
पुणै सुयाणां गीतान ॥२॥
धन वे पुरस बडा पणधारी
मल्क सिरोमण सुजस रटै।
उमगे दान क्रयमैं आचाँ,
राम राम मुख हूंत रटै ॥३॥
देह जिवण वातां ऐ दोई
तिके सवाई तीन्हा।
दीना जड जंगम वसुधारा
सारा जीव सरीन्हा ॥४॥

जिस जाति का गीत हो उसके सभी चरणों में उसी जाति के चरण आने चाहिएं। परन्तु उक्त गीत में प्रथम चरण वेलियो गीत का, दूसरा खुड्द सांणोर का, तीसरा सोहणा गीत का और चौथा जांगड़ गीत का है। अत जाति विरोध दोष है।

(७) अपत्र—जहां किसी बात का सीधा वर्णन न करके कूट अथवा पहेली की तरह घुमा-फिराकर किया गया हो वहां यह दोष होता है। जैसे—

नदियाँ सुत तासु सुता रो नायक, जिणनूं काठो झालै।
जल्सुत मीत तासु सुत जिणनूं, पास कदै नहिं घालै॥

यहां सीधा विष्णु न कहकर नदियों का स्वामी समुद्र और उसकी कन्या का पति कहा गया है, और यमराज न कहकर जल का पुत्र कमल, उसका मित्र सूर्य और उसका पुत्र कहा गया है। इसलिए अपत्र दोष है।

(८) नालछेद—काव्य-परिपाटी के विरुद्ध किसी विषय का मनमाने ढंग से वर्णन करना नालछेद दोष कहलाता है। जैसे—

कच-अहि मुख-ससि लक-स्यघ कुच-कोक नालछिद।

यहाँ पहले चोटी का और बाद मे मुख का वर्णन किया गया है जो नखसिख-वर्णन की परम्परा के विरुद्ध है। इसी तरह कमर और कुच के वर्णन मे भी क्रमभग हुआ है।

(९) पखतूट-जहाँ छद मे कच्ची जोड अर्थात् अनुप्रास रहित पद और पक्की जोड अर्थात् अनुप्रास सहित पद दोनो का समावेश हुआ हो वहाँ पखतूट दोष होता है। जैसे—

अठी राम रा सुभड नै रावण उठी
लक रै जोरवर खेत लडवा।
तीर सेला छूरा झीक तरवारियाँ,
वाजिया विनै ही रभ वरवा॥१॥
उडै पग हात किरका हुवै अग रा
वहै रत जेम सावण वहाळा।
आप आपो वरी जोय नै आडियाँ
लडै रिण भलभलाँ निराताळा॥२॥
तहक नीसाण गिरवाण हरखाण तन
चिता सरसाण रभगाण चाळै।
निडर रिखराण गणपाण वीणा नचै
भाण रथ ताण घमसाण भाळै॥३॥
हणे कुभेणसा जोधहर श्रीहथा,
करै कुण तेण परमाण काया।
जगत सारो अजू साख दे जिकण री,
खोपरी गुळेचा भीम खाया॥४॥

इस गीत के प्रथम दो दोहलो मे कच्ची जोड और आगे पक्की जोड है इसलिए पखतूट दोष है।

(१०) वहरी—जहाँ शब्द योजना इस तरह की हो कि शब्दो का दुतरफा मतलब निकलकर भ्रम पैदा हो जाय वहाँ यह दोष होता है। जैसे—

"रामण हणियौ राम"

इससे 'राम ने रावण को मारा', और 'रावण ने राम को मारा' दोनो अर्थ निकलते है। कुछ और उदाहरण देखिए—

"नराँ न ठीणौ नारियाँ"
"वीर भागौ नही सार वागाँ"
"पराजै हुई नहँ फतै पाई"

(११) अमगळ—यदि छद के किसी चरण के पहले और अतिम अक्षर के मिलने से कोई अमगल-सूचक शब्द वनता हो तो वहाँ पर यह दोष होता है। जैसे—

"महपन मे पय राम रै"

छप्पय की इस तुक के पहले अक्षर 'म' और अतिम अक्षर 'रै' से 'मरै' शब्द वनता है जो अशुभ है। अत अमगळ दोष है।

× × × ×

पिंगल

पिंगल शब्द का वास्तविक अर्थ छदशास्त्र है। परन्तु राजस्थान मे इससे व्रजभाषा अर्थ भी लिया जाता है और इस अर्थ मे इसका प्रयोग काफी लवे अर्से से होता चला आ रहा है। इधर कुछ वर्षो से इसके अर्थ मे थोडा सा परिवर्तन और हो गया है। आजकल लोग 'पिंगल' से 'व्रजभाषा' अर्थ न लेकर 'राजस्थानी मिश्रित व्रजभाषा' अर्थ लेते है और व्रजभाषा को शुद्ध व्रजभाषा कहते हैं।

पिंगल मे राजस्थानी की कुछ विशेषताएँ देखकर बहुत से लोग पिंगल को भी डिंगल कह देते हैं। परन्तु इन दोनो मे बहुत अन्तर है। पिंगल एक मिश्रित भाषा है। इसमे ब्रजभाषा और राजस्थानी दोनो की विशेषताएँ पाई जाती हैं। इसके विपरीत डिंगल मे केवल मारवाडी व्याकरण का अनुकरण किया जाता है।

पिंगल मे कितना अश ब्रजभाषा का और कितना राजस्थानी का हो, इसका कोई नियम नही है। यह कवि की इच्छा और अभ्यास पर निर्भर है। किसी का झुकाव ब्रजभाषा की ओर अधिक रहता है, किसी का राजस्थानी की तरफ विशेष पाया जाता है। उदाहरण-स्वरूप पृथ्वीराज रासो को लीजिए इसमे राजस्थानी की अपेक्षा ब्रजभाषा की विशेषताएँ अधिक देखने मे आती हैं। दूसरा उदाहरण सूरजमल कृत वशभास्कर का है। इसकी भाषा का झुकाव राजस्थानी की ओर अधिक है।

पिंगल साहित्य भी राजस्थान मे लगभग उतना ही रचा गया है जितना कि डिंगल साहित्य। खुमाण रासो, पृथ्वीराज रासो, हमीर रासो, अवतार-चरित्र, राजविलास, पाडवयशेन्दुचन्द्रिका आदि ग्रथ पिंगल के हैं। इनके अतिरिक्त पिंगल की फुटकर रचनाएँ भी प्रचुर परिमाण में मिलती हैं।

ब्रजभाषा

पिंगल के सिवा राजस्थानी कवियो के लिखे शुद्ध ब्रजभाषा के ग्रथ भी राजस्थान मे बहुलता से पाए जाते है। बिहारीलाल, कुलपति मिश्र, सोम नाथ, नागरीदास इत्यादि कवियो के ग्रथ शुद्ध ब्रजभाषा के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

हिन्दी-हिन्दुस्तानी

इधर कुछ समय से हिंदी-हिन्दुस्तानी लिखने की प्रथा भी राजस्थान मे

चल पडी है। राजस्थान के आधुनिक गद्य-लेखक अपने ग्रथ अधिका
हिंदी-हिन्दुस्तानी मे लिखते है यद्यपि अपने घरो मे बोलते वे राजस्थानी

अगले पृष्ठो मे राजस्थानी, पिंगल, ब्रजभाषा आदि उल्लिखित स
भाषाओ के साहित्य का इतिहास प्रस्तुत किया गया है जो निम्नलि
चार कालो मे विभक्त है। यह काल-विभाजन मुख्यत. राजस्थानी भाषा
साहित्य के क्रमिक विकास को देखकर किया गया है--

प्रारभ काल--सं० १०४५--१४६०

पूर्व मध्यकाल--स० १४६०--१७००

उत्तर मध्यकाल--स० १७००--१९००

आधुनिक काल--१९०० अब--तक

दूसरा प्रकरण

प्रारम्भ काल (सं० १०४५-१४६०)

इस काल का साहित्य जितना अधिक राजस्थानी भाषा मे मिलता है उतना भारत की अन्य किसी प्रान्तीय भाषा मे नही मिलता। जिस प्राचीन भाषा मे यह साहित्य रचा गया है उसे पाश्चात्य भाषा-शास्त्रियो ने 'प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी' और गुजराती साहित्यकारो ने 'जूनी गुजराती' नाम दिया है। इसमे आधुनिक राजस्थानी और आधुनिक गुजराती दोनो का पूर्व रूप गुथा हुआ है और प्राकृत-अपभ्रंश की भी बहुत-सी विशेषताएँ पाई जाती हैं।

इस युग के साहित्य-सृजन मे जैन मतावलबियो का हाथ विशेष रहा है। कोई पचास के लगभग जैन साहित्यकारो के ग्रथो का पता है[1]। परन्तु जैन विद्वानो का यह प्रचुर साहित्य जितना भाषाशास्त्र की दृष्टि से महत्वपूर्ण है उतना साहित्य की दृष्टि से नही है, यद्यपि साहित्यिक सौन्दर्य भी इसमे यत्र-तत्र दृष्टिगत होता है।

---

१ कुछ महत्व के नाम ये है धनपाल, (स० १०८१), जिनवल्लभ सूरि (स० ११६७), पल्ह (स० ११७०), वादिदेव सूरि (स० ११८४), वज्रसेन सूरि (स० १२२५), शालिभद्र सूरि (स० १२४१), नेमिचन्द्र भडारी (स० १२५६), आसगु (स० १२५७), धर्म (स० १२६६), शाह रयण और भत्तउ (स० १२७८), विजयसेन सूरि (स० १२८८)।

इस काल की बहुत-सी जैन रचनाओ को तो जैन सम्प्रदायवालो ने नष्ट होने से बचा लिया है, पर किसी सम्प्रदाय अथवा समाज विशेष का सहारा न होने से जैनेतर रचनाएँ अधिकतर नष्ट हो गई हैं, और थोड़ी-बहुत जो बची हैं वे भी अभी तक पूरी तरह प्रकाश मे नही आ पाई है। केवल शार्ङ्गधर, असाइत और श्रीधर की रचनाओ का पता प्रामाणिक रूप से लग सका है।

शार्ङ्गधर

ये तीन भाई थे–शार्ङ्गधर, लक्ष्मीधर और कृष्ण। इनके पिता का नाम दामोदर और पितामह का राघव था। इनका लिखा 'शार्ङ्गधर सहिता' नामक एक वैद्यक ग्रथ प्रसिद्ध है। दूसरा ग्रथ 'शार्ङ्गधर पद्धति' है। यह एक सुभाषित

राम (स० १२८९), सुमति गणि (स० १२९०), जिनेश्वर सूरि (१२७८-१३३१), अभय तिलक (स० १३०७), लक्ष्मीतिलक (स० १३११-१७), सोममूर्ति (स० १२६०-१३३१), जिनपद्म सूरि (स० १३०९-२२) विनयचन्द्र सूरि (स० १३२५-५३), जगडु (स० १३३१), सग्रामसिंह (स० १३३६), पद्म (स० १३५८), जयशेखर सूरि (स० १३६०-६२), प्रज्ञातिलक सूरि (स० १३६३), वस्तिग (स० १३६८), गुणाकर सूरि (स० १३७१), अवदेव सूरि (स० १३७१), फेरू (स० १३७६), धर्मकलश (स०-१३७७), सारमूर्ति (स० १३९०), जिनप्रभ सूरि (स० १३६०-९०), सोलण (१४ वी शताब्दी), राजशेखर सूरि (स० १४०५), जयानदसूरि (स० १४१०), तरुणप्रभ सूरि (स० १४११), विनयप्रभ (स० १४१२), जिनोदय सूरि (स० १४१५), ज्ञानकलश (स० १४१५), पृथ्वीचन्द (स० १४२६), जिनरत्न सूरि (स० १४३०), मेरुनन्दन (स० १४३२), देवसुन्दर सूरि (स० १४४०), साधुहस (स० १४५५)।

ग्रथ है। इसकी पद्य सख्या ४६८९ है। इसमे कुछ पद्य इनके और कुछ अन्य कवियो के हैं। इस ग्रथ का निर्माण-काल स० १४२० है। ये दोनो ग्रथ सस्कृत मे है। परन्तु परम्परा से प्रसिद्ध है कि शार्ङ्गधर ने 'हम्मीर रासो' और 'हमीर काव्य' नामक दो ग्रथ लोकभाषा में भी बनाये थे जिनका पता इस समय नही लगता। परन्तु ग्रथो के कुछ अश इधर-उधर बिखरे मिलते है। कुछ 'प्राकृत पैंगल' मे भी हैं। नमूने के तौर पर एक को यहाँ उद्धृत किया जाता है। इसमे रणथभौर के चौहाण राजा हमीर के सेनापति जज्जल की वीर प्रतिज्ञा का वर्णन है–

> पिंधउ दिढ सणाह वाह उप्पर पक्खर दइ।
> बधु समदि रण धसउ हम्मीर वअण लइ।
> उड्डल णहपह भमउ खग्ग रिउ सीसहि डारउ।
> पक्खर पक्खर ठेल्लि पेल्लि पव्वअ अप्फालउ।
> हम्मीर कज्जु जज्जल भणइ कोहाणल मुहमह जलउ।
> सुलताण सीस करवाल दइ तज्जि कलेवर दिअ चलउ॥

(मजबूत कवच पहनकर, घोडे पर पाखर डालकर, बधुजनो को आश्वासन देकर, शाह हमीर के वचनो को ग्रहणकर मैं रण मे उतरा हूँ। मैं अतरिक्ष और आकाश-मार्ग मे भ्रमण करता हूँ। खड्ग से शत्रुओ के सिरोको काटता हूँ। पाखर से पाखर ठेल-पेलकर पर्वतो को हिलाता हूँ। जज्जल कहता है कि हमीर के कार्य के लिए मैं कोपाग्नि मे जलता हूँ। और सुलतान के सिर पर तलवार देकर इस शरीर को छोड स्वर्ग को चलता हूँ)

असाइत

ये सिद्धपुर मे पैदा हुए थे और जाति के औदिच्य ब्राह्मण थे। इनके

पिता का नाम राजाराम था जो ख्याति प्राप्त कथाकार[२] थे। असाइत-रचित एक छोटी-सी पुस्तक का पता है। जिसका नाम 'हंसावली' है। रचना-काल सं० १४२७ है। इसमे मुख्यत. चौपाई छंद प्रयुक्त हुआ है, पर बीच मे कहीं-कहीं दोहे भी हैं। तीन भिन्न-भिन्न स्थानो पर तीन विरह-गीत भी है। रचना सरल है।

उदाहरण—

किलकिलती वन विचरती, वेली चर वीसास।
सधि सामी साहस कीउ, हूँ एकली निरास॥
भणि असाइत भव अतरि, समरि सामणी कत।
हंसाउलि धरती ढळी, पीउ पीउ मुखि भणंति॥

श्रीधर

ये ईडर के राठौड राजा रणमल के समकालीन थे। इनका रचनाकाल सं० १४५७ के लगभग है[३]। इन्होंने 'रणमल छंद' नामक एक छोटा सा ग्रंथ बनाया जिसमें पाटण के सूबेदार जफरखाँ और रणमल की लड़ाई का वर्णन है। यह युद्ध सं० १४५४ के आस-पास हुआ था और जफरखाँ इसमे हारा था।

रणमल छंद की पद्य सख्या ७० है। भाषा-शैली अलकारमयी और सजीव है। वीर रस की उत्कृष्ट रचना है। नमूना देखिए—

हय खुरतल रेणइ रवि छाहिउ, समुहर भरि ईडरवइ आइउ।
खान खवास खेलि वलि धायु, ईडर अडर दुगतल गाहयु॥
दमदमकार दमाम दमक्कइ, ढमढम ढमढम ढोल ढमक्कइ।

---

२ केशवराम काशीराम शास्त्री, कवि चरित्र, भाग पहला, पृष्ठ ५

३ K. M. Munshi, Gujrat and Its Literature, P 101.

तरवर तरवर वेस पहट्टइ, तरतर तुरक पडइ तलहट्टिइ॥
विसर विरग वगरव पमरइ, रहि रहिमान मतन्तरि समरइ।
गह गुज्जार निमाज कराणी, हयमर भौज फिरइ सुरताणी॥
सत्तिरि सहस सहिय सिल्लारह, दहु दिसि फिरवी करि पुक्कारह।
मुहड सइ सम्भलिवि रउद्दह, घसमस घूस करइ सफरद्दह॥

डा० ग्रियर्सन और उनके मतानुगामी हिंदी के कुछ विद्वानो ने दलपत कृत खुमाण रासो, नाल्ह कृत वीसलदेव रासो इत्यादि को इस काल की रचनाएँ वतलाया है। और इनके आधार पर अपने रचे हिंदी-साहित्य के इतिहासो मे वीरगाथा-काल की स्थापना की है। परन्तु इस विषय मे उन्होंने वडा धोखा खाया है। यथार्थत ये ग्रथ इस काल के नही है। बहुत पीछे से लिखे गये है। हुआ यह है कि इन ग्रथो के चरित्र-नायको के आविर्भाव-समय को इन रचनाओ का निर्माण-काल मान लिया गया है जो एक भारी भूल है। यदि आज कोई ग्रथकार भगवान् वुद्ध का जीवन चरित लिखे और सौ या दो सौ वर्ष वाद कोई उसे, चूँकि उसमे वुद्ध का चरित्र वर्णित है, वुद्ध के समय का लिखा हुआ, ढाई हजार वर्ष का पुराना ग्रथ, वतलाए तो यह वात जितनी हास्यास्पद होगी उतनी ही हास्यजनक वात इन रासो ग्रथो को आज उनके चरित्र-नायको की समकालीन 'रचनाएँ' वतलाना है।

इन ग्रथो को प्राचीन वतलाते समय एक दलील यह दी जाती है कि इनके रचयिताओ ने इनमे सर्वत्र वर्तमानकालिक क्रिया का प्रयोग किया है और इससे उनका अपने चरित्रनायको का समकालीन होना सिद्ध होता है। परन्तु यह भी एक भ्रान्ति है। यह कोई आवश्यक वात नही है कि वर्तमान-कालिक क्रिया का प्रयोग करनेवाले कवि समसामयिक ही हो। यह तो काव्य-रचना की एक शैली मात्र है। काव्य मे वर्णित घटनाओ को सत्य का रूप देने के लिए कवि प्राय ऐसा किया करते हैं। अनेक ऐसे ग्रथ मिलते हैं

जिनके कर्ता समकालीन न थे पर जिन्होने वर्तमान कालिक क्रिया का प्रयोग किया है। राजस्थान मे चारण-भाट आज भी जब प्राचीन काल के वीर पुरुषों पर ग्रंथ तथा फुटकर गीत आदि लिखते है तब वर्तमानकालिक क्रिया का प्रयोग करते है। बारहठ केसरीसिंह कृत 'प्रताप-चरित्र' इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है जो स० १९९२ मे लिखा गया है।

इसके अतिरिक्त ये रासो ग्रंथ जिनको वीर गाथाएँ नाम दिया गया है और जिनके आधार पर वीरगाथा-काल की कल्पना की गई है, राजस्थान के किसी समयविशेष की साहित्यिक प्रवृत्ति को भी सूचित नही करते। केवल चारण, भाट आदि कुछ वर्ग के लोगो की जन्मजात मनोवृत्ति को प्रकट करते है। प्रभुभक्ति का भाव इन जातियो के खून मे है और ये ग्रंथ उस भावना की अभिव्यक्ति है। यदि इनकी रचनाओ के आधार पर कोई निर्णय लिया जाय तब तो वीरगाथा काल राजस्थान मे आज भी ज्यो का त्यो बना है। क्योंकि राजा-महाराजाओ अथवा उनके पूर्वजो की कीर्ति के ग्रंथ आदि लिखने का काम ये लोग आज भी उसी उत्साह से कर रहे है जिस उत्साह से पहले किया करते थे। परन्तु राजस्थान के वातावरण तथा इन जातियो से अपरिचित लोगो का यह बात समझ लेना कुछ कठिन है।

दलपत

ये तपागच्छीय जैन साधु शान्तिविजय के शिष्य थे। इनका असली नाम दलपत था। परन्तु दीक्षा के बाद बदलकर दौलतविजय रख दिया गया था। हिंदी के विद्वानो ने इनका मेवाड के रावळ खुमाण द्वितीय (स० ८७०) का समकालीन होना अनुमानित किया है, जो गलत है। वास्तव मे इनका रचनाकाल स० १७६० और स० १७९० के मध्य मे है।

---

४ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४४ अंक ४, पृष्ठ ३८७-३९८

इनकी रची 'खुमाण रासो' एक प्रसिद्ध ग्रंथ है। उसमें बापा रावळ (सं० ७९१) से लेकर महाराणा राजसिंह (सं० १७०९–३७) तक के मेवाड़ के राजाओं का वृत्तान्त है।

राणौ इक दिन राजसी, सह लै चढयौ सिकार।
गंग त्रिवेणी गोमती, अनड जु बिचै अपार॥
नदी निरखी नागदहो, चितड राजट राण।
नदी बँधाऊँ नाम कर, (तो) हूँ सही हिंदवाण॥

परन्तु खुमाण का वृत्तान्त अधिक विस्तार से होने के कारण इसका नाम 'खुमाण रासो' रखा गया है।

खुमाण रासो आठ खडो मे विभाजित है। इसकी भाषा पिंगल है। रचना इस प्रकार की है–

कवित्त

आव भाव अथाव, भगति कीजै भारत्ति
जाग जाग जगदेव, सत मानिव मकत्ति
प्रसन होय सुरराय, वयण वाचा वर दीजै।
बालक बेलै बाँह, प्रीत भर प्यालो पीजै॥
महाराज राज-राजेश्वरी, दलपति सू कीजै दया।
धन मौज महिर मातंगिनी, माय करी मो सूमया॥
भृकुटि चंद झलहळै गंग खळहळै समुज्जळ।
एकदंत उज्जलो, सूंड ललवलै रुंड गळ॥
पुहप धूप प्रम्मळै, सेस सलवलै जीह लल।
धूम्र नेत्र परजळै, अंग अवसलै अतुल बल॥
यम वलैं विघन दाळिद अलग, चमर ढळै उज्जळ कमळ।
सुंडाळ देव रिध सिध दियण, सुमर दरल गणपति सबळ॥

नल्लसिंह

नल्लसिंह का प्रामाणिक इतिवृत्त नही मिलता। इनके नाम से प्रचलित विजयपाल रासो से सूचित होता है कि ये सिरोहिया शाखा के भाट और विजयगढ (करौली राज्य) के यदुवशी नरेश विजयपाल के आश्रित थे जिन्होने इनको हिंडोन नामक एक नगर, सौ गाँव, हाथी, घोडे रत्नादि इनाम मे दिए थे–

भये भट्ट प्रथु यज्ञ तै, है सिरोहिया अल्ल।
वृत्तेश्वर जदुवस कें, नल्ल पल्ल दल सल्ल॥
वीसा सौ गजराज, वाजि सोलह सौ माते।
दिये सात सौ ग्राम, सहर हिंडोन सुदाते॥
सुतर दिये द्वै सहस रकम गिलमै भरि अम्बर।
कचन रत्न जडाव वहुत दीनेजु अडम्बर॥
कुल पूजित राव सिरोहिया, यादवपति निज सम कियव।
नृप विजयपाल जू विजयगढ, साहु ये जू सम्मपियव॥

विजयपाल रासो का थोडा-सा अश उपलब्ध हुआ है जिसमे महाराजा विजय पाल की दिग्विजय और पग की लडाई का वर्णन है। इस युद्ध का समय नल्लसिंह ने स० १०९३ वतलाया है। ग्यारहवी शताब्दी मे करौली पर विजयपाल नाम के एक प्रतापी राजा हुए है जिनका करौली और उसके आसपास के अलवर, भरतपुर, धौलपुर आदि राज्यो के कुछ भागो पर अधिकार था[4]। परन्तु गजनी, ईरान, कावुल, दिल्ली, ढूढाड, अजमेर आदि पर विजयपाल का एक-छत्र राज्य होने की जो वात नल्लसिंह ने अपने इस ग्रथ मे लिखी है वह इतिहास-विरुद्ध और अतिरजना है–

---

4 The Ruling Princes, Chiefs, and Heading personages in Rajputana. (6th Edition) P 115

वैठड पाट विजयपाल वीर, अल्लीलखाँन जीत्यौ गहीर।
इक लक्ष मीर दहवट्ट कीन, रो राग रिद्धि सव व्योमि लीन॥
साहिव्वदीन गजनी हुँकारि, तत्तारखाँन को मान मारि।
खुरासान खग्गनि रत्ति जीति, रागी सुटेक जद्दव सुरीति॥
तेगन अमोरि तूरान तोरि, ईरान पेसकस लीन मोरि॥
वरछीनि मारि वगस उजारि, खन्धार कोट सव दीन पारि॥
काविली किलगी रोह जीति, राक्खिय नरेन्द्र हिन्दुवान रीति।
वलकी वुखार सव जेर कीन, खुरसान व्योमि हवसान लीन॥
आरवी रूम लटियाल कूटि, फिरगाँन देस दुइ वार लूटि।
लीनीस पेसकस अवर देश, राखियौ धर्म जद्दव नरेश॥
पाचाल देश वयराट मारि, अजमेर सोम कौ गर्व गारि।
मडोवर को परिहार डंडि, जोइया पारम खग्गनि खंडि॥
तोंवर अनग दिल्ली सुमानि, थापियौ थान सगपन्न जानि।
ढूढाहर मइँ हय खुरनि गाहि, पज्जूनि करत निज सेन चाहि॥
मेवात मरुस्थल मद्दि लीन, उतराव पंथ सव जेर कीन।
इहि तेज तपि विजयपाल राज, जाहर्रौ तेग जादव समाज॥

इस वर्णन से स्पष्ट है कि विजयपाल रासौ विजयपाल के समय की रचना नही है। मिश्रवधुओ ने इसका रचनाकाल स० १३५५ के आस पास माना है। परन्तु ग्रथ उतना भी पुराना नही है। इसकी भाषा-शैली पर 'पृथ्वीराज रासौ' (१८ वी शताब्दी) और 'वंशभास्कर' (स० १८९७) दोनो का प्रभाव साफ झलकता है। अत सं० १९०० के आसपास यह रचा गया है, पर प्राचीन वतलाने के लिए इसके रचयिता ने नल्लसिंह का कल्पित परिचय इसमे जोड दिया है जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है।

'विजयपाल-रासौ पिंगल भाषा का ग्रथ है। सव मिलाकर उसमे ४२ छद हैं—८ छप्पय, १८ मोतीदाम, ८ पद्धरि, ६ दोहे और २ चौपाइयाँ। इसकी

वर्णन-शैली सजीव और चित्ताकर्षक है। वीर रस का इसमे अच्छा परिपाक दृष्टिगोचर होता है।

विजयपाल रासो का थोडा-सा अश और यहाँ दिया जाता है—

छंद मोतीदाम

जुरे जुध यादव पग मरद्द, गही कर तेग चढ्यौ रणमद्द।
हकारिय जुद्ध दुहूँ दल शूर, मनौ गिरि शीस जलथरि पूर॥
हलौं हिल हांक वजी दल मद्धि, भई दिन ऊगत कूक प्रसिद्धि।
परस्पर तोप वहै विकराल, गर्जे सुर भुम्मि सरग्ग पताल॥
लगै वर यग्निय छत्तिय शुद्ध, गिरैं भुवभार अपार विरुद्ध।
वहे भुववान ढँस्यौ असमान, खयंजर खेचर पाव न जान॥
वहै कर सायक थायक जग, लखै विष-आशिय पासिय अग।
वहै भिडपालक पाल लगंत, उडै शिर ढीव धरनि पतग॥
वहै कर सकुल शीस निसार, परै विकराल बँवार सुमार।
वहत गुरज्ज गहन्त मरद्द, भये शिर चून विखू न गरद्द॥
मुदग्गर मार वहै विकराल, लटकत भुम्मि फटन्त कपाल।
वहै कर कत्तिय मत्तिय मार, गिरै धर मध्य प्रसिद्धि जुझार॥
लगै उर सागिसु कग्गल पार, लटक्कत शूर चटक्क कुठार।
लगै किरवान मुकन्द कुत्तार कटै वर हड्ड जनेनु उतार॥
लगै खपुवा जमडाड सुमार, किधौ खिरकी दिय छुट्टत द्वार।
वहै कर खजर पजर भीर, मनौ मत वात करै मुड चीर॥
वहै कर रञ्जक गञ्जक हाल, निकस्सत वत्थि फोरि सुव्याल।
कटक्क कुटन्त गिरत कपाल, खटक्कत खाग चले रत लाल॥
गटक्कत गोठिय गिद्धनि गाल, घुटक्कत जुग्गिनि घुण्ड कपाल।
नदन्निमि नाचय सावत नाच, चटक्कत चूरि कि रच्चत आच॥

नरपति

नरपति नाल्ह कृत वीसलदेव रासौ की हिन्दी ससार में बड़ी चर्चा है। परन्तु इनके व्यक्तिगत जीवन के विषय मे हमारी जानकारी प्राय नहीं के बराबर है। कोई इन्हें राजा और कोई भाट बतलाते हैं। परन्तु ये सब अनुमान ही अनुमान हैं। कोई सुदृढ ऐतिहासिक आधार अभी तक उपलब्ध नही हुआ है। लेकिन वीसलदेव रासौ मे इन्होंने अपने लिए दो-एक स्थानो पर 'व्यास' शब्द का प्रयोग किया है जिससे इनकी जाति पर प्रकाश पडता है—

"व्यास वचन इम ऊचरई, दिन दिन प्रतिपै वीसलराई।"
प्रथम खड, छद ६९

"नरपति व्यास कहइ करि जोडि, तौ तूठा तै तिसी कोडि।"
प्रथम खड, छद ८८

"चउरास्या सहू वर्णव्या, अम्रत रसायण नरपति व्यास।"
तृतीय खड, छद १०३

व्यास जाति राजस्थान मे ब्राह्मण जाति के अन्तर्गत मानी जाती है और इसी का दूसरा नाम सेवग या भोजग जाति है। अत नरपति का ब्राह्मण होना स्पष्ट है। इनके नाम के साथ 'नाल्ह' जो लिखा मिलता है वह यदि हस्तलिखित प्रतियो मे ठीक तरह से पढा गया हो तो इनका अवटक मालूम देता है।

वीसलदेव रासौ की पन्द्रह के लगभग हस्तलिखित प्रतियो का पता है। इनमे सबसे प्राचीन प्रति स० १६६९ की लिखी हुई है। भिन्न-भिन्न प्रतियो मे इसका रचनाकाल भिन्न-भिन्न लिखा मिलता है—

"सवत् सहस तिहुतरइ जाँणि"।

"सवत् सहस सतिहुतरइ जाँणि, नाल्ह कवीसर सरसीय वाणि"।

"सवत वार वरोतरा मझारि जेठ वदि नवमी वुधवार"।

"सवत तेर सतोतरइ जाणि"।

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित सस्करण मे इसका निर्माण-काल स० १२७२ दिया हुआ है–

"वारह सै वहोतराहाँ मँझारि, जेठ वदी नवमी वुधवारि।

प्रथम सर्ग, छद ९

परन्तु ये सभी सवंत् प्रक्षिप्त है। वास्तव मे बीसलदेव रासौ इतना पुराना नही है।

'वारहसै वहोतराहाँ' का अर्थ कुछ लोगो ने १२१२ किया है और इस अशुद्ध अर्थ के आधार पर उन्होने नरपति को वीसलदेव रासौ के चरित्र नायक अजमेर के चौहाण राजा वीसलदेव अर्थात् विग्रहराज चतुर्थ का समकालीन माना है जिनका शासनकाल स० १२१०-१२२१ है। परन्तु नरपति को विग्रहराज चतुर्थ का समसामयिक नही माना जा सकता। कारण, वीसलदेव रासौ मे इतिहास सवधी अनेक ऐसी भूलें विद्यमान है जिनका समकालीन कवि की रचना मे होना असभव है। यथा–

(१) वीसलदेव रासौ मे वीसलदेव का धार के परमार राजा भोज की लडकी राजमती से विवाह होना लिखा है। परन्तु वीसलदेव और भोज का समकालीन होना इतिहास से सिद्ध नही होता। इतिहासकारो ने भोज का राज्यकाल स० १०६७-१११२ निश्चित किया है। अत भोज और वीसल-देव के समय मे लगभग ११० वर्ष का अन्तर है।

(२) वीसलदेव रासौ मे कालिदास और माघ को वीसलदेव का समकालीन कहा गया है जो वीसलदेव से वहुत पहले हुए हैं।

(३) वीसलदेव रासौ मे लिखा है कि भोज ने वीसलदेव को आलीसर, कुडाल, मडोवर, गुजरात, सोरठ, साँभर, टोक, तोडा, चित्तौड आदि प्रदेश

दहेज मे दिए थे। परन्तु इन प्रदेशो का भोज के अधीन होना इतिहास मे प्रकट नही होता।

(४) वीसलदेव रासो मे जैसलमेर और बूदी के नाम आये हैं। परन्तु तब तक ये नगर बसे भी न थे।

(५) वीसलदेव रासो मे वीसलदेव के उडीसा जीतने की बात कही गई है जिसका समर्थन वीसलदेव के शिलालेखो तथा अन्य ऐतिहासिक सूत्रो से नही होता। अजमेर मे वीसलदेव नाम के चार राजा हुए है। इनमे से किसी ने उडीसा नही जीता।

(६) वीसलदेव रासो मे वीसलदेव का अपने भतीजे को अपना उत्तराधिकारी नियत करना लिखा है जो गलत है। वीसलदेव के बाद उनका बेटा अमरगागेय उनकी गद्दी पर बैठा था।

इसके अतिरिक्त वीसलदेव रासो की भाषा भी तेरहवी शताब्दी की नही प्रत्युत सोलहवी शताब्दी की है। भाषा सबधी गडबडी का कारण कुछ विद्वानो ने यह बतलाया है कि वीसलदेव रासो एक गीतकाव्य है और सैकडो वर्षो तक लोगो की जबान पर रहने से इसकी भाषा मे परिवर्तन होना स्वाभाविक है। परन्तु यह उनकी कपोल-कल्पना है। वीसलदेव रासो गीतकाव्य नही है। राजस्थान मे यह कभी गाया नही गया, न आज गाया जाता है, और न इसमे गीतकाव्य के कोई लक्षण मिलते हैं। गीतकाव्य की भाषा मे जो चलतापन, छदो मे जो गति, शब्दो मे जो मर्मस्पर्शिता और विषय मे जो लोकप्रियता होनी चाहिये वह इसमें नही है।

डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा ने वीसलदेव रासो का निर्माण-काल स० १२७२ ठीक माना है[६]। परन्तु उनका कहना है कि इसका चरित्र नायक वीसलदेव उपनाम विग्रहराज तृतीय है, न कि विग्रहराज चतुर्थ।

---

६ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४५, अक २, पृ० १६३-१७१

विग्रहराज तृतीय का समय उन्होने स० ११५० अनुमानित किया है। अत ओझाजी के कथनानुसार वीसलदेव रासौ का रचनाकाल उसके चरित्र नायक के समय से १२२ वर्ष बाद का है। अपने मत की पुष्टि मे ओझा जी ने कोई ठोस ऐतिहासिक प्रमाण नही दिया। फिर भी उनकी बात को मान लेने से भी वीसलदेव रासौ की इतिहास सबधी उल्लिखित त्रुटियो का निराकरण नही होता। केवल भोज का समय थोडा-सा वीसलदेव के समय के पास आ जाता है।

सोलहवी शताब्दी मे नरपति नाम का एक कवि गुजरात मे हुआ है जिसके लिखे चार ग्रथो का पता है नदवत्तीसी (सं० १५४५), विक्रम पच दड (स० १५६०), स्नेह परिक्रम और नि स्नेह परिक्रम[७]। अनुमान होता है कि इन ग्रथो का कर्ता नरपति और वीलसदेव रासौ का रचयिता दोनो एक है। क्योकि इनकी भाषा-शैली और शब्दावली बहुत मिलती है—

१. (क) ब्रह्मा बेटी वीनवऊँ, सारद करूं पसाइ।
हस-वाहन हरषि थिकी, जिह्वा वसिजै माइ॥६॥
वीणा पुस्तक धारणी, तू तारणी त्रिभूवन।
कविजन वाणी उच्चरइ, जु तु हुइ प्रसन्न॥७॥
कास्मीर पुर वासिनी, विद्या तणु निधान।
सेवक कर जोडी रहइ, ओपइ विद्यादान॥८॥

—पचदड

(ख) कसमीराँ पाटणह मँझारि, सारदा तुठी ब्रह्म कुमारि।
नाल्ह रसायण नर भणइ, हियडइ हरषि गायण कइ भाइ॥
खेलाँ मेल्हया मडिली, बइस सभा माँहि मोहेउ छइ राइ॥६॥

---

७ मोहनलाल दलीचन्द देशाई, जैनगूर्जर कविओ, भाग तीसरा खड २, पृ० २१५१

सरसति सामणी तू जग जीण, हस चढि लटकावै वीण।
उरि कमलाँ भमराँ भमइ, कासमीराँ मुग्ग मडणी माइ।
तो तूठा वर प्रापिजइ, पाप छयासी जोयण जाइ॥७॥

—वीसलदेव रासौ

२ (क) पच शवद वाजइ वाजिन्र, राजलोक माँहि आणिउँ पंचदड तन्न।

—पचदड

(ख) धूरि दसरावै चाल्यौ राव, वाजिन्न वाजइ नीसाँणे घाव।

—वीसलदेव रासौ

३ (क) मादळ भूगळ वाजइ वार, नारी वृन्द मिलिऊ अपार।

—पचदड

(ख) चौरी चाढीयो भोज की, वाजइ मादल भूगल भेर।

—वीसलदेव रासौ

४ (क) मूसा वाहंन वीनउ, जेहनि मोदक आहार।
एकदत दालिद्र हरइ, समरयाँ नूँ दातार॥

—पचदड

(ख) कर जोडै नरपति कहइ, मूसा वाहन तिलक सदूर।
एक दतउ मुख झलमलइ, जाणिक रोहणीउ तप्पई सूर॥

—वी-रा-

५ (क) नगर माँहि गुडी-झलहलइ, सहु लोक जोवानी मिलइ

—प-द-

(ख) घर घर गूडी ऊछळी, हुवउ वधावउ नगरी धार।

—वी० रा०

६ (क) खीरोदक टसरू साडला, नित पहिरवा अगि दीसइ भला।
—प० द०

(ख) दीया खरोदक पइहरणइ, माणिक मोती चौक पुरार।
—वी० रा०

७ (क) राजा पुंहुत नयर मझारि, कन्या मेली गढह दुआरी।
—प० द०

(ख) पाड्य प्रधान चल्यो तिणी ठाई, गढ अजमेर पहूंता जाय।
—वी० रा०

इस अनुमान से वीसलदेव रासौ का रचना-काल भी स० १५४५-६० के आसपास निकल आता है जिसकी पुष्टि उसकी भाषा से भी होती है जो हरगिज सोलहवी शताब्दी से पूर्व की नही है।

वीसलदेव रासौ मे वीसलदेव के विवाह, उनकी उडीसा-यात्रा, उनकी राणी के विरह आदि का वर्णन है। इसमे चार खड हैं। सब मिलाकर २१६ छन्दो मे ग्रथ समाप्त हुआ है। इसकी भाषा गुजराती-राजस्थानी का मिश्रण है। मालूम होता है कि मूल ग्रथ गुजराती मे था, जिस पर बाद मे किसी ने राजस्थानी का रग चढाया है। ग्रन्थ मे छदोभग बहुत हैं। अथ से लेकर इति तक एक पद्य भी इसमे ऐसा नही है जो छन्दशास्त्र की दृष्टि से ठीक हो। हिन्दी के विद्वानो ने इसे वीर रस की रचना बतलाकर इसकी गणना हिन्दी साहित्य के वीरगाथा काल के अन्तर्गत की है। परन्तु इसमे एक पक्ति कही वीर रस की नही है। सारे ग्रन्थ मे राजमती के विरह का वर्णन कुछ ऐसा है जिसमे काव्यत्व की हलकी सी झलक दिखाई देती है। शेष सारा ग्रन्थ साहित्यिक दृष्टि से बहुत निम्न कोटि का है।

नरपति की कविता का नमूना देखिए जो वीसलदेव रासौ से लिया गया है—

श्रावण वरसइ छइ छाँडीय धार, प्रीय विण खेल कवण आधार।
सखीय ते खेलइ काजली, चौडीय कमेडी मडिय आस।
पपीहो पीऊ ! पीऊ ! करइ, सखी असल सलावइ मौ श्रावण मास॥
भादवउ वरसइ छइ मगैहर गभीर, जल, थल, महीयल महु भरचा नीर।
जाणे सरवर ऊलटइ एक अधारी वीचखी वाय॥
सूनी सेज विदेम पीव, दोइ दुख 'नाल्ह' क्यु सइहणा जाइ।
आसोजा घन मडीय आस माँड्या मदिर घरि कविलास॥
माड्या चौरा चउखडी, माड्या साभरि का रणिवास।
एक वलावै बाहुड्या, नाह उतरी गयौ गगा के पार॥

चद

चन्द वरदाई की जीवनी इतिहास की एक उलझी हुई पहेली है। अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासौ मे जो बातें इनके विषय मे लिखी मिलती हैं, वे सब सदिग्ध है। इनकी बडी ख्याति को देखकर राजस्थान मे आज कई ऐसे व्यक्ति उठ खडे हुए है जो अपने को चद का वशज बतलाते हैं। इनमें से कुछ ने नकली वशावलियाँ भी बना ली हैं जिन पर विश्वास लाना भारी भूल है।

परम्परा से प्रसिद्ध है कि चन्द जाति के राव थे। रासौ मे इनका जन्म लाहौर मे होना लिखा है—

वलिभद्र सु नागौर, चद उपज्जि लाहौरह।

आदि सम्यो[८], छद १०३

---

८ अध्याय अथवा सर्ग के लिए पृथ्वीराज रासौ की प्राचीन लिखित कुछ प्रतियो में 'प्रस्ताव' और कुछ मे 'सम्यो' शब्द का प्रयोग देखने मे आता है। 'सम्यो' शब्द एक वचन है। इसका बहु वचन 'सम्यौ' होता है।

कुछ लोगो ने चन्द के पिता का नाम वेण और गुरु का गुरुप्रसाद बतलाया है। परन्तु यह उनकी मनगढत है। रासो मे कही भी चन्द ने अपने पिता का नाम नही लिखा है। न कही अन्यत्र इस बात का उल्लेख है। वेण नाम का कोई कवि राव जाति मे कभी हुआ होगा पर वह चन्द का पिता ही था, ऐसा मानने का कोई आधार नही है। और इनके गुरु का नाम गुरुप्रसाद बतलाने की भूल रासो की निम्नलिखित पक्ति को पूरी तरह न समझ सकने के कारण हुई है—

तिहि सबद ब्रह्म रचना करी, गुरुप्रसाद सरसै प्रसन।

आदि सम्यो, छ० १३

'गुरु प्रसाद' शब्द यहा व्यक्ति वाचक सज्ञा नही है। इसका अर्थ यहाँ 'गुरु की कृपा' से है।

कहा जाता है कि चद के कमला उपनाम मेवा और गौरी उपनाम राजौरा दो स्त्रियाँ, और राजबाई नाम की एक कन्या थी। परन्तु यह कथन भी प्रमाण-शून्य है। रासो से इसकी पुष्टि नही होती। रासो मे चन्द ने केवल अपने लडको के नाम लिखे हैं और उनकी सख्या दस बतलाई है।

राजस्थान मे यह फारसी शब्द 'जमाना' के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। जैसे 'काल रो सम्यो', 'खोटा सम्याँ आया' इत्यादि। परन्तु हिन्दी के कुछ विद्वान 'सम्यो' (एक वचन) के स्थान पर 'समय' और 'सम्याँ' (बहु वचन) के स्थान पर 'समयो' का प्रयोग करते है जो गलती है। वास्तव मे 'सम्यो' का 'समय' से कोई सबध नही है। ये दो भिन्न शब्द हैं। इनके अर्थ मे उतना ही अन्तर है जितना क्रमश. इनके पर्यायवाची अग्रेजी शब्द (Period) और (Time) मे है।

रासो मे लिखा है कि पृथ्वीराज और चन्द दोनो एक ही दिन पैदा हुए थे। और एक ही दिन मरे थे।—

जीह जोति कवि चद, रूप सजोगि भोगि भ्रम।
इक्क दीह उपन्न, इक्क दीहे समाय क्रम ॥
आदि सम्यो, छद ९२

ज्यौ भयौ जन्म कवि चद कौ, भयौ जनम सामत सब।
इक थान मरन जनमह सु इक, चलहि किति समि लगि रव ॥
आदि सम्यो, छद ७६०

इतिहासकारो ने पृथ्वीराज का जन्मकाल स० १२२० के लगभग और मृत्युकाल स० १२४९ निश्चित किया है। अत पृथ्वीराज रासौ के अनुसार यही समय चद का भी ठहरता है।

भारतीय विद्याभवन, बबई, के आचार्य जिनविजय मुनि द्वारा सपादित 'पुरातन प्रबध सग्रह' (सिंघी जैन ग्रथमाला पुष्प२) मे पृथ्वीराज और जयचन्द विषयक प्रबधो मे चन्द रचित चार छप्पय उद्धृत हैं। जिस प्राचीन प्रति मे ये छप्पय मिले हैं वह स० १५२८ की लिखी हुई है। इससे मालूम होता है कि चन्द नाम का कोई कवि स० १५२८ से पहले हुआ अवश्य है। परतु वह चन्द कब हुआ, कहाँ हुआ, उसने क्या लिखा, कितना लिखा इत्यादि बातो के जानने का कोई साधन प्राप्त नही है। केवल एक बात दृढतापूर्वक कही जा सकती है। वह यह कि प्राचीनकालीन वह चन्द और अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासौ का कर्त्ता दोनो एक नही हैं। क्योकि दोनो की भाषा मे बहुत अतर है। 'पुरातन प्रबध सग्रह' मे उद्धृत छप्पयो की भाषा वस्तुत बहुत पुरानी है, परतु आजकल जो ग्रन्थ पृथ्वीराज रासौ के नाम से चल रहा है उसकी भाषा उतनी प्राचीन नही है। कुछ सुनी-सुनाई बातो के आधार पर १८ वी शताब्दी मे किसी दूसरे व्यक्ति ने चद के नाम से उसे

बनाया है। ऐसी दशा मे पृथ्वीराज रासौ के आधार पर चद का जो इति-वृत्त ऊपर दिया गया है। वह ठीक हो भी सकता है, नही भी हो सकता है। यदि पृथ्वीराज रासौ के इस अज्ञातनामा कवि को प्राचीन-कालीन असली चन्द की जीवन सबधी बातो का पता रहा हो और उन्हें अपने इस रासौ मे स्थान दिया हो तो सभव है कि इनमे से कुछ बातें ठीक हो। परन्तु इस विषय मे निश्चत रूप से कुछ कहना कठिन है। अब रही इस दूसरे व्यक्ति अर्थात् अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासौ के रचयिता चद के जीवनवृत्त की बात। और सच पूछिये तो इसी से हमे मतलब भी है। परन्तु इसका जीवन-रहस्य अतीत के अतल अधकार मे छिपा हुआ है और शायद आकल्पान्त रहेगा। पृथ्वीराज रासौ की भाषा वर्णनशैली, विषय-सामग्री के आधार पर इस समय तो अधिक से अधिक यही अनुमान लगाया जा सकता है कि यह व्यक्ति राजस्थान-निवासी होना चाहिए। राजस्थान के बाहर का वह नही हो सकता।

पृथ्वीराज रासौ कब रचा गया, यह एक समस्या है। इसका प्रथम प्रामाणिक उल्लेख राजप्रशस्ति[१] महाकाव्य मे मिलता है। इसके तीसरे सर्ग मे रावळ समरसिंह के वर्णन मे झोटिंग भट्ट लिखता है कि समरसिंह ने

---

१ मेवाड की वर्तमान राजधानी उदयपुर से ४० मील उत्तर-पूर्व मे महाराणा राजसिंह प्रथम (स० १७०९-३७) का बनावाया हुआ राज-समँद नाम का एक बहुत बडा तालाब है। यह तालाब चार मील लबा और पौने दो मील चौडा है। इस पर १०५४७५८४ रुपया खर्च हुआ था। इसके नौचौकी नामक बाध पर ताको मे पचीस बडी-बडी शिलाओ पर खुदा हुआ यह 'राजप्रशस्ति' महाकाव्य भारत भर मे सब से बडा है। यह काव्य सस्कृत मे है। इसमे २५ सर्ग हैं और १०१७ श्लोक। इसमे मेवाड का इतिहास वर्णित है। यह काव्य कोरा कल्पना-प्रसूत नही है। इतिहास

पृथ्वीराज की वहिन पृथावाई से विवाह किया था और शहावुद्दीन के साथ की लडाई मे वह मारा गया जिसका वृत्तान्त भाषा के रासो ग्रन्थ मे लिखा है।[10] इसमे पूर्व के लिखे पृथ्वीराज विजय महाकाव्य (स० १२४९), प्रवन्ध चिंतामणि (स० १३६१), हमीर महाकाव्य (स० १४६०), सुर्जन चरित्र (स० १६३५) इत्यादि संस्कृत-ग्रन्थो मे, जिनमे पृथ्वीराज अथवा चौहाण वशी अन्य राजाओ का वर्णन आया है, रासो का नाम ही नही मिलता। राज-प्रशस्ति की तरह रासो के लेख का हवाला देना तो वहुत दूर की वात है। न अठारहवी शताब्दी से पूर्व के किसी भाषा ग्रन्थ मे इसका नामोल्लेख है। इससे मालूम पडता है कि अठारहवी शताब्दी मे यह वनाया गया है और सभवत इसकी और राजप्रशस्ति की रचना लगभग साथ-साथ ही हुई है।

'राजप्रशस्ति' के लिए इतिहास सामग्री एकत्र करवाने मे महाराणा राजसिंह ने वहुत व्यय किया था और वहुत दूर-दूर तक खोज करवाई थी।

और काव्य दोनो का इसमे सुन्दर समन्वय हुआ है। इसका रचयिता तैलग जातीय कठोडी कुलोत्पन्न रणछोड नाम का कोई पडित था।

१० तत समरसिंहाख्य पृथ्वीराजस्य भूपतेः।
पृथाख्याया भगिन्यास्तु पतिरत्यतिहार्दत ॥२४॥
गोरी साहिवदीनेन गज्जनीशेन सगरम्।
कुर्वतोऽखर्वगर्वस्य महासामतशोभिन ॥२५॥
दिल्लीश्वरस्य चोहान-नाथस्यास्य सहायकृत्।
स द्वादश सहस्रै स्ववीराणा सहितो रणे ॥२६॥
वध्वा गोरिपति दैवात् स्वर्यात सूर्यविम्वभित्।
भाषा रासा पुस्तकेऽस्य युद्धस्योक्तोस्ति विस्तर ॥२७॥
—तृतीय सर्ग

फलस्वरूप प्राचीन ग्रन्थो आदि के रूप ने इतिहास-विपयक प्रचुर सामग्री प्रकाश मे आई और 'राज-रत्नाकर' 'राजप्रकाश' आदि सस्कृत-हिन्दी के इतिहास सबधी कई ग्रन्थ उसी समय नये भी लिखे गये। इसी समय चन्द का कोई वशज अथवा उसकी जाति का कोई दूसरा व्यक्ति रासौ लिखकर सामने लाया प्रतीत होता है। यदि यह व्यक्ति रासो को अपने नाम से प्रचारित करता तो, लोग उसे प्राचीन इतिहास के लिए अनुपयोगी समझते और उसमे वर्णित बातें उसे सप्रमाण सिद्ध भी करनी पडती। अत चद-रचित बतलाकर उसने इस सारे झगडे का अत कर दिया। चन्द का नाम लोक प्रचलित था ही। लोगो को उसकी बात पर विश्वास भी हो गया।

'राज-प्रशस्ति' का लिखना सवत् १७१८ मे प्रारभ हुआ था और समाप्ति उसकी सवत् १७३२ मे हुई थी। अतएव इसी समय के समानान्तर का समय 'पृथ्वीराज रासौ' की रचना का भी समय है। परन्तु यदि कोई यह कल्पना करे कि 'राजप्रशस्ति' का लिखना आरभ करने से पूर्व उसके लिए सामग्री जुटाने का काम शुरू हो गया होगा, और सभव है कि उसी समय रासौ का भी श्रीगणेश हो गया हो तो इस समय को खीच-खाँचकर सवत् १७०० तक भी ले जाया जा सकता है।[११] परन्तु इससे आगे ले जाना इतिहास और अनुमान दोनो का गला घोटना है।

उपरोक्त कथन की पुष्टि रासौ की प्राचीन लिखित प्रतियो से भी होती है। सपूर्ण रासो की जितनी भी हस्तलिखित प्रतियाँ अभी तक प्राप्त हुई हैं वे उक्त समय के बाद की हैं। इससे पहले की जो भी प्रतियाँ बतलाई जाती है वे सब जाली है। सबसे प्राचीन प्रति स० १७६० की है। यह मेवाड

---

११ देखिए, माधुरी, फरवरी, १९४७ के अक मे प्रकाशित 'पृथ्वी-राज रासौ का निर्माण काल' शीर्षक हमारा लेख, पृ० ७-१०।

के महाराणा अमरसिंह द्वितीय के शासनकाल (सं० १७५५-६७) में लिपिबद्ध हुई थी। इनका अंतिम पुष्पिका-लेख इस प्रकार है—

"संवत् १७६० वर्षे शाके १६२५ प्रवर्त्तमाने उत्तरायन गते श्री सूर्ये शिशिर ऋतौ मन्मागल्यप्रद माघ मासे कृष्ण पक्ष ६ तिथौ सोमवासरे। श्री उदयपुर मध्ये हिन्दू पति पातिसाहि महाराजाधिराज महाराणा श्री अमरसिंह जी विजय राज्ये। मेदपाट ज्ञातीय भट्ट गोवर्धन सुतेन रूपजी ना लिखित चन्दवरदाई कृत पुस्तक ॥"

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित रासो का मूलाधार यही प्रति है और इसी की प्रतिलिपि को उक्त संस्करण के संपादकों ने सं० १६४१ की लिखी हुई बतलाया है जिसकी वजह से विद्वानों में बड़ा भ्रम फैला है तथा डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा प्रभृति इतिहासकार रासो का रचनाकाल संवत् १६०० के आसपास निश्चित करने को बाधित हुए हैं। अतः इसके विषय में दो-एक बातें और जान लेना आवश्यक है।

उक्त पुष्पिका के बाद इसके अंत में नीचे लिखे दो छप्पय और दिए हुए हैं—

(१)

मिली पंकज गन उदधि, करद कागद कातरनी।
कोटि कवी काजलह, कमल कटिकर्ते करनी ॥
इहिं तिथि संख्या गुनित, कहै कक्का कवियानै।
इह श्रम लेखनहार, भेद भेदै सोइ जानै ॥
इन कष्ट ग्रन्थ पूरन करय, जन वड या दुख ना लहय।
पालियै जतन पुस्तक पवित्र, लिखि लेखिक विनती करय ॥

(२)

गुन मुनियन रस पोइ, चन्द कवियन दिद्धिय।
छन्द गुनी तें तुट्टि, मन्द कवि भिन्न-भिन्न किद्धिय ॥

देस देस विस्तरिय, मेल गुन पार न पावय।
उद्दिम करि मेल्हवत, आस बिन आलय आवय ॥
चित्रकोट रान अमरेस नृप, हित श्री मुख आयस दयौ।
गुन बीन बीन करुना उदधि, लखि रासौ उद्दिम कियौ ॥

पहले छप्पय के प्रथम दो चरणों का अर्थ स्पष्ट नहीं है।[12] फिर भी इतना तो समझ पड़ता है कि इसमें इस प्रति का लेखन-काल दिया गया है, जो वहीं होना चाहिए जिसका पुष्पिका में उल्लेख है। परन्तु इस बात की ओर ध्यान न देकर इसका गलत अर्थ इस प्रकार किया गया है, "यदि पकज से पकज नाल (१) गन को गुन (६) का अशुद्ध रूप, उदधि से समुद्र (४) और करद से कटार या चाकू (१) जिसका फल एक होता है, मान लें तो सवत् १६४१ बनता है। शेष शब्दो मे मास, तिथि आदि होगी, पर यह स्पष्ट नहीं होता। यदि इस हिसाब से रासो का सकलन सवत् १६४१ मान लिया जाय, तो कुछ अनुचित नहीं होगा। इससे कई बातो का सामजस्य हो जायगा।[13]"

दूसरे छप्पय के 'चित्रकोट रान अमरेस नृप' शब्दो से अभिप्राय चित्तौड के राणा अमरसिंह प्रथम (स० १६५३-७६) लिया गया है[14] और इन

---

१२ प्राचीन ग्रथो मे 'उदधि' और 'करद' (खड्ग) को क्रमश ७ और १ की सख्या का सूचक माना गया है। अत "अकाना वामतो गति." नियम के अनुसार "मिली पकज गन उदधि करद" मे "१७" की सख्या तो ठीक निकल आती है। पर आगे अर्थ साफ नही है।

१३ देखिए स० १९९० की ओरिएण्टल कान्फ्रेन्स के हिन्दी-विभाग के सभापति की हैसियत से दिया गया डा० श्यामसुन्दरदास का भाषण।

१४ देखिए, नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित पृथ्वीराज रासो की उपसहारिणी टिप्पणी, पृ० १७८।

दोनो मिथ्या धारणाओ के आधार पर रासो की सबसे प्राचीन प्रति का लिपि-काल स० १६४१ और रासो का निर्माणकाल स० १६४१ से पूर्व स० १६०० के आसपास बतलाया गया है। वास्तव में न तो रासो की सबसे प्राचीन प्रति स० १६४१ की लिखी हुई है और न रासो का निर्माण-काल स० १६०० के आसपास है। सवत् १७०० और स० १७३२ के बीच किसी समय यह रचा गया है।

पृथ्वीराज रासो मे हिन्दूपति महाराज पृथ्वीराज चौहाण का जीवन चरित्र वर्णित है। परन्तु चरित्र-नायक के समय का लिखा हुआ न होने से इसमे इतिहास विषयक अनेक त्रुटियाँ आ गई है वस्तुत दो-चार व्यक्तियो के नामो एव घटनाओ का सही उल्लेख होने के अलावा इसमे तथ्य की बात और कुछ भी नही है। इसकी ऐतिहासिकता को सिद्ध करने के लिए मोहन-लाल विष्णुलाल पड्या आदि विद्वानो ने अनन्द सवत् आदि की जो उक्तियाँ पेश की हैं वे सब निराधार, भावुकतापूर्ण और भ्रामक हैं।

परन्तु साहित्य की दृष्टि से रासो एक अपूर्व ग्रन्थ है। यह एक महाकाव्य है। इसमे एक लाख छन्द हैं और ६९ प्रस्ताव। भाषा इसकी पिंगल अर्थात् राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा है जिस पर प्राकृत, अपभ्रश, अर्बी, फारसी आदि का भी रग यत्र-तत्र लगा हुआ है। इसमे साटक, दोहा, पद्धरि, गाहा, त्रोमर, भुजगी, आदि अनेक प्रकार के छद प्रयुक्त हुए हैं पर कवित्त (छप्पय) की सख्या सबसे अधिक है। कविता रासो की बहुत सबल, वीरोल्लासिनी एवं अर्थ-गौरव-पूर्ण है। लिखा है—

काव्य समुद्र कवि चन्द कृत, मुकत समप्पन ग्यान।
राजनीति बोहिथ सुफल, पार उतारन यान॥

रासौ मे वीर रस प्रधान तथा शेष रस गौण हैं और, जैसा कि एक महा-काव्य मे होना चाहिए सध्या, रात्रि, प्रभात, चद्र, मृगया, वन, ऋतु, सभोग,

बिप्रलभ, विवाह, रण-प्रयाण इत्यादि का इसमे यथास्थान सन्निवेश हुआ है। चद की प्रतिभा का प्रस्फुटन, कला की छाप तथा चरित्रो का खासा चित्रण रासौ मे दिखाई देता है। कथा का तारतम्य निभाने तथा पात्रो का चरित्राकन करने मे तो चन्द सिद्धहस्त थे ही वर्ण्यविषय को साकार रूप दे-देने की अद्भुत शक्ति भी उनमे विद्यमान थी। अत जिस विषय को उन्होंने पकडा उसका ऐसा सागोपांग, सजीव और विशद वर्णन किया है कि वह मूर्तिमान होकर हमारी आँखो के सामने घूमने लगता है। वस्तुत रासौ मे महाकाव्य की भव्यता और दृश्य काव्य की सजीवता है। इसकी कथा के वर्णन मे बडा वेग, बडी गति है। बडी तेजी के साथ कथा-प्रवाह आगे बढता है और पाठक को भी अपने साथ लेता चलता है। इसके सिवा एक दूसरी विशेषता जो रासौ मे देखी जाती है, वह है कर्म-समारोह की व्यस्तता, पात्रो की क्रियाशीलता। एक भी पात्र इसमे ऐसा नही है जो निश्चेष्ट एव अकर्मण्य हो। सभी को कुछ और कुछ करना है। अपनी-अपनी धुन मे मस्त सभी चले जा रहे हैं। कोई सैन्य-शिविर मे, कोई रणागण मे और कोई राज-दरबार मे। और तो और जेलखाने तक मे पात्रो की हलचल मौजूद है।

व्यक्तियो के चरित्र-चित्रण के अतिरिक्त समष्टि रूप मे हिन्दू-मुसलमान दो जातियो का चरित्रोद्घाटन भी रासौ मे खूब हुआ है। मुसलमानो की धर्मान्धता एव बर्बरता, राजपूतो के शौर्य्य, उनकी डाँवाडोल स्थिति और उनके पतनादि का जैसा मार्मिक, प्रकृत और क्षोभपूर्ण वर्णन रासौ मे मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। कहने को तो रासौ पृथ्वीराज का जीवन-चरित्र है परन्तु असल मे है वह हिन्दू-मुसलिम संघर्ष की अमर कहानी।

पाठको के विनोदार्थ चद की कविता के कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते है —

इक्कु बाणु पहुवीसु जु पइ कइवासह मुक्कओ।
उर भितरि खडहडिउ धीर कक्खतरि चुक्कउ॥
बीअ करि संधीउ भमइ सूमेसर नंदण।
एहु सु गडि दाहिमओ खणइ खुद्दइ सइंभरिवणु॥
फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भिउ वारइ पलकउ खल गुलह।
न जाणउ चंदबलद्दिउ किं न छुट्टइ इह फलह॥१॥

अगहु म गहि दाहिमओ रिपुराय खयंकरु।
कूडु मन्तु मम ठवओ एहु जबूय (प?) मिलि जग्गरु॥
सह नामा सिक्खवउं जइ सिक्खविउ बुज्झइ।
जंपइ चंद बलिद्दु मज्झ परमक्खर सुज्झइ॥
पहु पहुविराय सइंभरि धणी सयंभरि सउणइ संभरिसि।
कइवास विआस विसट्टविणु मच्छिबंधि बद्धओ मरिसि॥२॥

नृप ढकन इल होइ इलह ढकन सु राज भर।
पह ढकन वर देव देव ढकन वर अंबर॥
अपजस ढकन कित्ति कित्ति ढकन जस धारिय।
औगुन ढकन विद्य सुगुन विद्या उच्चारिय॥
ढकनह काल वर ध्रमको ध्रम कालढकन करिय।
मावत्ति गुरु ढकै जु सिसु सिसु ढकन पित उच्चरिय॥३॥

मनहुँ कला ससिभान कला सोलह सो बन्निय।
बाल वेस ससिता समीप अम्रित रस पिन्निय॥
विगसि कमल स्रिग भमर वैन षजन मृग लुट्टिय।
हीर कीर अरु बिंब मोति नष सिष अहि घुट्टिय॥
छत्रपति गयंद हरि हंस गति विह बनाय सचै सचिय।
पदमिनिय रूप पदमावतिय मनहु काम कामिनि रचिय॥४॥

वीर हनक वर वज्जि थभ फट्टयो घर फट्टिय ।
निटर जोति निव्वरिय लयी मृगवन्य दवट्टिय ॥
धरनि धूरि धुधरिय तीन भुवन परि भग्गिय ।
भयो मद्द हुकार जोग, माया तें जग्गिय ॥
प्रहलाद थप्पि उथ्यपि अरिन तीन लोक सुर असुर डरि ।
पिल्ल अपिल्ल पेल पेलन पलन कहर रूप नरसिंह धरि ॥५॥

सरनि सीर पलनलत रेन चल मलनि पवन करि ।
लोय लोय पर परिन अर्क नहिं सकन गवन करि ॥
श्रोन छिल्ल उछरत सुभट सुम्भति जनु किसुव ।
गजन ढाल कछुरनि मार सघर तक मघ भुव ॥
विरचत विफुरि सोमेस सुअ सहस करन वर कर वढिय ।
वन वृंद पियन वडवानल कि कल्न जानि समुह कढिय[15] ॥६॥

इसमे सदेह नही कि इस काल की सामग्री राजस्थानी-भाषा मे प्रचुर परिमाण मे मिलती है। परन्तु यह सामग्री ऐसी नही है कि इसके आधार पर इस काल के साहित्य एव लोक जीवन की किसी विशेष प्रवृत्ति का पता लगाया जा सके। धर्म, कथा, प्रेम आदि विषयो के बहुत छोटे-छोटे ग्रन्थ एव फुटकर छद मिलते हैं जो भाषा और साहित्य दोनो की अप्रौढावस्था को सूचित करते हैं।

---

१५. इन छप्पयो मे से पहला और दूसरा मुनि जिनविजय जी द्वारा सपादित 'पुरातन प्रबध सग्रह' से लिए गये हैं। शेष चारो मुद्रित रासो से हैं।

तीसरा प्रकरण

पूर्व मध्यकाल (सं० १४६०-१७००)

मध्यकाल से पूर्व प्रारभ काल मे राजस्थान और गुजरात की भाषा एक थी, यह बात पहले कही जा चुकी है। पर उसके बाद उसकी दो स्पष्ट शाखाएँ फट गई, राजस्थानी और गुजराती।

राजस्थानी की ढूंढाड़ी आदि सभी बोलियो मे साहित्य-रचना होने लगी, पर सबसे अधिक गौरव मारवाडी ने प्राप्त किया जिसका साहित्य आजकल डिंगल साहित्य के नाम से प्रसिद्ध है। यह समस्त राजस्थान की साहित्यिक भाषा बन गई।

इस काल के कवियो के मुख्य विषय थे---शृगार, भक्ति और कीर्त्ति-कथन।

'ढोला मारू रा दूहा' और 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' शृगार रस के दो अपूर्व ग्रथ इस युग मे रचे गए। ये दोनो ग्रथ डिंगल मे है और भाषा एव भाव की दृष्टि से बेजोड है। डिंगल मे इनकी टक्कर का कोई ग्रथ बाद के युगो मे नही लिखा गया।

भक्त कवियो मे मीरांबाई और ईसरदास के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रत्येक सत-समाज मे मीरां के पद बडे प्रेम के साथ गाए, सुने और सराहे जाते हैं। ईसरदास की रचनाओ का चारण जाति मे यथेष्ट आदर है।

चारण आदि राजाश्रित जातियो के कवियो की रचनाओ मे नरेश-भक्ति अथवा वीरपूजा का प्राधान्य रहा। परन्तु कोई उच्च कोटि का बडा

ग्रन्थ नही लिखा गया। अधिकाश कवि फुटकर गीत-दोहो के लिखने ही मे व्यस्त रहे। इसमे सदेह नही कि ये रचनाएँ भौतिक उद्देश्यो को सामने रखकर लिखी गई हैं और इनमें एक ही भाव-धारा प्रवाहित हो रही है, परन्तु है ये बहुत प्राणवान। इनकी भाषा मे रवानी और गति है। वर्णन मे कला और मौलिकता है। ये डिंगल भाषा की प्रौढावस्था को सूचित करती हैं।

इसी युग मे सत दादू दयाल ने दादूपथ को जन्म दिया जिनके शिष्यो मे कई उच्च कोटि के साहित्यकार हुए। दादूपथ के अनुकरण पर कालान्तर मे कुछ और पंथ खडे हुए जिनके अनुयायियो ने भी अपनी कृतियो द्वारा राजस्थानी साहित्य के भडार को भरा।

शिवदास

शिवदास जाति के चारण थे। इन्होंने 'अचळदास खीची री वचनिका, नामक एक छोटा-सा ग्रन्थ बनाया जिसमे माडू के पातशाह (होशगशाह?) और गागरौनगढ के खीची राजा अचलदास के युद्ध का वर्णन है। यह युद्ध ई० १४८५ के लगभग हुआ था और अचळदास इसमे मारे गए थे। डा० टैसीटरी ने वचनिका को इस युद्ध की समकालीन रचना बताया है[1]। इसमे गद्य और पद्य दोनो है। भाषा डिंगल है। रचना सामान्य रूप से अच्छी है। उदाहरण—

दूहा

एकणि वनि वसतडा, एवड अतर काइ।
सीह कवड्डी ना लहै, गैवर लक्ख विकाइ ॥१॥
गैवर गळै गळथीयो, जहँ खचै तहँ जाइ।
सीह गळथ्थण जे सहै, तो दह लक्ख विकाइ ॥२॥

---

1 A Descriptive Catalogue of Bardic and Historical Mss. Pt. I, Bikaner State, Fasc. I, p 41

(सिंह और हाथी एक ही वन के निवासी हैं, फिर इतना अंतर क्यो ? सिंह का तो एक कौडी भी मोल नही होता और हाथी लाखो मे बिकता है ॥१॥ हाथी के गले मे वन्धन पडा रहता है और इसलिए वह जिधर खीचा जाय उधर ही चला जाता है। यदि सिंह ऐसे गले के बन्धन को सह सके तो वह दस लाख मे बिके ॥२॥)

वात

"ते राजा नरसिंघदास सारीखा। छत्रीस सहस साहण रिणि खेति मेल्हि चाल्या। मदोमत्त हस्ती रिणिखेत मेल्हि चाल्या। समद्रि जाइ खाँडा पखाल्या। अनेक राउ मदगलित करि मेल्या। ते राजा नरसिंघ दास का वेटा। चादजी, खेमजी सारीखा। बूदी का चक्रवती सग्रामनी सारीखा। देस तौ कौण-कौण। सत्यासी। नमीयाड, आसेर, रायगण, प्रोली, पट्टोली. सेलारपुर माड, सीहोर, हूंसगावाद, नगर का। इसा एक ते एक कटक वन्ध। देस-देस का। खड-खड का। नगर-नगर का घर घर का खाँन मीर, उमराउ, चतुरग दळ चढि चाल्या। पातसाहि पाषाण पै पलाण घाल्या। इसी होद राजा कौण छै। जिहा का पातसाह कै मनि रीस वसी। कुणै का माथा सौं खिसी। कुणैह देव रूठौ। कुणै की माइ वियाँणी जो सामही रहै।"

कल्लोल

राजस्थान के सुप्रसिद्ध लोककाव्य "ढोला मारु रा दूहा" के रचयिता कल्लोल कवि के जन्मकाल, वश, माता-पिता इत्यादि के विषय मे कुछ मालूम नही है। केवल उनके इस ग्रन्थ के निर्माण-काल का पता है जो स० १५३० है और जिसका उल्लेख उन्होने इसके अतिम दोहे मे इस प्रकार किया है—

पनरहसे तीसै वरस, कथा कही गुण जाण।
वदि वैसाखे वार गुरु, तीज जाण सुभ वाण ॥

'ढोला मारू रा दूहा' एक प्रेमगाथात्मक काव्य है। इसकी कहानी का साराश यहां दिया जाता है—

किसी समय पूगल देश मे पिंगल नाम का कोई राजा राज्य करता था। उसी समय नरवर पर नल का राज्य था। पिंगल के एक कन्या हुई जिसका नाम मारवणी था। नल के पुत्र का नाम ढोला था। एक बार पूगल देश मे अकाल पडा जिससे राजा पिंगल कुछ दिनो के लिए पुष्कर मे जा रहा। इन्ही दिनो राजा नल भी तीर्थयात्रा करता हुआ वहाँ आ निकला। दोनो मे मित्रता हो गई। पिंगल ने अपनी लडकी मारवणी का विवाह नल के लडके ढोला के साथ कर दिया। उस समय ढोला की उम्र तीन वर्ष की और मारवणी की डेढ वर्ष की थी। शरद ऋतु आने पर दोनो राजा अपने-अपने देश चले गये। मारवणी की अवस्था छोटी थी इसलिये वह उस वक्त ढोला के साथ नरवर नही भेजी गई।

कई वर्ष बीत गए। ढोला जवान हुआ। पूगल देश दूर था इसलिए उसके पिता ने उसका दूसरा विवाह मालवे के राजा की लडकी मालवणी से कर दिया और उसके पूर्व विवाह की बात उससे छिपा रखी।

इधर मारवणी जब बडी हुई तब उसके पिता ने ढोला को बुलाने के लिए कई दूत भेजे। परन्तु सौतिया डाह की वजह से मालवणी ने पूगल और नर-वर के रास्तो पर ऐसा प्रबध कर रखा था कि सदेस-वाहक ढोला तक पहुँच ही नही पाते थे। बीच ही मे मार दिये जाते थे।

एक रात मारवणी ने ढोला को सपने मे देखा। इससे उसकी विरह-वेदना बढ गई। इसी समय नरवर की ओर से घोडो का एक व्यापारी पूँगल आया। उसने ढोला के दूसरे विवाह की बात पिंगल से कही। यह बात मारवणी के कानो तक भी पहुँची। वह पागल-सी हो गई। और कुछ ढाढियो को अपना प्रेम-सन्देशा देकर ढोला के पास भेजा जो मार्ग मे मालवणी के तैनात किये हुए आदमिमो को भुलावा देकर किसी तरह ढोला के महलो

तक जा पहुँचे। वहाँ रात-भर उन्होंने बडी सुरीली और दर्दभरी आवाज मे गा-गाकर मारवणी का प्रेम-सदेशा ढोला को सुनाया। दूसरे दिन प्रातः-काल होते ही ढोला ने ढाढियो को बुला भेजा और सब हाल मालूम किया। सुनकर उसकी उत्कठा बढ गई और मारवणी से मिलने के लिए वह आतुर हो उठा।

एक दिन ढोला घोडे पर सवार होकर मारवणी से मिलने के लिए जाने लगा। मालवणी को इसका पता लग गया। उसने दौडकर घोडे की रकाब पकड ली।

ढोलौ हल्लाणौ करै, धण हल्लवा न देह।
झबझब झूँबै पागडै, डबडब नयण भरेह॥

उस दिन वह वापस लौट आया। परन्तु कुछ दिन बाद एक रात को जब मालवणी सोई हुई थी वह चुपके से एक ऊँट लेकर वहाँ से चल पडा। ऊँट पर बैठकर उसने एक बार नरवर के दुर्ग की ओर देखा और कह गया—

"आस्याँ तो मिळस्याँ वळै, नरवर कोट जुहार।"

कुछ दिन बाद ढोला पूगल पहुँचा। वहाँ उसका बडा स्वागत-सम्मान हुआ। पाँच सात दिन वह वहाँ रहा। फिर मारवणी को लेकर वहाँ से रवाना हुआ। मार्ग मे एक पडाव पर मारवणी को एक साँप ने काट खाया जिससे उसकी मृत्यु हो गई। ढोला विलाप करने लगा और चिता बनाकर अपनी प्रिया के साथ जलने को उद्यत हो गया। इतने मे योगी-योगिन के वेश मे शिव-पार्वती वहाँ आ गये। उन्होंने मारवणी को पुनर्जीवित कर दिया।

यहाँ से आगे बढने पर एक घटना और हुई। ऊमर नाम के एक व्यक्ति ने मारवणी को छीनने के लिए अपने दल-बल सहित उनका पीछा किया। अपना घोडा ढोला के ऊँट के पास ले जाकर उसने कहा—"हे ठाकुर! अलग क्यो चल रहे हो, आओ कसूंबा (पानी मे घुली हुई अफीम) पिएँ।

फिर साथ-साथ ही चलेंगे।" ढोला उसके कपट-जाल को न समझ सका। और ऊँट से उतर पडा।

मारवणी ऊँट की मुहरी (नकेल) पकड कर अलग खडी हो गई। ढोला और ऊमर पास ही बैठकर कसूंवा पीने लगे। ऊमर के साथ मारवणी के पीहर की एक ढोलिन थी। उसने गा-गाकर ऊमर के षड्यन्त्र की सारी बात मारवणी को समझा दी। इस पर उसने अपने ऊँट के एक छडी मारी। ऊँट हडवडाया और उछलने लगा। ढोला उसे सभालने के लिए मारवणी के पास आया। इसी समय मारवणी ने चुपके से सारी बात उसके कान मे डाल दी। तब ढोला और मारवणी दोनो ऊँट पर बैठ गये और वहाँ से निकल भागे। ऊमर ने उनका पीछा किया। परन्तु हताश होकर उसे वापस लौटना पडा।

अन्त मे ढोला-मारवणी घर पहुँच गये और बडे आनन्द से अपना जीवन व्यतीत करने लगे—

आणँद अदि उछाह अति, नरवर माँहि ढोल।
ससनेही सयणाँ तणाँ, कळि माँ रहिया बोल॥

यह है 'ढोला मारू रा दूहा' की कहानी। बहुत सीधी-सादी और सुलझी हुई। कवि ने इसे ऐसे अनूठे ढग से कहा है, और काव्य-कल्पना का रग इसमे इस तरह भरा है कि सारी की सारी कहानी जगमगा उठी है। पजाब मे जिस तरह हीर-राँझन की कहानी घर-घर मे प्रसिद्ध है उसी तरह यह कहानी राजस्थानी-वासियो के गले का हार बन गई है। सैकडो वर्षो से लोग इसे कहते और सुनते आ रहे है। परन्तु अभी तक भी उनकी तृप्ति नही हुई है। सुननेवाला कभी नही कहता कि यह कहानी मुझे मत सुनाओ मेरी सुनी हुई है। न कभी कहनेवाला थकता है।

कुछ लोगो ने इस कहानी मे से ऐतिहासिक तथ्य निकालने की कोशिश भी की है, उनका कहना है कि ढोला मारवणी ऐतिहासिक व्यक्ति है और

उसके विवाह की बात एक ऐतिहासिक घटना है। ढोला को उन्होंने कछवाहा वंश के राजा नल का पुत्र बतलाया है और उसका समय सं० १००० के आसपास है। परन्तु ढोला नाम का कोई राजा हुआ हो या न हुआ हो, मारवणी उसकी राणी रही हो या न रही हो, कहानी फिर भी अमर है। इस कहानी का आकर्षण इसकी ऐतिहासिक कथा-वस्तु पर निर्भर नहीं है। इसकी भाव सरसता और मार्मिकता पर अवलंबित है।

'ढोला मारू रा दूहा' का महत्व एक और प्रकार से भी है। यह डिंगल भाषा का पहला काव्य-ग्रन्थ है। इससे पूर्व का लिखा हुआ डिंगल भाषा का कोई काव्यग्रन्थ नही मिलता। यह राजस्थान का जातीय काव्य है। इसमे राजस्थान का वातावरण है, राजस्थानीय जीवन की झाँकी है। राजस्थान के वृद्ध स्त्री-पुरुष इसमे अपने बीते हुए प्रेममय यौवन काल की स्मृतियाँ और युवक-युवतियाँ अपने भावी जीवन की मधुर भाव-भावनाएँ देखते हैं। शृंगार रस की मौलिक उक्तियो, रमणीय उद्‌भावनाओ से ग्रन्थ भरा पड़ा है। उदाहरण —

> बाबहियो नै विरहणी, दुहुवाँ एक सहाव।
> जब ही बरसै घण घणौ, तब ही कहै प्रि-याव ॥

(पपीहा और विरहिणी दोनो का एक स्वभाव है। जब मेघ बरसता है तब दोनों "पी-आव, पी-आव" पुकारते है।)

> बिज्जुळियाँ नीळज्जियाँ, जळहर तूं ही लज्जि।
> सूनी सेज विदेस प्रिय, मधुरै मधुरै गज्जि ॥

(बिजलियाँ तो निर्लज्ज हैं। हे जलधर, तू ही लज्जित हो। मेरी शय्या सूनी है। मेरा प्यारा विदेश मे है। इसलिए मधुर मधुर शब्द से गरज।)

> राति सखी इण ताल मइँ, काइज कुरळी पंखि।
> उवै सरि हूँ घर आपणै, बिहूँ न मेळी अंखि ॥

(हे सखी, रात को इस सरोवर मे, किसी पक्षी ने कलरव किया। वह अपने सरोवर मे और मैं अपने घर मे—हम दोनो की ही आँख नही लगी।)

पथी हाथ सदेसडौ, धण विळळती देह।
पग सूँ काढै लीहटी, उर आँसुआँ भरेह॥

(मारवणी विलाप करती हुई पथिक के हाथ सँदेशा देती है, पैर से (पृथ्वी पर) रेखा खीचती है और अपना हृदय आँसुओ से भर लेती है।)

हियडै भीतर पैस करि, ऊगौ सज्जण रूँख।
नित सूकै नित पल्हवै, नित नित नवला दूख॥

(मेरे हृदय मे प्रविष्ट होकर साजन-रूपी वृक्ष उगा है। वह नित्य सूखता है और नित्य पल्लवित होता है जिससे नित्य नये-नये दुख देखने पडते हैं।)

अकथ कहाणी प्रेम की, किण सूँ कही न जाय।
गूँगा का सुपना भया, सुमर सुमर पिछताइ॥

(प्रेम की अकथनीय कहानी किसी से नही कही जाती। वह गूँगे के स्वप्न के समान हो गई है जिसे वह याद कर करके पछताता है।

यहु तन जारी मसि करूँ, धूँआ जाहि सरग्गि।
मुझ प्रिय बद्दल होइ करि, बरसि बुझावै अग्गि॥

(यह तन जलाकर मैं कोयला कर दूँ और उसका धुँआ स्वर्ग तक पहुँच जाय। मेरा प्रियतम बादल बनकर बरसै और बरसकर आग को बुझा दे।)

मरैं पळट्टै भी भरै, भी भरि भी पळटेहि।
ढाढी हाथ सदेसडा, धण विळळती देहि॥

(मारवणी सदेशा कहती है, बदलती है, फिर कहती है, कहकर फिर बदल देती है। इस प्रकार वह प्रियतमा विलाप करती हुई ढाढी के हाथ सदेशे देती है।)

इहाँ सु पजर मन उहाँ, जय जाणैला लोइ।
नयणाँ आडा वीझ वन, मनह न आडो कोइ॥

(मेरा देह-पिंजर तो यहाँ है और मन वहाँ है। वास्तव मे यदि लोग समझें तो यद्यपि आँखो के अवरोधी घने जगल है पर मन का अवरोधी कोई नही।)

डूँगर केरा वाहळा, ओछाँ केरा नेह।
वहता वहै उतावळा, झटक दिखावै छेह॥

(पहाडी नाले और ओछे पुरुषो का प्रेम बहते समय तो बडी तेजी से बहते हैं पर तुरन्त ही अन्त दिखा देते है।)

ए वाडी ए वावडी, ए सर केरी पाळ।
वै साजण वै दीहडा, रही सँभाळ सँभाळ॥

(यह वाटिका यह वावडी, यह तालाब की पाल, वे पति, वे दिन इनको वार-वार याद करती हूँ।)

चदा तो किण खडियौ, मो खडी किरतार।
पूनिम पूरौ ऊगसी, आवतै अवतार॥

(हे चन्द्र, मुझे विधाता ने खडित किया पर तुझे किसने खडित किया है। तू तो पूर्णिमा को पूर्ण होकर उगेगा। पर मै आगामी जन्म मे ही पूर्ण होऊँगी)

तत्ववेत्ता

ये निम्बार्क सम्प्रदाय के सन जोधपुर राज्य के जैतारण नगर के निवासी और जाति के छैन्याती ब्राह्मण थे। इनके असली नाम का पता नही है। 'तत्ववेत्ता' इनका उपनाम था। इनका आविर्भाव-काल स० १६८० के लगभग है। ये अच्छे कवि और चमत्कारी महात्मा थे। अपने पीछे सैकडो शिष्य छोडकर गोलोकवासी हुए जिनमें से तीन चार की गद्दियां आज भी अजमेर, जयपुर, जैतारण आदि स्थानों मे चल रही है।

'इनके कवित्त' नामक एक ग्रथ का पता है जो पिंगल भाषा मे है। इसमें ९८ कवित्त (छप्पय) हैं जिनमे राम, कृष्ण, नारद, जनक आदि महापुरुषो की महिमा कही गई है। रचना मनोहारिणी है।

उदाहरण—

आदि चन्द्र हरिचद्र, अनत चदा अविकारा।
अग्नि चद उदार, अघट अविचल इकतारा॥
महा चद्र मुर चद्र, महा महिमा विस्तारा।
गोकल चद गोपाल, पाप परचड प्रहारा॥
रामचन्द्र रघुनाथ, रवण राजण के राजा।
कृष्णचन्द्र कल्याण, सर्व सुरनर सिरताजा॥
ततवेता तिहु लोक मे वृन्दावन चन्द विस्तरि रह्या।
सर्वचन्द कूं सुमिरता, परम चन्द परचै भया॥

कृष्णदास

कृष्णदास पयहारी जयपुर के सुप्रसिद्ध गलता नामक स्थान के महन्त और जाति के दाहिमा ब्राह्मण थे। इनके गुरु का नाम अनतानद था। केवल दूध ही पीते थे इसीलिए पयहारी कहलाए। इसका आविर्भाव-काल स० १५५९-८४ है। कहा जाता है कि आमेर के महाराजा पृथ्वीराज के गुरु

कापालिक सम्प्रदाय के योगी चतुरनाथ को इन्होने शास्त्रार्थ मे हराया था जिसके फलस्वरूप इन्हे गलता की गद्दी मिली थी।[2]

ये रामानुज सम्प्रदाय के वैष्णव-भक्त थे। इन्होने तीन ग्रथ बनाए जिनके नाम ये है—जुगल-मैन-चरित्र, ब्रह्मगीता और प्रेमतत्व निरूपता। इनकी भाषा व्रजभाषा है। कविता भक्तिभावपूर्ण और कर्णमधुर है। उदाहरण—

आवत लाल गोवर्द्धन धारी
आलस नैन सरस रस रगिन प्रिया प्रेम नूतन अनुहारी
विलुलित माल मरगजी उर पर सुरति समर की लगी पराग
चूवत स्याम अधर रस गावत सुरति चाव सुख भैरव राग
पलटि परे पट नील सखी के रस मे झीलत मदन तडाग
वृन्दावन वीथिन अवलोकत कृष्णदास लोचन वडभाग।

अग्रदास

ये कृष्णदास पयहारी के २५ शिष्यो मे मुख्य थे। इनके शिष्य नाभा-दास कृत भक्तमाल के आधार पर कुछ लोगो ने इनका रचनाकाल स० १६३२ के लगभग निश्चित किया है। इनके रचे ग्रथो के नाम ये हैं —

(१) श्रीरामभजन-मजरी (२) पदावली (३) हितोपदेशभाषा (४) उपासना वावनी (५) ध्यान-मंजरी (६) कुडलिया (७) अष्टयाम (८) अग्रसार और ((९) रहस्य ग्रथ।

अग्रदास भगवान श्री रामचन्द्र के अनन्य उपासक थे। इन्होंने राम-भक्ति सम्बन्धिनी कविता अधिक लिखी है। इनकी भाषा व्रजभाषा है। कविता सद्भावोत्पादक एव विचार-सौन्दर्य से पूर्ण है। सरल वर्णन-शैली

---

२ कृष्णदास के एक शिष्य कील जी भी अच्छे कवि थे।

के सहारे इन्होंने अलक्ष्य साधना की बातें कही हैं जो मानव-हृदय में आध्यात्मिक स्फूर्ति का संचार करती है। उदाहरण—

रघुवर लागत है मोहि प्यारो ॥टेक॥
अवधपुरी सरयू तट विहरै, दशरथ प्राण पियारो ॥१॥
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, पीतांबर पटवारो ॥
नयन विशाल भाल भौंहनियन की मति तुम नेक निहारो ॥२॥
रूप स्वरूप अनूप बनो है, तिन में टरत न टारो ॥
माधुरि मूरति निरखो सजनी, कोटि भानु उजियारो ॥३॥
जानकि नायक सब सुख दायक, गुणगण रूप अपारो ॥
अग्र अली प्रभु की छवि निरखे, जीवन प्राण हमारो ॥४॥

नदी किनारे रूखा जब तब होइ विनास।
जब तब होइ विनास देह कागद की छागर ॥
आयु घटै दिन रैन सदा आमय को आगर।
जरा जोरवर ज्वान प्राण को काल सिकारी ॥
मूषक यहाँ निसंक मृत्यु तकि रही मँजारी।
अग्र भजन आतुर करो जौलों पंजर स्वास ॥
नदी किनारे रूखा जब तब होइ विनास ॥

नाभादास

ये अग्रदास के शिष्य थे। इनका असली नाम नारायणदास था। इनकी जाति के संबंध में दो मत हैं। कोई इन्हें डोम और कोई क्षत्रिय बतलाते हैं। कहा जाता है कि जब ये बहुत छोटे थे तब अन्नाभाव के कारण इनके माता-पिता इन्हें एक सुनसान जंगल में छोड़ आए, जहाँ से उठाकर अग्रदास इन्हें अपने निवासस्थान पर ले गए, और पाल-पोसकर बड़ा किया। अपने गुरु के कहने से इन्होंने 'भक्तमाल' बनाया जिसका रचना-काल सं० १६४२

और स० १६८० के बीच मे अनुमानित किया जाता है। इसके अतिरिक्त इन्होने दो 'अप्टयाम' और रामचरित्र सबधी फुटकर पद भी बनाए थे। परन्तु इनकी ख्याति भक्तमाल के कारण विशेष है। भक्तमाल में ३१ छप्पय हैं और लगभग दो सौ भगवद्भक्तों के चरित्रो का वखान किया गया है। ग्रथ साहित्य तथा इतिहास दोनो दृष्टियो से महत्व का है। इनका एक छप्पय यहाँ दिया जाता है —

प्रचुर भयो तिहुँ लोक, गीतगोविन्द उजागर।
कोक काव्य नवरस, सरस शृगार को सागर॥
अप्टपदी अभ्यास, करै तिहि बोध बढावै।
श्री राधारवन प्रसन्न, सुनन तहाँ निहचै आवै॥
सत सरोरुह खड को, पद्मावती सुख जनक रवि।
जयदेव कवि नृप चक्कवै, खड मडलेश्वर आन कवि॥

सूजाजी

ये वीठू शाखा के चारण थे। इनका लिखा 'राव जैतसी रो छद'[१] नाम का एक ग्रथ प्रसिद्ध है। यह स० १५९१ और सं० १५९८ के बीच किसी समय रचा गया था। इसमे बाबर के द्वितीय पुत्र कामरान और बीकानेर-नरेश राव जैतसी के युद्ध का वर्णन है। कामरान काबुल और पजाब का हाकिम था और इस युद्ध मे परास्त हुआ था। जैतसी और कामरान के इस युद्ध के बारे मे मुसलमान इतिहासकार मौन हैं। परन्तु सूजाजी ने इसका सविस्तर वर्णन किया है। इसलिये पुस्तक का ऐतिहासिक मूल्य यथेप्ट है।

---

१ इसी नाम और विपय का एक ग्रथ किसी दूसरे कवि का लिखा हुआ भी है। परन्तु कवि के नाम का पता नहीं। ग्रथ बीकानेर के अनूप सस्कृत पुस्तकालय मे सुरक्षित है।

इसमें ४०१ पद्य है—गायत्री छंद ३८५, गाहा ११, दोहे ४, और कवित्त १। इनकी भाषा विशुद्ध डिंगल है। वर्णन-शैली सजीव और ओजस्विनी है। उदाहरण—

घडहडे ढोल धूजे धरत्ति, पड़ियाळगि वरसै खेडपत्ति।
बीकाहर राजा इंद वग्गि, खाफरां सिरे खिविया खडग्गि॥
पतिसाह फौज फूटन्ति पाळि, अहमड जैत गाजै बिचाळि।
अम्बहर जैत वरसै अवार, घुटकिया मोर मुहि खग्ग धार[४]॥

मीरांबाई

मीरांबाई मेड़ते के राठोड़ राव दूदाजी के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह की बेटी थी। उनका जन्म सं० १५५५ के लगभग कुडकी नामक गाँव में हुआ था। मीरां जब छोटी थी तब इनकी माता का देहान्त हो गया था। इसलिए इनके दादा राव दूदाजी ने इन्हें अपने पास मेड़ते बुला लिया जहाँ इनका बाल्यकाल बीता। कोई उन्नीस वर्ष की अवस्था में इनका विवाह मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह प्रथम (सं० १५६५-८४) के पाटवी कुंवर भोजराज के साथ हुआ। परन्तु विवाह के दो-तीन वर्ष बाद ही भोजराज का देहान्त हो गया। इस बात का पता रामदान लालस कृत 'भीम प्रकास' की इन पंक्तियों से लगता है—

भोजराज जेठो अमग, कँवरपणे अंत कीध।
मेडतणी मीरां महळ, प्रेमी भगत प्रसीध॥

भोजराज की मृत्यु के कुछ वर्ष बाद मीरां के पिता रत्नसिंह भी खानवा

---

४. पड़ियालगि=तलवार। खेड पत्ति=खेड नामक प्रान्त का पति। बीकाहर=बीकाजी का वंशज, जैतसी। खाफरां=शत्रुओं के। खिविया=चमके। बिचालि=में। अम्बहर=आकाश। मुहि=चली।

के युद्ध मे मारे गये। माता पिता और पति किसी के न रह जाने से मीराँ का मन ससार से उचट गया और वह पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन एव सत-समागम करके अपना दुखमय जीवन काटने लगी।

कहा जाता है कि मीराँ का भजन-भाव और सत्सग आदि इनके देवर राणा विक्रमाजीत (स० १५८८-९३) को पसन्द नही आया और विषादि के प्रयोग द्वारा उन्होंने इन्हे मार डालने की अनेक चेष्टाएँ की जो असफल रही। परन्तु इन बातो पर विश्वास नही होता। मीराँ की महिमा को बढाकर बतलाने के लिए भक्त लोगो ने इन्हे गढ लिया प्रतीत होता है।

इसी प्रकार मीराँ का रैदास की शिष्या होने, उनका गोस्वामी तुलसीदास को पत्र लिखने, अकबर द्वारा उनको हीरे का हार भेंट किया जाने इत्यादि की बाते भी कपोल-कल्पित और अनैतिहासिक है। इनमे काल दोष स्पष्ट है।

मीराँबाई का देहान्त स० १६०३ के आसपास द्वारका मे हुआ माना जाता है। भक्तो मे यह भी प्रसिद्ध है कि अन्त समय मे मीराँबाई ने यह पद गाया था।

> साजन सुध ज्यूँ जाने त्यूँ लीजै हो।
> तुम बिन मेरे और न कोई कृपा रावरी कीजै हो।
> दिवस न भूख रैन नहिं निन्द्रा यूँ तन पल-पल छीजै हो।
> मीराँ कहै प्रभु गिरिधर नागर मिल बिछुरन नहिं कीजै हो॥

मीराँबाई के रचे पाँच ग्रथ और कुछ फुटकर पद बतलाये जाते है। ग्रथो के नाम ये हैं गीतगोविन्द की टीका, नरसीजी रो माहेरो, सत्यभामाजी नु रूसणूँ, राग सोरठ, और राग गोविन्द। ये सभी ग्रथ हमारे देखने मे आये है। इनमे एक भी मीराँबाई का बनाया प्रतीत नही होता। कारण इनमे न तो कही इस बात का निर्देश है कि ये मीराँबाई के लिखे हुए है और न इनकी भाषा-कविता मीराँबाई की भाषा-कविता से मिलती है। मीराँ के

प्रत्येक शब्द पर उनके व्यक्तित्व की छाप लगी हुई है । अत. दो पक्तियाँ भी यदि कही से निकालकर अलग रख दी जायँ तो वे साफ कह देती है कि वे मीराँ की हैं। 'गीतगोविन्द की टीका' सस्कृत मे है। यह महाराणा कुभाजी की बनाई हुई है। 'नरसीजी रो माहेरो' ब्रजभाषा की एक बहुत नीरस और सामान्य कोटि की रचना है। 'सत्यभामाजी नु रूसणू' गुज--राती मे है। 'राग सोरठ' और 'राग गोविन्द' कोई ग्रथ ही नही है। मीराँ के कुछ पदो के शीर्षक मात्र है। मीराँ ने केवल स्फुट पद लिखे है। परन्तु मीराँ के नाम से जो पद आजकल बाजार मे बिक रहे हैं वे सब उनके नही हैं। मीराँ के भक्तो तथा अर्थ-लोभी मुद्रक-प्रकाशको ने जान बूझकर अथवा नासमझी से कुछ पद नये बनाकर और कुछ कबीर, सूर, दादू, नानक आदि सन्तो के इनमे मिला दिये है। वस्तुत मीराँ के पदो की सख्या २२५-२५० से अधिक नही है।

मीराँबाई की भाषा बोलचाल की राजस्थानी है जिस पर ब्रजभाषा, गुजराती और खडी बोली का भी रग लगा हुआ है। इनके शब्द-व्यवहार में बड़ी कोमलता और स्वाभाविकता है। वाह्याडबर और शाब्दिक चतुराई के फेर मे न पडकर इन्होंने सीधी बात को सीधे ढग से व्यक्त किया है।

मीराँ प्रेम-भक्ति की दीवानी थी। आध्यात्मिक व्याकुलता और भक्त हृदय का गभीर विश्वास इनकी कविता मे अपूर्व रूप से झकृत है। साहित्यिक दृष्टि से यदि देखा जाय तो इनकी कविता कोई बहुत ऊँची नही है। परन्तु सरल, स्वाभाविक एव भक्तिभाव पूर्ण होने से एक भक्त हृदय को मुग्ध करने में वह फिर भी बेजोड है। कृष्णभक्ति मे अधे कवि सूरदास की तुलना किसी दूसरे से नही हो सकती। सूर सचमुच हिन्दी-साहित्याकाश के सूर्य्य हैं। उनके सूरसागर मे प्रेमरस की एक बाढ-सी आ गई है और गोपियो तथा यशोदा के मुँह से पद जो उन्होंने कहलवाये है उनमे उन्होने नारी-हृदय का ऐसा मधुर, मनोवैज्ञानिक और कलापूर्ण विश्लेपण किया है कि देख

कर चकित ही रह जाना पडता है। सख्या भी सूर के पदो की कम नही। परन्तु यह सब होते हुए भी मीराँ के पदो मे जो रस है, मीठा-सा दर्द है वह उनमे भी नही आ पाया है। कविता क्या की है, मीराँ ने अपना हृदय ही बाहर निकाल कर रख दिया है। कुछ पक्तियाँ देखिये। इनमे कितनी तडपन, कितनी तन्मयता, कितनी मस्ती और बेचैनी है—

"जाओ हरि निरमोहड़ा रे, जाणी थाँरी प्रीत।"
"तेरा कोई नहँ रोकणहार, मगन होय मीराँ चली।"
"म्हारो जनम-मरण रो साथी, थाँनै नहँ विसरूँ दिन राती।"
"राणाजी म्हाँनै या बदनामी लागे मीठी।"
"म्हारे सिर पर साळगराम, राणाजी म्हारो काँई करसी।"
"क्या रे करूँ मैं बन मे गई, घर होती तो स्याम खूँ मनाय लेती।"

मीराँ की उपासना दपति-भाव की थी। अत इनकी कविता मे भक्ति और शृगार दोनो का सम्मिलन स्वाभाविक है। परन्तु मीराँ का शृगार लौकिक नही, अलौकिक है। उसमे न तो विद्यापति की सी अश्लीलता है, न सूर की सी उच्छृखलता, और न बिहारी की सी मादकता। मीराँ का शृगार पवित्र है और पवित्रा के साथ-साथ उसमे अनत, शाश्वत तथा निर्मल प्रेम की अनोखी झाँकी है।

कगाल की कुटिया से लेकर राजमहलो तक मीराँ की कविता समान रूप से आदृत है। इसलिए नही कि मीराँ स्त्री थी और उनके साथ रियायत किया जाना वाछनीय है। इसलिए भी नही कि उनका जन्म यश पूत एक एक राजघराने मे हुआ था। बल्कि इसलिए कि मीराँ की कविता ही सच्ची कविता है, कवि हृदय की यथार्थ अनुभूति है। इनके शब्दो मे कुछ ऐसा सौन्दर्य है कि उसे शब्दो द्वारा व्यक्त करना कठिन है। किसी रूसी कवि की

कविता पर कही हुई एक समलोचक की यह उक्ति मीराँ की कविता पर भी ठीक-ठीक घटती है—

"A charm in words, a charm no words can give"

मीराँबाई के दो पद यहाँ दिये जाते हैं। –

राग होरी सिन्दूरा

फागुण के दिन चार रे, होळी खेल मना रे ।।टेक।।
विण करताळ पखावज बाजै, अणहद री झणकार रे।
विण सुर राग छतीसूं गावै, रोम-रोम रंग सार रे।।
सील सतोस री केसर घोळी, प्रेम प्रीत पिचकार रे।
उड़त गुलाल लाल भयो अंबर, बरसत रंग अपार रे।।
घट के पट सब खोल दिये है, लोक-लाज सब डाल रे।
होली खेल पीव घर आये, सोइ प्यारी-पी प्यार रे।।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण-कँवळ बलिहार रे।

राग देस

दरस बिन दूखण लागै नैण ।।टेक।।
जब से तुम बिछुरे प्रभु मोरे, कबहूँ न पायो चैन।
सबद सुणत मेरी छतियाँ काँपै, मीठे मीठे बैन।।
बिरह कथा कासूँ कहूँ सजनी, बह गई करवत ऐन।
कल न परत पल हरि मग जोवत, भई छमासी रैण।।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, दुख मेटण सुख दैण।

छीहल

इनके व्यक्तिगत जीवन के विषय मे कुछ ज्ञात नही है। इनका एक छोटा-सा ग्रथ 'पच सहेली री दूहा' मिलता है जो निस्सदेह अनूठा है। यह सवत् १५७५ मे लिखा गया था—

पनरे मै पीचोतरै, पूनम फागुण माम ।
पच महेली बरणवी, कवि छीहल परगाम॥

इसमें ६५ दोहे हैं। इसकी भाषा बोलचाल की राजस्थानी है। माली, तंबोली, छीपी, कलालिन और सुनार जाति की पांच स्त्रियां एक दिन किसी पनघट पर छीहल से मिलती हैं और उसे अपनी विरह-व्यथाएँ सुनाती हैं। कुछ दिन बाद यही स्त्रियां फिर उसी स्थान पर छीहल से मिल जाती हैं। परन्तु इस बार वे बहुत प्रसन्न दिखाई पडती हैं। क्योंकि उनके पति परदेश से वापस लौट आए हैं। इन्ही का वर्णन इस ग्रंथ मे किया गया है। ग्रंथ छोटा पर सरस है। उदाहरण—

पहिली बोली मालिणी मोकूं दुक्ख अनन्त।
बाला जोवन छडि करि, गए देसाउरि कत॥
निसि दिन वहै प्रनाल ज्यूं, नयणे नीर अपार।
विरहा माली दुक्ख का, सुभर भरे क्यार॥
कमल वदन विलखाइया, सूका सुख वनराइ।
बाज पियारे एक खिण, बरस बराबर जाइ।
तन तरवर फल लागिया दोइ नारंग रस पूर।
सूकण लागी वेलडी, सीचणहारा दूर॥
मन वाडी गुण फूलडा, पिय नित लेता वास।
अब उण थानक रयण दिन, पिय बिण रहूं उदास॥
चपा केरो पखुडी, गूंथूं नवसर हार।
जो गलि पहिरूं पीय विण, लागै अग अंगार॥
मालिण अपणा जीव का, विउरा कह्या विचार।
अब कछु दुक्ख सरीर का, अखै तबोलिण नार।

आशानंद

ये जाति के चारण और जोधपुर राज्य के भाद्रेस गाँव के निवासी गीधाजी के बेटे थे। इनका जन्म स० १५६३ के आसपास हुआ था। ये तीन भाई थे— रूपसूर, सूजो और आशानंद। चारणो के सुप्रसिद्ध भक्त कवि ईसरदास इनके भतीजे थे। कहा जाता है कि आशानद आजीवन ब्रह्मचारी थे। परन्तु यह बात कुछ ठीक नही प्रतीत होती। क्योंकि मारवाड मे चारणो के अब भी कई घर ऐसे है जो अपने को आशावत कहते है, और आशा बारहठ का वंशज बतलाते हैं।

आशानद जोधपुर नरेश राव मालदेव के कृपापात्र थे। स० १५८९ मे जब राव मालदेव ने बीकानेर पर चढाई की ये उनके साथ थे।

इनके मृत्यु-काल का ठीक-ठीक पता नही है। कुछ लोगो का अनुमान है कि ये स० १६६० के आस-पास स्वर्गवासी हुए थे।

आशानद के रचे छह ग्रंथ कहे जाते हैं लक्ष्मणायण, निरंजनप्राण, गोगाजी री पेडी बाघा रा दूहा, उमादे भाटियाणी रा कवित्त और फुटकर गीत। ये सब डिंगल भाषा मे है। इनकी भाषा बहुत मधुर और कविता तल स्पर्शी है। अपने मित्र बाघा कोटडिया की मृत्यु पर लिखे करुणरस-प्लावित इनके दोहे इतने मार्मिक है कि सुनकर बहुत से लोग रो पडते हैं।

इनकी कविता के नमूने देखिए—

सझ मौळै सिणगार, सत्तव्रत अग सनाहै।
अरक बार मुख ऊग, नीर गगाजळ नाहै॥
चीर पहर अस चढै, मुकट वेणी सिर खुल्लै।
देती परदिखणांह, हस गत राणी हल्लै॥
सुर भुवण पैस लीधौ सरग, साम तणौ मन रंजियौ।
रूसणौ मालदे राव सूं, भटियाणी इम भंजियौ।

(सोलह शृंगार सजाकर शरीर मे सत्यव्रत को धारण किए हुए जिसके मुख से मानो बारह सूर्य उगे हैं ऐसी भटियाणी (उमादे) ने गगाजल से स्नान किया। वस्त्र पहन, घोडे पर सवार हो, शिरोभूषण, चोटी और बालो को खोल प्रदक्षिणा देती हुई हस की गति से चलकर रानी स्वर्ग मे पहुँची। स्वामी मालदेव का मन प्रसन्न हुआ। इस प्रकार उमादे ने राव मालदेव से अपना रूठना दूर किया।)

पैस मज्झ पावक्क, हुई जमहर नख सख जळ।
क्रम चौरासी तणा, करै तडल भूमडळ॥
झल माळा विच होम, देह वाळी दावानळ।
धुकै होम धडहडण, वात मुख सहँस वळोवळ॥
सामहा जोड ऊमा सती, देव भाण दिस हाथ दुव।
माल राव चौ साँभळ मरण, होय अँगारा राख हुव॥

(अग्नि मे प्रवेश करके नख से शिखा तक जलकर राख हो गई। चौरासी योनियो के कर्मों को भूमडल पर ही टुकडे कर ज्वाल-माला मे अपने शरीर को होम भस्मीभूत कर दिया। आग से धड-धडाकर धुँआ उठा। हजारो मुखो से निरन्तर यह बात निकली कि सती उमादे सूर्य देव के सामने दोनो हाथ जोड राव मालदेव का मरना सुन अँगारे होकर राख हो गई।)

ईसरदास

ये रोहडिया शाखा के चारण थे। इनका जन्म जोधपुर राज्य के भाद्रेस नामक गाव मे स० १५९५ मे हुआ था। कुछ लोग इनका जन्म-सवत् १५१५ बतलाते हैं और अपने कथन की पुष्टि मे यह दोहा उद्धृत करते हैं—

पनरासौ पनरोतरे, जनम्या ईसरदास।
चारण वरण चकार मे, उण दिन हुवौ उजास॥

परन्तु उनका यह कथन निर्मूल है। ईसरदास की असली जन्मपत्री मिल चुकी है और उसमे भी इनका जन्म-सवत् १५९५ ही दिया हुआ है। साथ ही उक्त दोहा भी अब अपने असली रूप मे मिल गया है। इसका सही पाठ यो है–

पनरासौ पिच्चाणवै, जनम्यां ईसरदास।
चारण वरण चकार मे, उण दिन हुवौ उजास।।

इनके पिता का नाम सूजाजी और माता का अमरबाई था। पीताम्बर भट्ट इनके गुरु थे जिन्होने इन्हे सस्कृत भाषा एव भागवत आदि पुराणो का ज्ञान कराया था। अपने 'हरिरस' मे ईसरदास ने सबसे पहले इन्ही की वन्दना की है–

लागूं हूं पहली लुळै, पीताम्बर गुरु पाय।
भेद महारस भागवत, प्रामूं जास पसाय।।

ईसरदास जब कोई बीस वर्ष के थे तब भाद्रेस छोडकर जामनगर चले गए जहाँ उस समय रावळ जाम राज करते थे। उन्होने इन्हे अपना 'पोल-पात'* बना लिया और एक लाखपसाव§ देकर सचाणो, रगपुर आदि

---

*पोल (स० प्रतोलि) पर नेग लेने वालो मे योग्य।

§ राजस्थान मे चारण-भाटो को जो दान दिया जाता है उसका नाम उन्होने पसाव (स० प्रसाद) रखा है। बडे दान को वे अत्युक्ति से लाखपसाव-क्रोडपसाव आदि कहते हैं। इस तरह के दान देने की प्रथा आजकल बद-सी हो गई है। पहले जब लाखपसाव आदि दिये जाते थे तब एक लाख रुपया नकद नही दिया जाता था। हजार दो हजार के करीब रोकड रुपया देकर शेष रकम की पूर्ति हाथी, घोडे, सिरोपाव आदि देकर की जाती थी। छोटा दान लाखपसाव, उससे बडा क्रोडपसाव और सबसे बडा अडबपसाव कहलाता था।

आठ-दस गाँव जागीर मे दिये जो अभी तक इनके वशजो के अधिकार मे हैं।

कहा जाता है कि लगभग ४० वर्ष तक ईसरदास जामनगर मे रहे। बाद मे अपने जन्म-स्थान भाद्रेस को चले गए और लूँणी नदी के किनारे एक कुटिया बनाकर रहने लगे। वही स० १६७५ के आसपास ८० वर्ष की अवस्था मे इनका देहावसान हुआ।

ईसरदास एक भक्त और चमत्कारी पुरुष थे। इनके भक्ति-चमत्कार की अनेक दन्तकथाएँ राजस्थान मे प्रचलित है।[5] परन्तु उनका ऐतिहासिक मूल्य विशेष नही है। कहते हैं कि इनको कई अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त थी जिनकी वजह से लोग इनको 'ईसर सो परमेसरा' कहकर पूजते थे।

---

५ इन कहानियो मे एक कहानी इतनी लोक-प्रिय और मार्मिक है कि उसे यहाँ देने का लोभ हम से सवरण नही होता। कहते हैं कि एक बार ईसरदास जामनगर से अमरेली जाते हुए रास्ते मे वेणू नदी के किनारे पर एक छोटे से गाँव मे सागा नामक एक राजपूत के यहाँ ठहरे। साँगा ने इनकी बडी आवभगत की और जब ये वहाँ से आगे चलने लगे तो इनसे कहा कि मै बहुत गरीब हूँ और आपको भेंट मे देने लायक कोई वस्तु मेरे पास नही है। सिर्फ एक कम्बल है जिसे मैं आपको भेंट करना चाहता हूँ। ईसरदास ने कहा कि उस कम्बल को वापस लौटते वक्त हम तुमसे ले जाएँगे। यह कहकर वे वहाँ से रवाना हो गए।

इसी बीच मे ऐसा हुआ कि एक दिन सायकाल को जब साँगा अपने पशुओ को जगल मे चराकर घर लौटते वक्त वेणू नदी को पार कर रहा था तब बाढ आ गया और वह और उसके पशु उसमे बह गए। साँगा ने बाहर निकलने के लिए बहुत हाथ-पाँव पटके परन्तु उसकी सब मेहनत वृथा गई। अत मे जब उसने देख लिया कि उसकी मृत्यु निश्चित है तब उसने नदी के किनारे पर खडे अपने ग्रामवासियो से चिल्ला कर कहा, कि "मैं मर रहा

इन्होंने डिंगल भाषा के बाहर अन्य ग्रन्थ बनाए जिनके नाम ये हैं:—

(१) हरिरस (२) छोटा हरिरस (३) बाल लीला (४) गुण भागवत हंस (५) गरुड़ पुराण (६) गुण आगम (७) निन्दा स्तुति (८)

हूँ, पर मेरे मन में एक इच्छा रह गई है। वह यह कि अपने वादे के मुताबिक ईसरदास को कम्बल न दे सका। परन्तु तुम लोग घर पहुँचकर मेरी माँ से कह देना कि ईसरदास के लिए जो कम्बल रखा हुआ है उसे वह उनके वापस लौटने पर उन्हें दे दे"। यह कहते-कहते साँगा की साँस टूट गई और वह पानी में डूब गया।

इस घटना के कुछ दिन बाद ईसरदास साँगा के घर आ पहुँचे। साँगा की माँ ने उनके लिए भोजन तैयार किया। परन्तु भोजन के आसन पर बैठने से पूर्व ईसरदास ने पूछा कि साँगा कहाँ है, मैं उसके साथ भोजन करूँगा। यह सुनकर साँगा की माँ का कलेजा भर आया और टपाटप आँसू गिरने लगे। अंत में साँगा की मृत्यु की सारी बात उसने ईसरदास से कह दी। सुनकर वे उठ खड़े हुए और बोले—"मुझे वह स्थान बताओ जहाँ साँगा डूबा है।" माँ ने साथ आकर वह स्थान उन्हें बता दिया। वहाँ खड़े होकर ईसरदास ने जोर से पुकारा—"साँगा! मैं तुम्हारी प्रतिज्ञा के अनुसार कम्बल लेने आया हूँ। आकर अपना वादा पूरा करो।" सामने से आवाज आई—"आ रहा हूँ।" और थोड़ी देर में साँगा अपने पशुओं सहित आता हुआ दिखाई दिया। आकर उसने ईसरदास के पाँव पकड़ लिए। फिर दोनों घर गये और सानंद भोजन किया। इस विषय के ५-७ दोहे भी लोगों की जबान पर हैं। चार दोहे यहाँ दिये जाते हैं —

नदी वहतो जाय, सादज साँगरिए दियौ।
कहज्यौ मारी माय, कवि नै देवे कामळी॥

आठ-दस गाँव जागीर मे दिये जो अभी तक इनके वशजो के अधिकार मे है।

कहा जाता है कि लगभग ४० वर्ष तक ईसरदास जामनगर मे रहे। बाद मे अपने जन्म-स्थान भाद्रेस को चले गए और लूंणी नदी के किनारे एक कुटिया बनाकर रहने लगे। वही स० १६७५ के आसपास ८० वर्ष की अवस्था मे इनका देहावसान हुआ।

ईसरदास एक भक्त और चमत्कारी पुरुष थे। इनके भक्ति-चमत्कार की अनेक दन्तकथाएँ राजस्थान मे प्रचलित है।[५] परन्तु उनका ऐतिहासिक मूल्य विशेष नहीं है। कहते हैं कि इनको कई अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त थी जिनकी वजह से लोग इनको 'ईसरा सो परमेसरा' कहकर पूजते थे।

---

५ इन कहानियो मे एक कहानी इतनी लोक-प्रिय और मार्मिक है कि उसे यहाँ देने का लोभ हम से सवरण नही होता। कहते है कि एक बार ईसरदास जामनगर से अमरेली जाते हुए रास्ते मे वेणू नदी के किनारे पर एक छोटे से गाँव मे सागा नामक एक राजपूत के यहाँ ठहरे। साँगा ने इनकी बडी आवभगत की और जब ये वहाँ से आगे चलने लगे तो इनसे कहा कि मै बहुत गरीब हूँ और आपको भेंट मे देने लायक कोई वस्तु मेरे पास नही है। सिर्फ एक कम्बल है जिसे मै आपको भेंट करना चाहता हूँ। ईसरदास ने कहा कि उस कम्बल को वापस लौटते वक्त हम तुमसे ले जाएँगे। यह कहकर वे वहाँ से रवाना हो गए।

इसी बीच मे ऐसा हुआ कि एक दिन सायकाल को जब साँगा अपने पशुओ को जगल मे चराकर घर लौटते वक्त वेणू नदी को पार कर रहा था तब बाढ आ गया और वह और उसके पशु उसमे बह गए। सांगा ने बाहर निकलने के लिए बहुत हाथ-पाँव पटके परन्तु उसकी सब मेहनत वृथा गई। अत मे जब उसने देख लिया कि उसकी मृत्यु निश्चित है तब उसने नदी के किनारे पर खडे अपने ग्रामवासियो से चिल्ला कर कहा, कि "मैं मर रहा

इन्होंने डिंगल भाषा के बाहर अन्य ग्रन्थ बनाए जिनके नाम ये है —

(१) हरिरस (२) छोटा हरिरस (३) बाल लीला (४) गुण भागवत हंस (५) गरुड पुराण (६) गुण आगम (७) निन्दा स्तुति (८)

हूँ, पर मेरे मन मे एक इच्छा रह गई है। वह यह कि अपने वादे के मुताबिक ईसरदास को कम्बल न दे सका। परन्तु तुम लोग घर पहुँचकर मेरी माँ से कह देना कि ईसरदास के लिए जो कम्बल रखा हुआ है उसे वह उनके वापस लौटने पर उन्हे दे दे"। यह कहते-कहते साँगा की साँस टूट गई और वह पानी मे डूब गया।

इस घटना के कुछ दिन बाद ईसरदास साँगा के घर आ पहुँचे। साँगा की माँ ने उनके लिए भोजन तैयार किया। परन्तु भोजन के आसन पर बैठने से पूर्व ईसरदास ने पूछा कि साँगा कहाँ है, मैं उसके साथ भोजन करूँगा। यह सुनकर साँगा की माँ का कलेजा भर आया और टपाटप आँसू गिराने लगी। अंत मे साँगा की मृत्यु की सारी बात उसने ईसरदास से कह दी। सुनकर वे उठ खडे हुए और बोले—"मुझे वह स्थान बताओ जहाँ साँगा डूबा है।" माँ ने साथ जाकर वह स्थान उन्हें बता दिया। वहाँ खडे होकर ईसरदास ने जोर से पुकारा—"साँगा! मै तुम्हारी प्रतिज्ञा के अनुसार कम्बल लेने आया हूँ। आकर अपना वादा पूरा करो।" सामने से आवाज आई—"आ रहा हूँ।" और थोडी देर मे साँगा अपने पशुओ सहित आता हुआ दिखाई दिया। आकर उसने ईसरदास के पाँव पकड लिए। फिर दोनो घर गये और सानद भोजन किया। इस विषय के ५–७ दोहे भी लोगो की जबान पर है। चार दोहे यहाँ दिये जाते है —

नदी वहतो जाय, सादज माँगरिए दियौ।
कहज्यौ मारी माय, कवि नै देवे कामली॥

देवियाण (९) वैराट (१०) रास कैलास (११) सभा पर्व (१२) हालाँ झालाँ रा कुडलिया।

इनमें 'हरिरस' और 'हालाँ झालाँ रा कुडळियाँ' ईसरदास की बहुत लोक-प्रिय रचनाएँ हैं। हरिरस ईश-भक्ति का ग्रन्थ है। इसमे तल्लीनता, अगाध प्रेम, दृढ विश्वास कूट-कूटकर भरा पडा है। ईसरदास के समकालीन कवियो ने भी इसकी बडी प्रशसा की है। इनमे केशवदास गाडण की यह उक्ति राजस्थान मे बहुत प्रसिद्ध है—

जग प्राजळतो जाण, अघ दावानळ ऊपराँ।
रचियौ रोहड राण, समँद हरीरस सूरवत॥

'हालाँ झालाँ रा कुडळिया' वीर रस की अत्युत्कृष्ट रचना है। इसी का दूसरा नाम सूर-सतसई है। परन्तु यह नाम भ्रामक है। क्योंकि सतसई नाम से इसमे सात सौ पद्यो का होना सूचित होता है, जो इसमे नही हैं। इसमे सिर्फ ५० कुडलिया हैं। कुछ लोगो का अनुमान है कि यह ग्रथ ईसरदास रचित नही है, उनके काका आशानन्द का लिखा हुआ है। परन्तु उनका यह अनुमान निराधार है। इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ हमारे देखने मे आई हैं और सभी मे ईसरदास का नाम दिया हुआ है।

इन दोनो ग्रन्थो के अतिरिक्त ईसरदास के जो दूसरे ग्रथ है वे प्राय. सभी बहुत छोटे-छोटे हैं और साहित्य दृष्टि से विशेष महत्व के भी नही

वाहण वहतौ जाय, साद दियतौ साथियाँ।
कहज्यौ जायर माय, कवि नै दीजै कामली॥
वहतै नद पाणीह, साँगरिए दीधौ सवद।
कामल सहनाणीह, दीजै ईसरदास नै॥
ईस तणौ आवाज, साँगा जल-थल सामले।
कामल देवण काज, वेगौ वल सिघ कर वयण॥

है। इनमे भागवत, उपनिषद् आदि सस्कृत ग्रन्थो मे निरूपित सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया है।

ईसरदास की कविता के नमूने देखिए —

तिलाँ तेल पोहप फुलेल, उज्झेलत सायर।
अगनि काठ जोवन्न घट्ट, भगवट्ट सु कायर॥
ईख रस्स अहि फेण, अरथ आगम-उरठाहे॥
पानाँ चग मजीठ, रग उछरग विमाहे॥
खग नीर धीर अतर खरा, मद कुजर वपु जिम मयण।
मन बसे तेम तू माहरे, मो मन वसियो महमहण।

(जिस तरह तिलो मे तैल, पुष्प मे इत्र, समुद्र मे तरग, काष्ट में अग्नि, शरीर मे यौवन, कायर पुरुषो मे भागना, गन्ने मे रस, सर्प मे झाग, वेद मे अर्थ, तावूल मे उत्तमता, मजीठ मे रग, विवाह मे आनन्द, तलवार मे पानी, अन्त करण मे सच्चाई, हाथी मे मद एव शरीर मे कामदेव व्याप्त रहता है उसी भाँति हे महार्णव! मेरे मन-मे आप और आप मे मेरा मन बस रहा है।)

(दोहे)

सादूळो आपै समो, बीजो कवण गिणंत।
हाक विडाणी किम सहै, घण गाजियै मरत॥

(सिंह अपने मुकावले मे और किसको गिनता है? वह किसी दूसरे की हाक को कैसे सह सकता है? वह तो बद्दल के गरजते ही मरता है।)

सीहण हेको सीह जण, छापर मडै आळ।
दूध विटालण कापुरुष, बौहळा जणै सियाळ॥

(सिहनी केवल एक सिह को जन्म देती है जो खुले मैदान मे घेरा डालता है। लेकिन सियारी दूध को लज्जित करनेवाले अनेक कायरो को जन्म देती है।)

हिरणा लाँबी सीगडी, भाजण तणौ सभाव।
सूराँ छोटी दातली, दै घण थट्टा घाव॥

(हरिनो के लम्बे सीग होते हैं, पर स्वभाव भागने का होता है। सूअरो के छोटी-सी दातली होती है पर वे (शत्रु) समूह पर गहरा घाव करते हैं।)

केहर मूछ भुजग मण, सरणाई सोहडाह।
सती पयोधर कृपण धन, पडसी हाथ मुवाह॥

(सिह की मूछ, सर्प की मणि, वहादुरो का आश्रय, सती के स्तन और मूजी का धन मरने ही पर हाथ आते हैं।)

सैल घमोडा किम सह्या, किम सहिया गजदत।
कठण पयोधर लागता, कसमसतौ तू कत॥

(हे कत! तूने भालो के प्रहार कैसे सहन किये और कैसे हाथियो के दातो की मार सही। तू तो कठोर स्तनो के स्पर्श से ही विचलित हो जाता था।)

लै ठाकर वित आपणौ, देतौ रजपूताँह।
घड धरती पग पागडै, अत्रावळि गीधाह॥

(हे ठाकुर! तू राजपूत को जो वित्त देता था उसका वदला ले। उसका घड धरती पर तथा पाव पागडे मे है और उसकी अतडी को गीध खा रहे है)

केशवदास

केशवदास जोधपुर राज्यान्तर्गत सोजत परगने के चिडिया नामक गाँव के निवासी थे। इनका जन्म स० १६१० मे और देहान्त स० १६९७ मे

हुआ था। ये गाडण शाखा के चारण थे। इनके पिता का नाम सदमाल था। केशवदास गृहस्थ थे पर साधुओ की तरह गेरुआ वस्त्र पहिनते थे। इनकी प्रशसा मे लिखा हुआ राठौड पृथ्वीराज का यह दोहा प्रसिद्ध है—

केसौ गोरखनाथ कवि, चेलो कियौ चकार।
सिध रूपी रहता सवद, गाडण गुण भडार॥

केशवदास डिंगल भाषा के कवि थे। इनके लिखे तीन ग्रथ प्रसिद्ध है (१) गुणरूपक, (२) राव अमरसिंह जी रा दूहा और (३) विवेक-वार्ता। कहा जाता है कि इन्होंने 'गज-गुण-चरित्र' नाम का एक ग्रथ और भी वनाया था, जिसका पता नही लगता। इन ग्रथो में "गुण रूपक" सवसे वडा है। इसमे जोधपुर के महाराजा गजसिंह के राज्य-वैभव, उनकी तीर्थयात्रा, उनके युद्धो आदि का वर्णन है। दोहा, कवित्त, गाहा, अडल, मथाणा इत्यादि सव मिलाकर लगभग एक हजार छदो मे यह समाप्त हुआ है। इसका रचनाकाल स० १६८१ है—

सोळह सह सवत हुए, जोगणपुर चाळै।
समै एकासियै मास, काती वडाळै॥

'राव अमरसिंहजी रा दूहा' मे नागौर के राव अमरसिंह की वीरता का वर्णन है और 'विवेक-वार्ता' वेदान्त का ग्रंथ है। इनकी रचना के दो नमूने यहाँ दिये जाते है—

भीम भयकर नाद भेर नीसाण गरज्जै।
गुहरि सद्द गडगडै गयण वारह घण गज्जै॥
खिवै कूत अदभूत भडा वाँका भुअ डडै।
मुठाणी वादळि वळक वीज लता व्रिहमडै॥
तळ जोड पडै कुँजर वहै अनड नदी नड दडियडै।
असपति राउ असमान रा दळ वादळ वदि वदि चडै॥

लो इण चचळ चपळ अचळ ध्रू जिम मन धारण।
कडि मयक मुख इन्द दिग्घ वेणी अहिदारण॥
मद गयद गति मद काय जाणै भ्रम कदळि।
वप चपक दळ वरन सीस गुजार करै अळि॥[६]

अल्लूजी

ये जाति के चारण थे। जन्म-स्थान आदि का ठीक-ठीक पता नही है। आविर्भाव-काल स० १६२० के लगभग है। इन्होंने ग्रन्थ कोई नही लिखा पर फुटकर कवित्त (छप्पय) बहुत अच्छे रचे हैं जिनकी बडी प्रसिद्धि हैं। कहा भी है—

कविते अलू दूहे करमाणद, पात ईसर विद्या चौ पूर।
छदे मोहो झूलणे मालो, सूर पदे गीत हरसूर॥

इनकी भाषा डिंगल है। कविता सरल, भक्ति-पूर्ण एव ज्ञानवर्द्धक है। उदाहरण—

सोही वाण सुवाण, भजै हरि नाम निरन्तर।
सोही माँण सुमाँण, भरै भलपण हुँत जाठर॥
सोही लाज सुलाज, त्रिया पर मेळ्य तज्जै।
सोही सूर सामत, भिडै आराण नहँ भज्जै॥

---

६ खिवै=चमकता है। कूंत=भाला। मुठाँणी=तलवार। मुठाँणी ब्रिहमडै-तलवार की चमक बादलो के बीच की विद्युल्लता के समान शोभायमान है। वहै=चलते हैं। अनड=पहाड। असपति= बादशाह, इन्द्र। दडियडै=गूजते है, गडगडाते हैं। ध्रू=ध्रुव। कडि= कमर। वप=शरीर।

दिल धरम सोही पाळै दया, न्याव सोही पछि न करै।
हरि नाम जीह जपतौ रहै, अलू सपूत कुळ ऊधरै"॥

जल्ह

इनका विशेष वृत्त ज्ञात नही है। रचना शैली से कोई जैन कवि प्रतीत होते है। आविर्माव काल स० १६२५ के लगभग है। इनके रचे 'वुद्धिरासौ' नामक एक ग्रथ का पता है। इसमे चपावती नगरी के राजकुमार और जलधितरगिनी नामक एक रूपवती स्त्री की प्रेम-कहानी वर्णित है। कहानी कल्पित है। इसकी छन्द-सख्या १४० है। भाषा अपभ्रश मिश्रित राजस्थानी है। रचना सरस और मनोहारिणी है। उदाहरण—

घरि घरि कुसुम वास अरिव्यदा, अलि लुटहि अहि निसि तजि न्यदा।
जलधितरगनि कीन वनदा, किय पोडस जनु पूरण चदा॥
चद-मुखी मुख चन्द कीय, चखि कज्जल अवर हार लीय।
घण घटणि छिद्र नितव भरै, मयमत्त सुघा मनमछ्छ करै॥
अति अथि तवोल अमोल मुख, अहिलोक सु अछ्छर कौण सुख।

पृथ्वीराज

राठौड पृथ्वीराज वीकानेर-नरेश राव कल्याणमल के वेटे और राव जैतसी के पोते थे। इनका जन्म स० १६०६ मे हुआ था। इतिहास-प्रसिद्ध महाराजा रायसिंह इनके वडे भाई थे। कर्नल टॉड ने इनके विपय मे लिखा है कि "पृथ्वीराज अपने युग के वीर सामन्तो मे एक श्रेष्ठ वीर थे और पश्चिमीय ट्रूवेडार राजकुमारो की भाति अपनी ओजस्विनी कविता के

---

७ सोही=वही। सुवाण=अच्छी वाणी। मांण=मान। हुंत=से। जाठर=पेट। मेलय=समागम। आराण=युद्ध। पछि=पक्षपात।

द्वारा किसी भी कार्य का पक्ष उन्नत कर सकते थे तथा स्वय तलवार लेकर लड भी सकते थे। इतना ही नही, राजपूताने के कवि समुदाय ने एक स्वर से गुणिता का सेहरा भी इन्ही वीर राठौड के सिर पर बाँधा था।"

उच्चकोटि के कवि एव योद्धा होने के साथ-साथ पृथ्वीराज भगवद्-भक्त भी पूरे थे। भक्तवर नाभादास ने भी अपने 'भक्तमाल' मे इनका गुण-गान किया है—

सवैया गीत श्लोक, वेलि दोहा गुण नव रस।
पिंगल काव्य प्रमाण, विविध गायो हरजस॥
परिदुख विदुख सलाघ्य, वचन रसना जु उच्चारै।
अर्थं विचित्रन मोल, सवै सागर उद्धारै॥
रुकमिनी लता वरनन अनुप, वागीस-वदन कल्याण सुव।
नरदेव उभै भाषा निपुन, प्रथीराज कविराज हुव॥

पृथ्वीराज मुगल सम्राट अकबर के बडे कृपापात्र थे और प्राय शाही दरबार मे रहा करते थे। मुँहणोत नैणसी की ख्यात से पता लगता है कि बादशाह ने इन्हें गागरौन का किला दिया था जो बहुत समय तक इनकी जागीर मे रहा।

पृथ्वीराज ने दो विवाह किये थे। इनकी पहली स्त्री का नाम लालादे था। यह जैसलमेर के रावळ हरराज की पुत्री थी। इसका देहान्त हो जाने पर इन्होंने इसी की बहिन चाँपादे से अपना दूसरा विवाह किया। इन दो स्त्रियो से पृथ्वीराज के कितनी सतानें हुई इसका ठीक-ठीक पता इतिहास ग्रथो से नही लगता। परन्तु इनके सतान हुई थी, यह निस्सन्दिग्ध है। इनके वशज पृथ्वीराजोत बीका कहलाते है जो बीकानेर राज्यान्तर्गत ददेवा के पट्टेदार हैं और छोटी ताजीम का सम्मान रखते हैं। पृथ्वीराज का देहान्त स० १६५७ मे हुआ था।

डिंगल भापा के कवियो मे पृथ्वीराज का स्थान बहुत ऊँचा है। इनके रचे ग्रन्थो के नाम ये है —वेलि क्रिसन रुकमणी री, दसम भागवत रा दूहा, गगा-लहरी, वसदेरावउत और दसरथरावउत ।

(१) वेलि क्रिसन रुकमणी री —यह पृथ्वीराज की सर्वोत्कृष्ण रचना है। इसके दो सस्करण प्रकाशित भी हो चुके है, एक वगाल की रायल एशियाटिक सोसायटी की ओर से और दूसरा हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग की ओर से। पहले सस्करण का सपादन डा० टैसीटरी ने स० १९७३ मे और दूसरे का सूर्यकरण पारीक तथा ठाकुर रामसिह ने स० १९८८ मे किया था। इन दोनो मुद्रित सस्करणो के अन्तिम दोहलो मे वेलि का रचनाकाल स० १६३७ दिया हुआ है—

वरसि अचळ[७] गुण[३] अग[६] ससी[१] सवति, तवियौ जस करि स्री भरतार।
करि श्रवणे दिन राति कठि करि, पामै स्री फळ भगति अपार।।

डा० टैसीटरी ने अपना सस्करण आठ प्राचीन प्रतियो के आधार पर तैयार किया था। इनमे सबसे प्राचीन प्रति स० १६७३ की लिखी हुई थी। शेप सात प्रतियो का लिपिकाल स० १६७६ और स० १७८१ के बीच मे था। हिन्दुस्तानी एकेडेमी वाले सस्करण का आधार डा० टैसीटरी का सस्करण तथा चार प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ थी। ज्ञात होता है, उक्त दोनो सस्करणो के सपादको को जितनी भी हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई उन सब मे उनको वेलि का रचनाकाल स० १६३७ ही लिखा मिला और इसलिए इस विपय मे शका करने का कोई अवसर उनके सामने उपस्थित नही हुआ। हिन्दुस्तानी एकेडेमी वाले सस्करण के सपादको ने तो साफ लिखा है कि 'अन्तिम दोहले ३०५ मे कवि ने प्रथानुसार ग्रथ-समाप्ति का समय स्पष्टत स० १६३७ बता दिया है। इस सवत् के विपय में किसी प्रकार के अपवाद अथवा विवाद को स्थान नही है'।

लेकिन इधर उदयपुर के राजकीय पुस्तकालय, सरस्वती-भंडार, मे वेलि की तीन ऐसी हस्तलिखित प्रतियाँ हमारे देखने मे आई हैं जिनमे उसका रचनाकाल स० १६४४ वैशाख सुदि ३ सोमवार दिया हुआ है। ये तीनो प्रतियाँ भिन्न-भिन्न समय तथा भिन्न-भिन्न स्थानो मे लिपिबद्ध हुई है और एक दूसरी की प्रतिलिपि नही है। इनमे एक प्रति स० १७०१ की, दूसरी स० १७२८ की और तीसरी स० १७९५ की लिखी हुई है। पाठान्तर इनमे बहुत है, पर ग्रथ का निर्माण-काल तीनो में एक ही दिया हुआ है—

(१) सोलह सै संवत चमाळै वरसै, सोम तीज वैसाख सुदि।
रुक्मिणी कृष्ण रहस्य रमण रस, कथी वेलि प्रथ्वीराज कमधि
—स० १७०१ की प्रति।

(२) सोलह सै सवत चमाळै वरखै, सोम तीज वैसाख समधि।
रुषमणि क्रित रहसि रमता, कही वेली पृथ्वीराज कविंघ॥
—स० १७२८ की प्रति।

(३) सौले सै सवत चौमाळीसै वरसै, सोम तीज वैसाख सुदि।
रुक्मणी धरा रहस्य ईसरमत, कहि वेलि प्रिथीदास कमध॥
—स० १७९५ की प्रति।

इण्डियन ऐफेमेरिस को देखने से ज्ञात हुआ कि स० १६४४ की वैशाख सुदी ३ के दिन सोमवार नही, अपितु रविवार था। लेकिन एक दिन का अतर तो उक्त पचाग में प्राय मिलता है। ऐसी दशा मे इस सवत् को सहसा जाली कहकर भी नही टाला जा सकता। अनुमान होता है, उल्लिखित सस्करो के अतिम पद्यों मे जो सवत् (१६३७) दिया हुआ है वह वेलि' को प्रारम्भ करने का समय है। इसका समाप्ति काल सं० १६४४ ही है जैसा

जिस प्रकार एक चतुर सुनार किसी नग की ओर-छोर परीक्षा कर लेने के पश्चात् फिर उसे आभरणो मे बिठाता है, इसी तरह पृथ्वीराज ने भी प्रत्येक शब्द को खूब सोच-विचारकर, पूरी तरह से तोल-जाँचकर, वेलि मे स्थान दिया है। इसका कोई शब्द यहाँ बेमौके नहीं है। प्रत्येक शब्द चित्रोपम, मनोरमता का उत्पादक है और अपने स्थान पर ठीक बैठा है।

पृथ्वीराज ने शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का प्रचुर प्रयोग किया है। स्वरूप बोध और भावोत्तेजन की दृष्टि से इनकी योजना हुई है। परन्तु अलंकारो की प्रचुरता से काव्य मे कहीं क्लिष्टता नहीं आने पाई है, सर्वत्र स्वाभाविकता का पूर्ण आभास मिलता है। शब्दालंकारों मे अनुप्रास तथा वैणसगाई और अर्थालंकार मे उपमा, रूपक एवं उत्प्रेक्षा वेलि मे अधिक मिलते है। उपमा और रूपक की तो इसे खान ही समझना चाहिए। पृथ्वीराज की उपमाओ मे एक विशेष बात देखने मे आती है। वह है, उपमा की पूर्णता। हमारे प्राचीन कवि प्राय आँखो की उपमा कमल से, और मुख की उपमा चन्द्रमा से देते है। इस तरह की उपमाओ मे उपमेय-उपमान के बीच का थोडा सा सादृश्य अवश्य प्रकट हो जाता है पर वर्णन मे सजीवता नहीं आती, न वर्णित विषय का पूरा दृश्य सामने आ पाता है। पर पृथ्वीराज की उपमाओ मे यह बात नहीं है। वे अपनी उपमाओं मे न केवल उपमेय-उपमान का साधर्म्य कथन करते हैं प्रत्युत दोनों के आस-पास के पूरे वातावरण को ही शब्दो मे ला उतारते हैं जिससे भाव सजीव होकर जगमगाने लगता है। यथा—

> सग सखी सीळ कुळ वेस समाणी, पेखि कळी पदिमणी परि।
> राजति राजकुँअरि रायअंगण, उडीयण बीज्ज अम्बहरि[10]॥

---

१० सग मे शील, कुल और उम्र मे समान सखियाँ कमलिनी की कलियो की भाँति दिखाई देती हैं। उनके साथ राजमहल के आँगन में

यहाँ पर कवि रुक्मिणी की उपमा चन्द्रमा से देकर ही अपने कार्य की इतिश्री नही कर दी है, बल्कि रुक्मिणी की सखियो की समता तारो से दिखाकर दोनो के आस पास के समूचे वातावरण का शब्द-चित्र सामने ला रखा है। उपमा-सौन्दर्य के अलावा कविता की एक और विशेषता दृष्टव्य है—सजैस्टिवनैस। पूर्वार्ध मे कवि ने 'पदिमणी' शब्द का प्रयोग तो किया है पर साथ मे सरोवर का कही उल्लेख नहीं है। परन्तु आगे जाकर उत्तरार्द्ध मे चन्द्रमा के साथ स्वच्छ आकाश का वर्णन कर दिया है जिससे स्वच्छ जल-पूरित सरोवर का चित्र स्वत आँखो के सामने आ जाता है।

और भी—

रामा अवतार नाम ताइ रुपमणि, मानसरोवर मेरुगिरि।
वाळकति-किरि हंस चौ वाळक, कनकवेलि बिहुँ पान किरि[11]॥

पाश्चात्य कवि होमर इस प्रकार की उपमाओ के लिए बहुत प्रसिद्ध है। यही विशेषता पृथ्वीराज को भी अन्यान्य डिंगल कवियो से बहुत ऊपर उठा देती है।

वेलि का कला पक्ष जितना पूर्ण है उतना ही पूर्ण इसका भाव पक्ष भी है। दोनो मे से किसकी अधिकता है और किसकी न्यूनता यह नही कहा जा सकता, दोनो का इसमे विलक्षण समन्वय हुआ है। डा० टेसीटरी वेलि की प्रशसा करते हुए लिखते है कि 'यह काव्य कला की दक्षता का एक विलक्षण नमूना है जिसमे आगरे के ताजमहल की तरह, भाव की एकाग्र-

---

राजकुमारी ऐसी शोभायमान हो रही है मानो निर्मल आकाश मे चन्द्रमा तारागण सहित शोभित है।

११ लक्ष्मी का अवतार थी। उसका नाम रुक्मिणी था। सुमेर पर्वतपर दो पत्तोवाली स्वर्ण-लता के समान बाल क्रीडा करती हुई वह ऐसी लगती थी मानो मानसरोवर में हंस का बच्चा।

सहजता के साथ अनेकानेक काव्य गुण-विस्तार का सुखद सम्मिश्रण हुआ है और जिसमे रस एव भाव का सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्य तथा काव्य के बाह्य आकार की निष्कलक शुद्धता को जाज्वल्यमान रूप मे प्रदर्शित किया गया है।

श्री कृष्ण का रुक्मिणी के साथ विवाह हो गया है। रात को वे अपने केलि-गृह मे रुक्मिणी के आने की प्रतीक्षा कर रहे है। बडे बेचैन है। शय्या और द्वार के बीच मे चक्कर लगा रहे हैं। थोडी-सी भी आवाज सुनकर चौक पडते हैं—

ऊभी सहु सखिए प्रससिता अति, क्रितारथ प्री मिळण क्रित।
अटत सेज द्वार विच आहुटि, सुति देहरि घरि समाश्रित[१२]॥

प्रेमातुर श्रीकृष्ण का कितना सुन्दर भाव-चित्र अकित किया गया है, यह कवि के निजी अनुभव और मनोभावो का सजीव चित्राकन है। हमे भी अपने यौवन प्रभात की याद दिलाता है।

अपनी सखियो के साथ रुक्मिणी श्रीकृष्ण के केलि-गृह मे पहुँचती है। श्रीकृष्ण उन्हे बडे आदर के साथ शय्या पर बिठाते है। फिर उनके मुख को बार-बार इस प्रकार देखते हैं जिस प्रकार रक धनको देखता है। श्रीकृष्ण की रतीच्छा देखकर सखियाँ भौंहो से हँसती हुई एक-एक करके कमरे से बाहर चली जाती हैं—

वर नारि नेत्र निज वदन विलासा, जाणियौ अतहकरण जई।
हँसि हँसि भ्रूहे हेक हेक हुइ, ग्रिह बाहिर सहचरी गई[१३]॥

---

१२ (इधर) प्रिय मिलन के निमित्त सब सखियो से अति प्रशसिता रुक्मणी खडी की गई। (उधर) श्री कृष्ण शय्या और द्वार के बीच घूम रहे है। और आहट पर कान देकर केलिगृह मे चले जाते है।

१३ वर और वधू के नेत्रो तथा उनकी चेष्टाओ से जब उनके आत-

इसी भाव को विहारीलाल ने यो व्यक्त किया है—

पति रति की बतियाँ कही, सखी लखी मुसकाय ।
कै कै सबै टला टली, अली चली मुसकाय ॥

लेकिन दोनो की भावाभिव्यक्ति मे अन्तर है। वहुत अन्तर है। विहारी के नायक को अपनी नायिका से रति क्रीडा के लिए कहना पड रहा है। इसलिए उसमे कुछ रफनैस, कुछ नग्नता, कुछ कामोन्माद की बू आ गई है। परन्तु पृथ्वीराज के वर्णन मे यह बात नही है। उसमे शिष्टता, सस्कारिता और लज्जा-शीलता का पूरा-पूरा पालन हुआ है। साथ ही उसमे काव्योचित कोमलता और भाव की गभीरता भी अधिक है।

वेलि का प्रकृति-वर्णन डिंगल साहित्य को पृथ्वीराज की अपनी एक अपूर्व देन है। यह प्रकृति-वर्णन षट्ऋतु वर्णन के रूप मे है। लेकिन पर-परागत और पिष्टपेषित नही है, अपनी नवीनता और मौलिकता को लिए हुए है। रात्रि, प्रभात, ग्रीष्म, वर्षा, वसत आदि के मनोरम दृश्य एक के वाद एक इस प्रकार अकित किये गये है कि देखकर मन रस-मग्न हो जाता है। ऐसा प्रतीत होने लगता हे मानो पाठक कोई ग्रन्थ नही पढ रहा है, वल्कि एक ऐसा चलचित्र देख रहा है जिसमे रग और प्रकाश दोनो का अनुकूल सामजस्य हे। इस प्रकृति-वर्णन की दो वहुत वडी विशेपताएँ हैं—पर्यवेक्षण की सूक्ष्मता और वातावरण की तीव्रता। कवि ने राजस्थान की ऋतु परि-वर्तन सवधी विभिन्न विशेपताओ को वडी वारीक निगाह से देखा है और देखकर उन्हें हू-वहू शब्दो मे उतारने की सफल चेष्टा की है। ग्रीष्म ऋतु

रिक भावो को जान लिया तव भौहो से हँसती हुई एक-एक होकर सखियाँ महल के वाहर चली गई।

के वर्णन मे राजस्थान की गर्मी की प्रचडता तथा लू का और वर्षा ऋतु के वर्णन मे आकाश मे जल्दी जल्दी इधर-उधर दौडते हुए वादलो एव वर्षा की झडी का वर्णन इस दृष्टि से विशेषकर के दर्शनीय है। पढते-पढते राजस्थान की धरती का चित्र सामने आ जाता है। कवि के शब्दो ने तूलिका की भाँति चित्र खीचे है—

काळी करि काँठळि ऊजळ कोरण, धारे श्रावण धरहरिया।
गळि चालिया दिसोदिसि जळध्रम, थभि न विरहणि नयण थिया॥१९५॥
वरसतै दडड नड अनड वाजिया, सघण गाजियौ गुहिर सदि।
जळनिधि ही समाइ नही जळ, जळवाळा न समाइ जळदि[14]॥१९६॥

ऐसा सुन्दर, स्वाभाविक और सुरम्य प्रकृति-चित्रण तो सस्कृत के महाकवियो से ही वना है। इसमे कवि की भाव-तल्लीनता, चित्रकार का चित्र कौशल और वैज्ञानिक की सूक्ष्म दृष्टि सन्निहित है।

इसमें सदेह नही कि वेलि शृगार रस का ग्रथ है। परन्तु केवल शृगार रस की पिपासा-शान्ति के लिए ही कवि ने इसकी रचना की हो सो वात भी नही है इसका आध्यात्मिक पक्ष भी है जिसका स्पष्ट उल्लेख ग्रन्थ के अतिम भाग मे हुआ है। अन्त मे जाकर कवि ने सारे ग्रन्थ को ईश-भक्ति

---

१४ काले काले वर्तुलाकार मेघो और उनके प्रान्त भागस्थ श्वेत वादलो की कोरवाली घटाओ सहित श्रावण मूसलाधार वृष्टि से पृथ्वी को जल प्लावित करने लगा। दिशा-दिशा मे वादल पिघल चले। वे थमते नहीं। विरहणि स्त्री के नेत्र हो रहे हैं। ॥१९५॥ वडे जोर से वरसने से पर्वतो के नाले शब्दायमान होने लगे। सघन मेघ गभीर शब्द से गर्जने लगा। समुद्र मे भी जल नही समाता और विजली वादलो मे नही समाती है॥१९६॥

का रूप दे दिया है और इसे सासारिक सुख-वैभव, यश-ऐश्वर्य आदि का साधन तथा जीवन-मुक्ति की निसैनी एव स्वर्गलोक की सीढी बतलाया है—

प्रिथु वेलि कि पच विध प्रसिध प्रणाळी, आगम नीगम कजि अखिळ।
भुगति तणी नीसरणी मडी, सग्गलोक सोपान इळ[१५] ॥

पृथ्वीराज डिंगल और ब्रजभाषा दोनो मे निष्णात थे। वे यदि चाहते तो वेलि की रचना ब्रजभाषा मे भी कर सकते थे। परन्तु ऐसा करना शायद उन्होने उचित नहीं समझा। कारण स्पष्ट है। ब्रजभाषा मे माधुर्य है, मार्दव है। लेकिन उसमे ओज की कमी है। और एक ऊँचे काव्य की भाषा मे कोरे माधुर्य से काम नहीं चलता। माधुर्य के साथ-साथ उसमे ओज भी होना चाहिए जो डिंगल की एक खास विशेषता है। वेलि को ब्रजभाषा मे लिखने का मतलब यह होता कि पृथ्वीराज को ओज गुण से वञ्चित रहना पडता और इसके बिना वेलि मे वह बल, वह उल्लास और वह तेज कदापि नहीं आ पाता जिसके दर्शन उसमे आज हमे पग-पग पर होते है। इस विषय मे डा० टैसीटरी का कहना है, और उनका यह कहना सच है कि 'यदि पृथ्वीराज ने वेलि को ओज-विहीन पिंगल मे लिखा होता तो वे एक अत्यन्त भिन्न रचना कर पाते जो सगीत-माधुर्य मे वर्तमान ग्रन्थ की अपेक्षा कदापि उत्तम न होती और स्वाभाविक सरलता मे तो घटिया रहती ही।'

पृथ्वीराज के जीवन-काल मे और उसके बाद भी अनेक वर्षों तक वेलि का राजस्थान मे बडा सम्मान रहा। उनके समसामयिक कवियो मे से किसी ने इसको वेद-पुराण और किसी ने अमृत की वेल कहकर सराहा।

---

१५ पृथ्वीराज-रचित यह वेलि क्या है, पृथ्वी पर पाँच प्रकार की प्रसिद्ध प्रणाली है। (यथा) शास्त्र वेद सर्व प्रकार की कार्य-सिद्धि, मुक्ति की बनी-बनाई निसैनी और स्वर्गलोक की सीढी है।

(१) रुकमणि गुण लखण रूप गुण रचवण, वेलि तास कुण करै वखाण।
पाँचमो वेद भाखियो पीथल, पुणियौ उगणीसमौ पुराण॥
केवल भगत अथाह कलावत, तैं जु किसन-श्री गुण तवियौ।
चिहुं पाचमो वेद चाळवियौ, नव दूणम गति नीगमियौ॥
मैं कहियौ हर भगत प्रिथीमल, अगम अगोचर अति अचड।
व्यास तणा भाखिया समोवड, ब्रह्म तणा भाखिया वड॥

(२) वेद बीज जळ वयण, सुकवि जड मडेस धर।
पात दूहा गुण पुहप, वास भोगवै लखमीवर॥
पसरी दीप प्रदीप, अधिक गहरी आडवर।
मन सुध जे जाणेत, अरत फळ पामी अम्मर॥
विसतार कीध जुग-जुग विमळ, धणी किसन कहणार धन।
अमृत वेलि पीथल अचळ, तैं राखी कलियाण तन॥

कुछ इर्ष्यालु लोगो को इससे डाह भी हुई[१६]। लेकिन उनकी यह सारी डाह वेलि के काव्य-सौष्ठव से टकराकर चूर-चूर हो गई। वेलि की लोकप्रियता का अनुमान इसी बात से हो सकता है कि राजस्थान के प्राचीन पुस्तकालयो और जैन भडारो मे शायद ही कोई ऐसा मिलेगा जहाँ इसकी दो-चार प्रतियाँ सुरक्षित न हो। इसके सिवा डिंगल मे यही एक ऐसा ग्रन्थ है जिस पर प्राचीन टीकाएँ भी उपलब्ध होती हैं। इन टीकाओ मे तीन टीकाएँ राजस्थानी भाषा मे और एक सस्कृत मे है।

(२) दसम भागवत रा दूहा। यह पृथ्वीराज का दूसरा, ग्रन्थ है। इसमे १८४ दोहे हैं। इसका विषय कृष्ण-भक्ति है। इसकी भाषा भी बहुत प्रौढ और परिमार्जित है। शान्त रस की बडी अनूठी रचना है।

---

१६ मुशी देवी प्रसाद, राजरसनामृत, पृ० ४३

(३) दशरथरावउत। इसमें भगवान श्री रामचन्द्र की स्तुति के ५० के लगभग दोहे हैं। रचना सरस है।

(४) बसदेरावउत। इसमे १६५ दोहे है। विषय है, भगवान श्रीकृष्ण का गुणानुवाद। ग्रथ श्रीकृष्ण-भक्ति सबधिनी मौलिक उक्तियो से भरा पडा है।

(५) गगा-लहरी। इसमे ८० के लगभग दोहे है जिनमे गगाजी की महिमा गायी गई है। बडी लोकप्रिय रचना है। इस विषय के अनेक ग्रन्थ हिन्दी और डिंगल मे पाये जाते है। परन्तु पृथ्वीराज की यह रचना अपने रग-ढंग की एक ही है।

उपरोक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त पृथ्वीराज-रचित वीर रसात्मक फुटकर गीत, दोहे और कवित्त भी राजस्थान मे बहुत प्रचलित है। इनकी ये स्फुट रचनाएँ अपने युग की अनुभूति को प्रत्यक्ष करती है और इनमें अकबर के आतक के नीचे कराहती हुई हिन्दू जनता की दर्द भरी पुकार साफ सुनाई पड़ती है। इनमे असाधारण बल, प्रचड प्रवाह एव अद्भुत तेज है और एक खास प्रकार का व्यग्य भी है जो चोट करने के साथ-साथ सावधान भी करता है।

पृथ्वीराज की कविता के कुछ उदाहरण दिये जाते है—

(प्रभात वर्णन)

गत प्रभा थियी ससि रयणि गळती, वर मन्दा सइ वदन वरि
दीपक परजळती इ न दीपै, नासफरिम सू रतनि नरि ॥१८२॥

(रात्रि के व्यतीत होने पर चन्द्रमा कान्ति-हीन हो गया, जैसे पति के अस्वस्थ होने मे पतिव्रता का सुन्दर मुख। दीपक जलता हुआ भी प्रकाश नहीं करता, जैसे आज्ञा-भग हो जाने से (हकूमत) न रहने से नरश्रेष्ठ (राजा)।

मेली तदि साथ सुरमण कोक मनि, रमण कोक मनि साध रही।
फूले छडी वास प्रफूले, ग्रहणे सीतळता इ ग्रही ॥१८३॥

(उस समय चक्रवाक के मन की रमण करने की वाछा पूर्ण हुई, परन्तु कोकशास्त्रानुसार रमण करनेवाले (नायक-नायिकाओ) के मन की इच्छा निवृत्त हुई। प्रफुल्लित फूलो ने अपनी सुगन्ध छोडी और आभूषणों ने शीतलता ग्रहण की।)

धुनि उठी अनाहत सख भेरि धुनि, अरुणोदय थियौ जोग अभ्यास।
माया पटल निसामै भजे, प्राणायामे ज्योति प्रकास॥१८४॥

(शख और भेरी का शब्द रूपी अनाहत नाद उठा। सूर्योदय रूपी योगाभ्यास हुआ। रात्रिरूपी माया का परदा हट गया। प्राणायाम मे परम ज्योति का प्रकाश हुआ।)

सयोगिणि चीर रई कैरव श्री, घर हट ताळ भमर गोघोख।
दिणयर ऊगि एतरा दीधा, मोखियाँ बध बधियाँ मोख॥१८५॥

(सूर्य ने उदय होकर सयोगिनी स्त्रियो के वस्त्र, मथन-दड, कुमुदिनी की शोभा—इतनी मुक्त खुली हुई वस्तुओ को बधन दे दिया और घर, हाट, ताले, भ्रमर और गोशालाएँ—इतनी बन्द वस्तुओ को मुक्त किया।)

वाणिजाँ वधू गो वाछ असइ विट, चोर चकव विप्र तीरथ वेळ।
सूर प्रगटि एतला समपिया, मिळियाँ विरह विरहियाँ मेळ॥१८६॥

(सूर्य ने प्रगट होकर वणिको को अपनी स्त्रियो से, गौओ को वछडो से, और कुलटाओ को लपट पुरुषों से—इतने मिले हुओ को वियोग दिया। और चोरो को उनकी स्त्रियो से, चकवो को चकवियो से, और विप्रो को तीर्थ की लहरो से—इतने बिछुडे हुओ को मिलन सयोग दिया।)

दोहे

काया लागी काट, सिकळीगर छूटै नही।[17]
निरमळ हुवै निराट, भेट्यां नूं भागीरथी ॥१॥
मौडो आयो मात, तैं वेगो ही तारियो।
पडियो रहसूं पाँय, भाठो हुय भागीरथी ॥२॥
जव तिल जितरो हेक, हेक कणूकी हाड रो।
मुवां पछै ही माय, भेळै गत भागीरथी ॥३॥
पुळियं मग पुळियाह, हुवै दरस अदरस हुवा।
जळ पैठा जळियाह, मदा कम भागीरथी ॥४॥

—गंगा लहरी

घर वाकी दिन पाधरा, मरद न मूकै माण।
घणां नरिदां घेरियो, रहै गिरदां राण ॥५॥
माई एहडा पूत जण, जेहडा राण प्रताप।
अकबर सूतो ओझकै, जाण सिराणै सांप ॥६॥
अकबर समँद अथाह, सूरापण भरियो सजळ।
मेवाडो तिण माह, पोयण फूल प्रतापसी ॥७॥

—फुटकर

सॉयाजी

सॉयाजी झूला खाँप (शाखा) के चारण और ईडर राज्य के लीलछा गाँव के निवासी स्वामिदास के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म स० १६३२ मे और देहान्त स० १७०३ मे हुआ था। ईडर-नरेश राव कल्याणमल

१७ काट=जग। मौडो=देरी से। वेगो=जल्दी। भाठो=पत्थर। हेक=एक। कणूकी=टुकडा। पुलियाह=चले। पाधरा=अनुकूल। मूकै=छोडता है। पोयण=कमल।

इनके आश्रयदाता थे जिन्होंने इनको एक लाखपसाव और कुवावा नामक एक गांव प्रदान किया था।

सांयाजी भगवान श्री कृष्ण के अनन्य भक्त थे। इनकी कविता कृष्ण भक्ति से ओतप्रोत है। भाषा इनकी डिंगल है जिस पर गुजराती का भी थोड़ा-सा रंग लगा हुआ है जो स्वाभाविक है, क्योंकि ये काठियावाड़ी थे। इनके दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं, रुक्मिणी-हरण और नागदमण।

रुक्मिणी-हरण में श्रीकृष्ण-रुक्मिणी के विवाह का वर्णन है। इसकी छन्द संख्या ४३६ है। इसके संबंध में एक किंवदन्ती राजस्थान में प्रचलित है। कहा जाता है कि राठौड़ पृथ्वीराज कृत 'वेलि क्रिसन रुक्मिणी री, और 'रुक्मिणी-हरण' दोनों मुगल सम्राट अकबर के पास अवलोकनार्थ भेजे गये थे। बादशाह ने पहले 'वेलि' को सुनकर फिर 'हरण' को सुना। अन्त में 'हरण' की रचना को श्रेष्ठतर निर्णीत करके श्लेष और व्यंग्य में पृथ्वीराज से कहा—"पृथ्वीराज तुम्हारी 'वेल' को 'हरण' चर गया।" इस प्रकार बादशाह ने 'वेलि क्रिसन रुक्मिणी री' को घटिया और 'रुक्मिणी हरण' को बढ़िया बताया। परन्तु यह बात मानने योग्य नहीं है। 'वेलि क्रिसन रुक्मिणी री' के साथ 'रुक्मिणी-हरण' का मुकाबला ही नहीं हो सकता। दोनों में आकाश-पाताल का अंतर है। 'वेलि' काव्यकला की दृष्टि से जहाँ बहुत उच्च कोटि का ग्रन्थ है वहाँ 'रुक्मिणी हरण' में काव्यत्व का कहीं पता भी नहीं है। यह एक बहुत साधारण श्रेणी का वर्णनात्मक ग्रन्थ है।

रुक्मिणी-हरण की अपेक्षा सांयाजी का 'नागदमण' पर्याप्त सजीव और पुष्टता लिए हुए है। यह एक छोटा-सा खंड काव्य है जिसमें कालिय-मर्दन की कथा कही गई है। इसमें १२९ छन्द हैं—१२४ भुजंग प्रयात, चार दोहे और एक छप्पय। इसमें कृष्ण की किशोरावस्था, यशोदा के वात्सल्य, गोपियों के प्रेम और कृष्ण-कालिय-युद्ध का चित्रोपम वर्णन है। डिंगल की

प्रासादिकता और ओज का यह ग्रन्थ एक अच्छा नमूना है। सांयाजी की रचना के दो उदाहरण नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

जदूनाथ काळी समी वाथ जोडै घणी भीम चाली चडी वात घोडै।
उभा गाय गोवाळ झूरत आरैं, हुहाकार हुक्कार ससार सारैं॥
सुणै वात आघात माता सनेही, जसोदा ढळी कद्दळी खम जेही।
सवाहे सखी लार हाली सयाणी, रहावी विचाळै थकी नदराणी॥
तवे नद री नारि आहीर टोळै, खडे आपडे हेक हेका खलोळै।
जुवै जोपिता जुथ्थ भेळी जसूदा, वपैयो हुई कानव्ही मेघ वुन्दा॥
विहूं लोचनै नीर धारा वहती, कनैयो कनैयो जसोदा कहती।
कलिंदा तणै आइ लोटत काठै, गयो जाणि चिंतामणी रग गाठै॥

—नागदमण

छंद जंफताळ

प्रगट्या क्रिसन वसुदेव जादव पता
श्री हुई रुखमण राव भीमक सुता ॥१॥
विमळ पिता मात कुळ छात जणावियौ
लार भरतार अवतार रुखमण लियौ ॥२॥
भळभळा राजहृम राजकुंवरी भली
एह छै रुखमणी रूप जुग ऊपली ॥३॥
मात पित पूत परवार बैठा मतौ
सोझियौ वाद विवाह कारण सुतौ ॥४॥
भाखियौ भीम मुख जोय चवदै भवन
कुवर वर मूझ एक सूझै क्रिसन ॥५॥

रुखमियो जाणि घ्रत जाळिणी राळियौ
भला भीकम तुम्हें वर भाळियौ ॥६॥

—रुक्मिणीहरण

दुरसाजी

ये आढ़ा गोत्र के चारण थे। इनका जन्म स० १५९२ मे जोधपुर राज्यान्तर्गत धूंदला नामक गाँव मे हुआ था। इनके पिता का नाम मेहाजी और दादा का अमराजी था। ये बहुत छोटी अवस्था मे पितृ-विहीन हो गये थे। इसलिए बगडी गाँव के ठाकुर प्रतापसिंह ने इनका पालन-पोषण किया और वयस्क होने पर अपने यहाँ नौकर भी रख लिया। ठाकुर प्रतापसिंह की प्रशसा मे लिखा हुआ दुरसाजी का एक दोहा मिला है जिसमे उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाशित की गई है—

माथै मावीतांह, जनम रुणी क्यावर जितौ।
सोहड सुघ पातांह पाळणहार प्रतापसी[१८]॥

कहा जाता है कि दुरसाजी का मुगल दरबार मे बडा सम्मान था और बादशाह अकबर ने इनको लाखपसाव भी प्रदान किया था। इनके मुगल दरबार मे प्रवेश करने तथा सम्राट अकबर द्वारा सम्मानित होने आदि की कुछ दन्तकथाएँ राजस्थान मे प्रचलित हैं जो दोहराते-दोहराते अब इतिहास के रूप मे बदल गई हैं। पाठको की जानकारी के लिए इन दन्तकथाओ का साराश हम यहाँ देते है—

---

१८ वीरो और सुकवियो का पालन करनेवाले हे प्रतापसिंह! माता के जन्मदान देने के समान मेरे सर पर तेरा एहसान है।

(१) एक बार सोजत के मार्ग से होकर सम्राट अकबर आगरे से अहमदाबाद की तरफ जा रहा था। रास्ते मे सोजत उसके ठहरने का एक प्रधान स्थान था जहाँ से लेकर ठेठ गूँदोच के डेरे तक उसके राह-प्रवध की जिम्मेदारी बगडी के ठाकुर प्रतापसिंह के ऊपर थी। अत प्रतापसिंह ने यह काम दुरसाजी के सिपुर्द किया। उन्होंने सारे काम को वडी चतुराई से सँभाला जिससे वादशाह वहुत खुश हुआ और लाखपसाव तथा सेवा का प्रशसा-पत्र देकर उसने इनकी प्रतिष्ठा वढाई। यही पर इनकी वादशाह से सलामी भी हुई।

(२) जोधपुर के लक्खाजी वारहठ अकवर के दरवारी कवि थे। वे दुरसाजी को एक दिन अपने साथ शाही दरवार मे ले गये और उनकी वादशाह से सलामी करवाई। इस सुकृपा के वदले मे दुरसाजी ने लक्खाजी की प्रशसा मे यह दोहा वनाया—

दिल्ली दरगह अंब-तरु, ऊँचौ फळद अपार।
चारण लक्खौ चारणाँ, डाळ नमावणहार[१९] ॥

(३) एक वार दुरसाजी पुष्कर-स्नान के लिए अजमेर की ओर गये। उस समय सम्राट अकवर का अभिभावक वेरामखाँ किसी कारणवश अजमेर आया हुआ था। दुरसाजी ने उससे भेंट करने की वडी कोशिश की लेकिन उसके नौकर-चाकरो ने भेंट न होने दी। इस पर उससे भेंट करने का इन्होंने एक नया उपाय ढूढ निकाला। एक दिन सन्ध्या को जव वेरामखाँ कही घूमने को अपने डेरे से वाहर जा रहा था तव ये उसके रास्ते से थोडी दूर पर जाकर खडे हो गये और निम्नोक्त दोहे को जोर-जोर से पढने लगे—

---

१९ दिल्ली-दरवार अपार फल देनेवाला ऊँचा आम्र-वृक्ष है। हे चारणो! चारण लक्खा उस वृक्ष की डाली को नीचे झुकानेवाला है।

आफताव अधेर पर, अगनी पर ज्यूं नीर।
दुरसा कवि का दुक्ख पर, है वहराम वजीर॥

इस पर बैरामखाँ का ध्यान इनकी ओर आकर्षित हुआ उँगली के इशारे से उसने इन्हें अपने पास बुलाया। पास जाकर दुरसाजी ने उपरोक्त दोहे के अतिरिक्त ये तीन दोहे और भी सुनाये —

तूं वन्दा अल्लाह का, मैं वन्दा तेराह।
तेरा है मालिक खुदा, तू मालिक मेराह॥
पीर पराई मेटणा, एह पीर का काम।
मेरी पीडा मेट दे, वडा पीर वहराम॥
विभीषण कूं वारिधि तट, भेटे वो एक राम।
अब मिलग्या अजमेर में, दुरसा कूं वेराम॥

सुनकर वेरामखाँ बहुत प्रसन्न हुआ और दुरसाजी को अपने डेरे पर आने का निमन्त्रण दिया। दूसरे दिन दुरसाजी उसके डेरे पर गये। वहाँ वेरामखाँ ने इनकी वडी आवभगत की और एक लाख रुपया पुरस्कार मे दिया। दो चार दिन तक दुरसाजी वही रहे। एक दिन वात ही वात मे इन्होंने वेरामखाँ से कहा कि वादशाह से मिलने की मेरी वडी इच्छा है और यह अलभ्य अवसर आप ही की कृपा से प्राप्त हो सकता है। इस पर वेरामखाँ ने इनसे कहा कि दो माह वाद दिल्ली आना, तुम्हारा मुजरा करवा देंगे।

ठीक दो महीने के वाद दुरसाजी दिल्ली पहुंचे, और वेरामखाँ से मिले। प्रतिज्ञानुसार वह इन्हें शाही दरवार मे ले गया। जिस समय वादशाह दरवार मे आया, इन्होंने वडे ऊँचे शब्दो मे उसकी विरदावली कही और फिर मुजरा किया। मुजरे के वक्त वादशाह ने इनसे पूछा—"तुम कौन हो?" प्रत्युत्तर मे दुरसाजी ने भी वापस यही प्रश्न वादशाह से किया—"तुम कौन हो?" इस पर वादशाह ने थोडी सी उग्र दृष्टि

से इनकी तरफ देखा और बोला—"तूं मुझे नहीं पहिचानता ?" "पहिचानता हूं"—दुरसाजी ने उत्तर दिया। फिर डिंगल भाषा का यह गीत सुनाया—

(गीत छोटो सांणोर)

बाणावळि लखण (कै तूं) अरजण बाणावळि[२०]
सरदस रोळण (कै तूं) कस-मॅहार॥
सासौ भाज हमायु समोभ्रम (तूं)
अकब्बर साह कवण अवतार॥१॥
निगम सास मानव गत नाही,
असपत कय सांचो अणवार।
बेघण भ्रमर कै तूं झल-बेघण,
गिरतारण कै तूं गिरधार॥२॥

---

२० तू लक्ष्मण की बाणावली है या अर्जुन की बाणावली। तू रावण को मारनेवाला है या कंस का महारक है। हे हुमायूं के पुत्र अकबर! तू मेरे इस संशय को दूर कर कि तू किसका अवतार है॥१॥ शास्त्र और मनुष्य की गति नहीं है। हे बादशाह! सच कह दे कि तू भ्रमर का वेधक है या मच्छ का। तू गिरि-तारण (रामचन्द्र) है या गिरधारी (कृष्ण) ॥२॥ तेरी करामात जोगी से भी परे है। तू मनुष्य नहीं, कोई बडा अवतार है। तू मेघनाद को मारनेवाला है या कर्ण का विध्वसक। तू रघुवंशी है या यदुवंशी॥३॥ हे दिल्ली के स्वामी! बतला कि तू इनमें से कौन है, शेष या मनुष्य। तू अतुल्य बलवानों को गिरानेवाला है या कालिय नाग का नाथनेवाला॥४॥ (कवि पूछता है कि हे अकबर! तू मुझे बतला कि लक्ष्मण, अर्जुन, राम और कृष्ण इन चारों में से तू कौन है ?)

जोगी परा करामत जोते,
(तूं) आदम नही वडो कोड अंस।
घूंसण घणरव (कै) करण विघूंसण,
वस रघू कै तूं जदूवंस ॥३॥
आख दलीस कूण तूं इण मे
अनन्त कै नर प्रगट यहाँ।
वीर अतळवळ ढाहणवाळो
कै काळी नाथणहार कहाँ ॥४॥

इस गीत से वादशाह बहुत प्रभावित हुआ और उसने दुरसाजी को एक क्रोडपसाव दिया।

(४) जिस समय अकवर के दरवार मे महाराणा प्रताप की मृत्यु (स० १६५३) का समाचार पहुँचा, उस समय दुरसाजी भी वही उपस्थित थे। प्रताप जैसे वीर के निधन से अकवर को वडा दु ख हुआ और एक लम्बी साँस खीच डवडवाई आँखो से वह पृथ्वी की ओर देखने लगा। दुरसाजी वादशाह की मनोव्यथा को ताड गए और उसकी मुखाकृति से उसके दिल के भाव को समझकर उन्होने उसी वक्त यह छप्पय कहा—

अस लेगो अण दाग, पाघ लेगो अण नामी।
गो आडा गवडाय, जिको वहतो घुर वामी॥
नवरोजे नहं गयो, न गो आतसाँ नवल्ली।
न गो झरोखाँ हेठ, जेथ दुनियाण दहल्ली॥
गहलोत राण जीती गयो, दसण मूंद रसणा डसी।
नीसास मूक भरिया नयण, तो मृत साह प्रतापसी[२१]॥

---

२१ हे गुहिलोत राणा प्रतापसिंह! तेरी मृत्यु पर वादशाह ने दातो के वीच जीभ दवाई और निश्वास के साथ आँसू टपकाए, क्योकि तूने अपने

इसे सुनकर दरबारियो ने अनुमान किया कि बादशाह अवश्य दुरसाजी पर क्रुद्ध होगा परन्तु उसने तो उलटा उन्हे इनाम दिया और कहा कि इसी ने मेरे भाव को ठीक-ठीक समझा है।

थोडे-बहुत अन्तर के साथ उपरोक्त कहानियाँ राजस्थान मे कई वर्षों से प्रचलित हैं,पर इनमे से किसी की पुष्टि अकबर के समय की लिखी मुसलमानी तवारीखो तथा राजस्थान की प्राचीन ख्यातो आदि से नही होती। अकबर नामे और आईने-अकबरी मे जहाँ अकबर के प्राय सभी बडे-बडे दरबारियो, कवि-कोविदो और कलाकारो का सन्निवेश हो गया है वहाँ दुरसाजी का नामोल्लेख भी नही है। यदि दुरसाजी को लाखपसाव या क्रोडपसाव मिला होता तो उसका जिक्र अकबरनामे अथवा आईने-अकबरी मे अवश्य होता। क्योंकि लाखपसाव, क्रोडपसाव आदि का मिलना उन दिनो बडे आदर की बात समझी जाती थी और जिस किसी को इतने बडे पुरस्कार मिलते थे उनका निर्देश उक्त ग्रन्थो मे कर दिया जाता था। इसके सिवा एक बात और भी है। दुरसाजी ने अपनी "विरुद-छहत्तरी" मे अकबर के लिए 'अकबरियो' 'अधम' 'लालची' आदि शब्दो का प्रयोग किया है जो अकबर के प्रति उनकी असीम घृणा को सूचित करते हैं। अकबर द्वारा सम्मानित कवि ही अकबर की घोर निन्दा करे यह बात भी कुछ कम समझ मे आती है। इसे तो कृतघ्नता की पराकाष्ठा ही समझना चाहिये। फिर अकबर जैसे प्रतापी सम्राट की निन्दा करके भी क्या दुरसाजी उसके दरबार मे

घोडे को दाग नही लगने दिया, अपनी पगडी किसी दूसरे के सामने नही झुकाई। तू अपने यश के गीत गवा गया तू अपने राज्य के धुरे को बाँये कधे मे चलाता रहा, नौरोज मे नही गया, न शाही डेरो मे गया। कभी शाही झरोखे के नीचे खडा न रहा। तेरा रोब दुनियाँ पर गालिब था। अत तू सब तरह से जीता।

बने रह सकते थे, यह बात भी विचारणीय है। वस्तुत ये दन्तकथाएँ दुरसाजी जैसे यशस्वी कवि और अकबर जैसे महान् सम्राट दोनों के गौरव के अनुकूल नही है। इसके सिवा विषय की दृष्टि से भी इनमें परस्पर बहुत विरोध है। जो दुरसाजी एक स्थान पर अकबर को श्री रामचन्द्र और श्रीकृष्ण का अवतार बतलाते हैं वही दूसरे स्थान पर उसे 'अधम' कहकर सम्बोधित करते हैं। यह कैसे सभव हो सकता है? साराश यह कि दुरसाजी का अकबर के दरबारी कवि होने तथा अकबर द्वारा उनको लाखपसाव, क्रोडपसाव आदि मिलने की जो बातें कही जाती हैं उनमे कोई ऐतिहासिक तथ्य नही है। दुरसाजी के यश तथा अपनी जाति के महत्व को बढाकर बतलाने के लिए चारण लोगो ने इनको गढ लिया है। कहना न होगा कि जिन लोगो ने ये कहानियाँ गढी हैं उनको अकबरी दरबार के ठाट-बाट और शिष्टाचार आदि विषयक बातो का कुछ भी ज्ञान न था। किसी साधारण श्रेणी के क्षत्रिय नरेश के राज-दरबार को देखकर ही उन्होंने इन कहानियो की कल्पना कर ली है।

दुरसाजी निरे कवि ही न थे, योद्धा भी थे। कहते हैं कि स० १६४० मे जिस समय सम्राट अकबर ने सीसोदिया जगमाल की सहायता के लिये जोधपुर के रायसिंह चन्द्रसेनोत और दाँतीवाडा के स्वामी कोलीसिंह की अध्यक्षता मे एक सेना सिरोही के राव सुरताण के विरुद्ध भेजी उस समय दुरसाजी भी रायसिंह के साथ थे। आबू के पास दताणी नामक स्थान पर भयकर रक्तपात और भीषण कटाकटी हुई जिसमे रायसिंह, कोलीसिंह, जगमाल इत्यादि मारे गये और दुरसाजी के भी बहुत से घाव लगे। युद्ध के समाप्त होने पर राव सुरताण और उसके सरदार जब रण-भूमि का निरीक्षण कर रहे थे तब उन्होंने खून से लथपथ दुरसा जी को वहाँ पडा देखा और एक साधारण सिपाही समझकर इन्हें भी दूध पिलाना (मारना) चाहा। परन्तु तलवार को म्यान से निकाल कर ज्यो ही एक आदमी

इनकी तरफ बढा त्यो ही ये बोल उठे—"मुझे मत मारो मैं राजपूत नही हूं, चारण हूं"। इसपर इनसे कहा गया कि यदि तुम चारण हो तो इस देवडा समरा की प्रशसा मे जो अभी-अभी काल-कवलित हुआ है, कोई कविता कहो। इस पर दुरसाजी ने यह दोहा सुनाया—

घर रावाँ जस डूगरा, ग्रद पोताँ सत्र हाण।
समरै मर्‌ण सुधारियौ, चहुँ थोकाँ चहुवाण[22]॥

सुनकर राव सुरताण बहुत खुश हुआ। पालकी मे बिठाकर वह इन्हे अपने साथ घर लिवा ले गया और इनके घावो मे पट्टियाँ बधवाई। कालान्तर मे राव सुरताण ने इन्हें अपना पोलपात बना लिया और क्रोडपसाव के साथ पेशुवा और साल नामक दो गाँव देकर इनकी प्रतिष्ठा बढाई।

दुरसाजी के दो स्त्रियाँ थी जिनसे इनके चार पुत्र हुए—भारमलजी, जगमलजी, सादूलजी, और किसनाजी। ये प्राय अपने सबसे छोटे बेटे किसनाजी के साथ पाँचेटिया मे रहते थे। वही स० १७१२ मे इनका देहान्त हुआ।

दुरसाजी राजस्थान के बहुत लोकप्रिय और यशस्वी कवि है। कविता के नाम से जितना धन, जितना यश और जितना मान इनको मिला उतना राजस्थान के किसी कवि को आज तक प्राप्त नही हुआ। यदि किसी कवि की ख्याति को उसकी काव्योच्चता का मापदड माना जाय तो इस दृष्टि से दुरसाजी का स्थान निस्सदेह बहुत ऊचा है। इनके लिखे तीन ग्रन्थ बतलाए जाते है "विरुद छहत्तरी', 'किरतार बावनी' और 'श्री कुमार अज्जाजी नी भूचर मोरी नी गजगत'। इनमे 'विरुद छहत्तरी' तो वास्तव मे इन्ही की

---

२२ चौहाण समरा ने चारो तरफ से अपनी मृत्यु को सार्थक किया। अर्थात् उसने राव सुरताण की भूमि की रक्षा की, पहाडो की प्रशसा करवाई, अपने वशजो के लिए सम्मान छोड गया और शत्रुओ को हानि पहुचाई।

लिखी हुई है। परन्तु शेष दो ग्रन्थो को इनके रचे मानने का कोई दृढ आधार नही है। इन ग्रन्थो के अतिरिक्त इनके लिखे फुटकर गीत-कवित्त भी राजस्थान मे वहुत प्रचलित हैं। दुरसाजी की भाषा विशुद्ध डिंगल का उत्कृष्ट नमूना है। कविता वहुत सरल एव वीरदर्प-पूर्ण है और हिन्दूधर्म की महिमा से उद्भासित है। यदि इनकी कविता की तुलना डिंगल के किसी दूसरे कवि की कविता से हो सकती है तो वह है वीकानेर के राठौड पृथ्वीराज की कविता। वही वल, वैसी ही गति, उतनी ही प्रचडता इनकी कविता मे भी पाई जाती है। उदाहरण देखिए।

अकवर गरव न आण, हीदू सह चाकर हुआ।
दीठौ कोय दिवाँण, करतो लटका कटहडै ॥१॥
अकवर घोर अधार, ऊँघाणा हिन्दू अवर।
जागै जघ-दातार, पोहरै राण प्रतापसी ॥२॥
अकवर समँद अथाह, तिहँ डूवा हिन्दू-तुरक।
मेवाडौ तिण माँह, पोयण फूल प्रतापसी ॥३॥
अकवरियै इक वार, दागळ की सारी दुनी।
अणदागळ असवार, रहियौ राग प्रतापसी ॥४॥
लोपै हींदू लाज, सगपण रोपै तुरकसूँ।
आरज-कुळ री आज, पूँजी राण प्रतापसी ॥५॥
सुख-हित स्याळ समाज, हीदू अकवर-वस हुवा।
रोसीलौ म्रगराज, पजै न राण प्रतापसी ॥६॥
अकवर पथर अनेक, कै भूपत भेळा किया।
हाथ न लागो हेक, पारस राण प्रतापसी ॥७॥
ढिग अकवर दळ ढाण, अग-अग झगडै आथडै।
मग-मग पाडै माण, पग-पग राण प्रतापसी ॥८॥

अकबर हियै उचाट, रात-दिवस लागी रहै।
रजवट-वट समराट, पाटप राण प्रतापसी ॥९॥"

कुशललाभ

ये खरतर गच्छीय जैन कवि जैनाचार्य अभयधर्म के शिष्य थे। ये राजस्थान-निवासी थे, पर जन्म-स्थान का ठीक-ठीक पता नही है। इनका जन्म स० १५८० के आस-पास हुआ था। अच्छे पडित और सुकवि थे। इनके निम्नलिखित ग्रथो का पता है—

(१) ढोला मारू री चौपई (२) माधवानल-कामकदला चोपई (३) तेजसार रास (४) अगडदत्त चौपाई (५) पार्श्वनाथ स्तवन (६) गौडी छद (७) नवकार छद (८) भवानी छद (९) पूज्य वाहण गीत जिन पालितजिन रक्षित सधि गाथा और (११) पिंगल शिरोमणि।

इनमे 'ढोला मारू री-चौपई' और 'माधवानल-कामकदला' इनकी बहुत लोकप्रिय रचनाएँ है। पहले ग्रथ मे राजस्थान के सुप्रख्यात ग्रथ 'ढोला मारु रा दूहा' को चौपई-बँध किया गया है। यह जैसलमेर के रावळ मालदेव के युवराज हरराज के लिए लिखा गया था। इसका रचना-काल

---

२३ दिवाँण=महाराणा। कटहडै=शाही कटहरे मे। ऊँघाणा=ऊँघने लग गये। अवर=अन्य। पौहरै=पहरे पर। पोयण=कमल। दागल=दागयुक्त। दुनी=दुनिया। सगपण रोपै=वैवाहिक सबध स्थापित कर। स्याल=सियार। रोसीली=क्रोधी। पजै न=परास्त नही होता। भेळा=इकट्ठा। हेक=एक। ढिग=पास। अग=पर्वत। आथडै=लडता है। पाडै माण=मान मर्दन करता है। उचाट=खटका। रजवट=रजपूती। वट=मार्ग। समराट=सम्राट। पाटवी=सबसे बडा।

स० १६१७ है। दूसरे ग्रथ मे माधवानल और कामकदला की प्रेम-कथा का वर्णन है।

कुशललाभ की भाषा गुजराती मिश्रित राजस्थानी है। रचना-शैली सहज और चित्ताकर्षक है। वर्णन वैचित्र्य द्वारा पाठक का ध्यान इधर-उधर न भटकने देने की जो क्षमता एक कहानीकार में होनी चाहिए वह इनमे पूरी-पूरी पाई जाती है। इनकी रचना का नमूना लीजिए—

अति अवगुण मारू भुइ तणा। माळवणी कहिया अति घणा॥
ढोलौ वात सुणी गहगहै। हँसि नै मारवणी प्रति कहै॥
कहि मारवणी ताहरौ देस। केहवा माणस केहवा वेस॥
वळती मारवणी इम कहै। प्रिय आपै सगळी परि लहै॥
मारवणी सूँ मन री प्रीति। ढोलौ दाखै देसाँ रीति॥
सघळ देस भला छै सही। पणि कोय मारू उपम नही॥

परशुराम

ये निम्वार्क सम्प्रदाय के सत हरिव्यास देवजी के चेले थे। इनका जन्म जयपुर राज्यान्तर्गत एक पचगौड ब्राह्मण-कुल मे हुआ था। इनका रचना काल स० १६७७ के आस-पास है। निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्यों मे इनकी गणना होती है। इनका लिखा 'परशुराम-सागर' प्रसिद्ध है। इसमे इनके २२ ग्रन्थ और ७५० के लगभग फुटकर पद सगृहीत है। ग्रन्थो के नाम ये हैं—

(१) साखी का जोडा, (२) छद का जोडा, (३) सवैया दस अवतार का, (४) रघुनाथ चरित, (५) श्रीकृष्णचरित, (६) सिंगार सुदामा-चरित, (७) द्रौपदी का जोडा, (८) छप्पय गज ग्राह को, (९) प्रह्लाद-चरित, (१०) अमर बोध लीला, (११) नाम निधि लीला, (१२) सौच-निषेधलीला, (१३) नाथलीला, (१४) निज रूप लीला, (१५) श्री हरि-

लीला, (१६) श्री निर्वाण लीला (१७) समझणी लीला, (१८) तिथि लीला, (१९) नद लीला, (२०) नक्षत्र लीला, (२१) श्री बावनी लीला, (२२) विप्रमती (रचना काल स० १६७७)।

परशुराम जी की भाषा पिंगल है। इनकी रचना निर्गुणवादी और सगुणवादी दोनो विचार परपराओ से प्रभावित है। इन्होने कबीर की तरह निर्गुण ब्रह्म पर भी कविता की है। और कृष्ण-भक्तो की तरह सगुण ब्रह्म पर भी। इनकी कविता अर्थ-गौरवपूर्ण और सामान्य रूप से सरस है। उदाहरण—

गुरु द्रोही जो आतमा, सो मम द्रोही जान।
परसा जो गुरु भक्त है, सो मम भक्त पिछान ॥१॥
सीप न निपजै सिंधु बिन, मुक्ताहल बिन सीप।
साधु न निपजै साधु बिन, परसुराम कहुँ दीप ॥२॥
गुन आयो तब जानिये, अवगुन नाम बिलाय।
अरथ भलो सो परसराँ, जो अनरथ बहि जाय ॥३॥
जानै कौन अगाध की, जाके आदि न अत।
हरि दरिया मे परसुराँ, हम से जीव अनत ॥४॥
अपना कीया दूर कर, हरि का कीया देख।
मिटै न काहू के किये, परसराम हरि लेख ॥५॥
परसराम हरि नाम मे, सब काहू की सीर।
कहि जाणे सोई कहै, अत्यज विप्र अहीर ॥६॥

माधौदास-

ये दधवाडिया गोत्र के चारण चूंडा जी के बेटे थे। इनका जन्म स० १६१० और स० १६१५ के बीच मे किसी समय हुआ था। इनके जन्मस्थान का ठीक-ठीक पता नही है। परन्तु कहा जाता है कि ये जोधपुर राज्य के

वलूंदा गाँव मे पैदा हुए थे। एक वार जव ये अपने घर से कही वाहर गये हुए थे तव कुछ मुसलमान इनकी गौएँ चुरा ले गए। घर लौटने पर जव इनको इस वात का पता लगा तव इन्होंने अपने पुत्र के साथ उनका पीछा किया। लडाई हुई। ये मारे गये। यह घटना स० १६९० के आसपास की है।

ये जोधपुर के महाराज सूरसिंह के आश्रित थे। वीकानेर के राठौड पृथ्वीराज से भी इनका अच्छा हेल-मेल था। एक वार पृथ्वीराज ने अपना ग्रथ 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' इनको सुनाया। सुनकर ये वहुत खुश हुए और उसकी वहुत वडाई की। इसके वदले मे पृथ्वीराज ने भी इनकी प्रशसा मे यह दोहा लिखा—

चूंडे चत्रभुज सेवियौ, ततफळ लागौ तास।
चारण जीवौ चार जुग, मरौ न माधौदास॥

माधौदास वहुत उच्चकोटि के कवि और हरिभक्त थे। इन्होंने "राम-रासौ" और "भाँपा दसमस्कध" नामक दो ग्रन्थ वनाये। दसमस्कन्ध का पता नही लगता। पर रामरासौ की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। सोलह सौ से अधिक छन्दो का यह एक वहुत वडा और उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसमे राम-कथा का वर्णन है। इसकी भाषा डिंगल है। ग्रन्थ कवि की काव्य-प्रतिभा का परिचायक है। एक पद देखिए—

राग मारू

भरथ या सव रघुनाथ वडाई,
वधि कपि वालि सुग्रीव निवाजै केकवा ठकुराई ॥टेक॥
मम वल हीण अलप साखाम्रिग त्रिकुट सलित न कुदाई।
राम-प्रताप स्यध सौ जोजन उलँघत पलक न लाई॥१॥
वौह जळ ही पाथर तळ वूडत तिल प्रमाण कण राई।
लिखि श्री राम-नाम गिर डारत दधि सिर जात तिराई॥२॥

इद्रजीत वहि कुम दमाणण सुरगह वदि छिडाई ।
सकल-मग्राम भ्रितक कपि स्यन्या अभ्रित आणि जिवाई ॥३॥
जाके चरण गहृत सरणागति लक वभीपणि पाई ।
माधौदास वदति जस महिमा हणूमान रघुराई ॥४॥[२४]

दामकृत लक्षमणसेन-पद्मावती (स० १५१६), प्रतापसिंह कृत चद कुवर री वात (स० १५४०), सिद्धसेन कृत विक्रम पचदड चौपाई (स० १५५६), हीरकलश कृत सिंहासन वत्तीसी (स० १६३६), हेमरत्न कृत पद्मिनी चौपई (स० १६४५), भद्रसेन कृत चदन मलियागिर री वात (स० १६७५), सुमति हस कृत विनोदरस (स० १६९१) इत्यादि रचनायें भी इसी काल की हैं। और इनका प्रचार भी थोडा-वहुत पाया जाता है। परन्तु साहित्य की दृष्टि मे इनका महत्व विशेष नही है।

फुटकर गीत, दोहा, कवित्त, आदि के रचयिता इस काल मे इतने हो गये हैं कि उनके नाम गिनाना ही कठिन है। कुछ वहुत प्रसिद्ध नाम ये है—महाराणा कुभा (स० १४९०-१५२५) पसाइत (स० १४९०) वाल्जी (स० १५२०), चानण (स० १५४०), चौहथ (स० १५४०), सॉवळ (स० १५६०) महाराणा उदयसिंह (स० १५९४-१६२८), महाराणा प्रतापसिंह (स० १६२८-५३), मादूळ (स० १६००), महाराजा रायसिंह (स० १६२८-६८) देवी (स० १६३२), महाराजा मानसिंह (स० १६५६-७१), महाराणा अमरसिंह (स० १६५३-७६), पीरजी (स० १६४०), रगरेली (स० १६४०), सूरचद (स० १६४०), लालादे (स० १६४०), शकर (स० १६४५), चॉपादे (स० १६५०),

---

२४. केकवा=किष्किन्धा। सलित=नदी। स्यध=सिंधु। वौह=वहुत। दधि=उदधि । वहि=सोग्कर। दसाणण=रावण। स्यन्या=सैना।

गैपौ सं० (१६५६), लक्खावी (सं० १६६०), हरनाथ (सं० १६६०), हरपाल (सं० १६६०), नरूजी (सं० १६६०), किशनदान (सं० १६६०), हरसूर (सं० १६६२), डूंगरसिंह (सं० १६६२), नेतौ (सं० १६६२), हरपौ (सं० १६६५), मोतीसर चतरौ (सं० १६७०) लीलाधर (सं० १६७६), चतुर्भुजसहाय (सं० १६७७), और देदौ (सं० १६८०) ।

चौथा प्रकरण

उत्तर मध्यकाल (सं० १७००-१९००)

लगभग म० १७०० से राजस्थानी माहित्य का उत्तर मध्यकाल प्रारभ होता है जो स० १९०० तक चलता है। इम काल मे डिंगल के साथ-साथ पिंगल की भी अच्छी उन्नति हुई और दोनो भापाओ मे उच्चकोटि के ग्रथ रचे गए। इस समय के अधिकाश कवियो का प्रिय विपय था, कृष्ण। राधा कृष्ण की प्रेम-लीलाओं को लेकर कवियो ने छोटे-मोटे वहुत से शृगारात्मक ग्रथ तथा फुटकर पद, कवित्त-मवैया आदि बनाए जो वहुत लोकप्रिय सिद्ध हुए। अनेक रीति-ग्रथो का निर्माण भी इमी युग मे हुआ। कुछ कवियो ने वीररस मे भी उत्कृष्ट रचनाएँ की और कुछ कवि ऐमे भी पैदा हुए जिनकी तुलना अन्य भारतीय भापाओ के किसी भी वडे से वडे कवि के साथ की जा सकती है। इनमे विहारीलाल, वृन्द और नागरीदास के नाम विशेप रूप से उल्लेखनीय हैं। सत्रहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे माधौदास दधवाडिया ने रामरासौ लिखकर रासौ लिखने की जो परिपाटी राजस्थान में कायम की थी उसको इम युग मे वहुत वल मिला। और खूँमाण रासौ, पृथ्वीराज रासौ, हमीर रासौ, राणा रासौ इत्यादि अनेक रासौ ग्रथ उस शैली पर लिखे गए।

पूर्व मध्यकाल मे चारण आदि जातियो के कवि अधिकतर फुटकर गीत आदि लिखने मे व्यस्त थे, पर इम काल मे उन्होंने भी अपना ढग वदला और फुटकर रचनाओ के अतिरिक्त राजरूपक, सूरजप्रकास, इत्यादि

के जैसे प्रशसनीय ग्रन्थो का निर्माण किया जो इतिहास की दृष्टि से महत्व-पूर्ण और सुपाठ्य हैं।

सारांश, भाषा और साहित्य दोनो ही दृष्टियो से इस काल मे राजस्थानी साहित्य की गौरव-वृद्धि हुई और इस आधार पर यदि इस युग को राजस्थानी साहित्य का 'सुवर्ण काल' भी कह दिया जाय तो इसमे कोई अत्युक्ति न होगी।

जसवन्तसिंह

ये जोधपुर के महाराजा गजसिंह के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म स० १६८३ की माघ वदि ४ को बुरहानपुर (दक्षिण) मे हुआ था। इतिहास प्रसिद्ध अमरसिंह राठौड, जिन्होंने बादशाह शाहजहाँ की भरी सभा मे बख्शी सलावतखाँ को मारा था, इनके बडे भाई थे। स्वेच्छा चारी एव उद्धत प्रकृति होने के कारण महाराजा गजसिंह ने अमरसिंह को देश निकाला दे दिया था। इसलिए उनके बाद जसवत-सिंह जोधपुर की गद्दी पर बैठे। राज्याभिषेक के समय इनकी अवस्था १२ वर्ष की थी। अत बादशाह शाहजहाँ ने शाही मनसबदार आसोप के ठाकुर कूँपावत राजसिंह को इनकी शिक्षा तथा मारवाड की देख-भाल के लिए नियुक्त किया। जसवत सिंह बडे वीर, साहसी और रणकुशल व्यक्ति थे। मुगल सिंहासन को प्राप्त करने के लिए जब शाहजहाँ के पुत्रो मे झगडा हुआ, इन्होने सम्राट के ज्येष्ठ पुत्र दारा का पक्ष लिया था। क्योंकि राज्य का वास्तविक अधिकारी वही था। इसलिए औरगजेब इनसे बहुत कुढता था। इनका बिगाड तो वह कुछ न सका पर अपने राज्य से दूर रखने के लिए उसने इन्हे काबुल का गवर्नर बनाकर उधर भेज दिया। वही स० १७३५ की पौष वदि १० को इन्होने अपनी देह-लीला समाप्त की। इनकी मृत्यु का समाचार जब औरगजेब के

पास पहुँचा तब उसके आनंद का पारावार न रहा और हर्ष से उछल कर उसने कहा—

"दर्वाजए कुफ्र शिकस्त"[1]

महाराजा जसवन्तसिंह का साहित्यिक जीवन उनके ऐतिहासिक और राजनैतिक जीवन से किसी अश मे कम महत्वपूर्ण न था। ये डिंगल-पिंगल के पूर्ण ज्ञाता एव मर्मज्ञ कवि थे और कवियो तथा विद्वानो का बहुत आदर करते थे। इनके रचे भाषा-ग्रंथो के नाम ये है—

(१) भाषा-भूषण (२) सिद्धान्तबोध (३) सिद्धान्तसार ((४) अनुभवप्रकाश (५) अपरोक्षसिद्धान्त (६) आनदविलास (७) चद्र-प्रबोध (नाटक)[2] (८) धूली जसवन्त सवाद और (९) इच्छा-विवेक।

जसवन्तसिंह हिन्दी साहित्य मे अलकारो के एक विशिष्ट आचार्य समझे जाते है। यही एक ऐसे महाशय थे जो यथार्थ मे आचार्य रूप से साहित्य क्षेत्र मे आए। इनके तत्वज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थ विशेष लोकप्रिय नही है, परन्तु भाषाभूषण का काव्य-प्रेमियो मे बडा आदर है। यह ग्रन्थ जयदेव कृत चन्द्रालोक की छाया तथा शैली पर लिखा गया है। पर कवि ने अपने मस्तिष्क तथा दूसरे अलकार ग्रन्थो से भी सहायता ली है। यह एक उच्च कोटि का अलकार ग्रन्थ है। इसमे २१३ दोहे हैं। भाषाभूषण की सबसे बड़ी विशेषता है, वर्णन की सक्षिप्तता। प्राय एक ही दोहे मे अलकार का लक्षण एवं उदाहरण देकर कवि ने अपने अलकार विषयक ज्ञान और काव्य-पटुता का अच्छा परिचय दिया है। केशवदास ने अपने ग्रथ कविप्रिया मे उपमा, उत्प्रेक्षा, यमकादि के कई भेद-उपभेद कहकर विषय को बहुत ही जटिल बना दिया है। इसलिए उसका प्रचार भी बहुत कम है। परन्तु

---

१ आज धर्म-विरोध का दरवाजा टूट गया।

२ यह सस्कृत के प्रबोध चन्द्रोदय नामक नाटक का अनुवाद है।

भेदोपभेदो के पचडे मे न पडकर जसवन्तसिंह ने अलकारो के मुख्याङ्गो को स्पष्टत समझाया है और वह भी अत्यन्त सरल एव बोधगम्य भाषा मे। ग्रथ के आदि मे नायक-नायिका भेद तथा रसो पर भी थोडा-सा प्रकाश डाला गया है। पर केशव कृत रसिक-प्रिया, मतिराम कृत रसराज, पद्माकर कृत जगद्विनोद, बेनी प्रवीन कृत रसतरग इत्यादि इस विषय के दूसरे ग्रन्थो को देखते हुए वह प्राय नही के बराबर है। इनकी कविता देखिए—

तीनि असगति काज अरु, कारन न्यारे ठाम।
और ठौर ही कीजिए और ठौर को काम ॥
और काज आरम्भिए औरे करिए दौर।
कोयल मदमाती भई, झूलत अम्बा मौर ॥
तेरे अरि की अगना, तिलक लगायो पानि।
मोह मिटायो नाँहि प्रभु, मोह लगायो आनि ॥

देह नाँही इन्द्री नाँही मन नाँही बुधि नाँही
अहकार चित्त नाँही देखवो नही तहाँ ॥
करिवौ कछू न जामै सुनिवै की बात नाँही
धेय नाँही ध्यान नाही ध्याताहू नही जहाँ ॥
गुरु और सिष्य नाँही नाम रूप विस्व नाँही
उतपत्ति प्रलै नाँही बध मोक्ष है कहाँ।
बचन कौं विपै नाँही सास्त्र और वेद नाँही
और कहा कहौ उहाँ ग्यानहू नही तहाँ ॥

बिहारी

कविवर बिहारीलाल माथुर चौबे थे। इनका जन्म स० १६४२ के लगभग ग्वालियर राज्य के बसुवा गोविंदपुर ग्राम मे हुआ था। इनकी बाल्यावस्था बुदेलखड मे व्यतीत हुई थी और युवावस्था मे कुछ दिन अपनी

ससुराल मथुरा मे भी रहे थे। ये जयपुर के मिर्जा राजा जयसिंह, के दरबारी कवि थे जिनकी ओर से प्रति दोहे पर इन्हे एक अशरफी मिला करती थी। इनका देहान्त स० १७२० मे हुआ था।

अपने जीवन-काल मे बिहारीलाल ने सिर्फ एक ही ग्रन्थ बिहारी सतसई, बनाया जो हिन्दी साहित्य की स्थायी सपत्ति और काव्यकला का उत्कृष्ट नमूना माना जाता है। यह एक अत्यन्त लोकप्रिय रचना है। इसकी लोकप्रियता का अनुमान इसी से हो सकता है कि इस पर ६० के लगभग टीकाएँ तो बन चुकी है और फिर भी यह क्रम जारी है। इसमे ७१३ दोहे है। इसकी भाषा ब्रजभाषा है जो बहुत ललित, प्रौढ एव परिमार्जित है। बिहारी की कविता का मुख्य विषय है, शृगार। परन्तु नीति, भक्ति इत्यादि अन्य विषयो पर भी इन्होने कुछ कहा है और बहुत अच्छे ढग से कहा है। अपूर्व काव्य-कौशल और अद्वितीय माधुर्य्य बिहारी की कविता के प्रधान गुण हैं। और गहरी तो वह इतनी है कि ज्यो-ज्यो हम उसकी गहराई की थाह लेने की कोशिश करते है वह अधिकाधिक गहरी होती जाती है। विशेषकर नायक-नायिकाओ के मनोभावो का विश्लेषण करने मे बिहारी ने कमाल कर दिया है। इस फन मे अग्रेज कवि शेक्सपियर बहुत निपुण समझे गए हैं। अत उनकी तुलना मे बिहारी का काव्य-चमत्कार देखिए—

रोजेलिंड की सखी सीलिया उसके प्रेम-पात्र ऑरलेंडो से मिलकर वापस आती है। उस समय प्रिय-सदेश के सुनने मे आतुर रोजेलिंड पागल-सी हो जाती है और सीलिया से कहती है कि यदि नायक से मिलने के सब समाचार उसने फौरन ही न कहे तो वह उससे इतने प्रश्न करेगी कि जिनसे सारा उत्तरी सागर भर जायगा। पर उसकी उत्सुकता को बढाने के लिए सीलिया फिर भी मौन ही रहती हैं। इस पर रोजेलिंड प्रश्नो की झडी लगा देती है—

"What did he when thou saw'st him ? What said he ? Wherein went he ? What makes he here ? Did he ask for me ? Where remains he ? How parted he with thee ? And when shalt thou see him again ? Answer me in one word."[3]

ऐसी ही दुविधावस्था मे विहारी की नायिका भी है। नायिका, राधा, की सहेली कृष्ण से मिलकर घर आती है। इस पर विहारीलाल लिखते हैं—

फिरि फिरि बूझिति कहि कहा, कह्यौ सांवरे गात।
कहा करत देखे कहाँ, अली चली क्यो बात॥

प्रसग दोनो का एक है। विहारी की तरह शेक्सपियर ने भी स्त्री-हृदय के उस स्थल पर हाथ डाला है जो सबसे कमजोर है, पर जिस समय रोजेलिड के मुंह से शेक्सपियर प्रश्न करवाते है, उनकी कल्पना-शक्ति कुन्द हो जाती है और उनकी कलम से कुछ ऐसे प्रश्न निकलते है जिनमे रस, चमत्कार, वाक्विदग्धता आदि कुछ भी नही है। वस्तुत शेक्सपियर के ये प्रश्न परीक्षा-पत्र मे दिए हुए प्रश्नो के सदृश जटिल और शुष्क प्रतीत होते हैं। इसके विपरीत विहारी नारी-हृदय को टटोल कर वाहर निकल आते हैं और सारी वात को वहुत सक्षिप्त, वहुत हृदयग्राही ढग से प्रस्तुत करते हैं जिसमे व्यग्य है व्यजना है, और है मार्मिक भाव। नि:सन्देह अगरेज कवि के प्रश्न सख्या मे अधिक हैं। पर सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न को तो वे फिर भी भूल ही गए हैं जिसका उल्लेख विहारी ने अपने दोहे के अन्तिम चरण मे किया है, 'अली चली क्यो वात'। हे सखी! मेरी वात चली कैसे ? मेरा प्रसग आया क्यो ? सच पूछिए तो यही कवि-हृदय की मार्मिक अनुभूति है, काव्य-कौशल की अतिम सीमा है।

---

3 As You Like It : Act III, Sc II

सतसई के अतिरिक्त विहारी के रचे तीन कवित्त भी हाल ही मे उपलब्ध हुए हैं। सतसई मे से कुछ दोहे और ये तीनो कवित्त यहाँ दिए जाते हैं—

दोहा

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँईं परैं, स्यामु हरित-दुति होइ॥१॥
अजौं तरयौना ही रह्यौ, श्रुति सेवत इक-रग।
नाक-बास वेसरि लह्यौ, वसि मुकुतन कैं सग॥२॥
वेधक अनियारे नयन, वेधत करि न निषेधु।
वरबट वेधत मो हियौ, तो नासा कौ वेधु॥३॥
नेहु न नैननु कौ कछू, उपजी वडी वलाइ।
नीर-भरे नित प्रति रहैं, तऊ न प्यास वुझाइ॥४॥
नहिं परागु नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहिं काल।
अली कली ही सौं वँध्यौ, आगैं कौन हवाल॥५॥
कहा लडैते दृग करें, परे लाल वेहाल।
कहुं मुरली कहुं पीत पटु, कहूँ मुकुट वनमाल॥६॥
हौं ही वौरी विरह-वस, कै वौरौ सव गाँव।
कहा जानि ए कहत हैं, ससिहिं सीतकर नाँव॥७॥
सुनत पथिक-मुँह माह निसि, चलति लुवैं उहिं गाम।
विनु वूझै विनु ही कहे, जियत विचारी वाम॥८॥
स्वारथु सुकृतु न श्रमु वृथा, देखि विहग विचारि।
वाज पराएँ पानि परि, तू पच्छीनु न मारि॥९॥
दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर-चित्त प्रीति।
परति गाँठि दुरजन हियें, दई नई यह रीति॥१०॥
वे न इहाँ नागर वढी, जिन आदर तो आव।
फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ, गँवई गाँव गुलाव॥११॥

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करे भौंहनु हँसे, दैन कहे नटि जाइ॥१२॥

विरह-जरी लखि जीगनन्नु, कह्यौ न डहि कै वार।
अरी आउ भजि भीतरी, बरसत आजु अँगार॥१३॥

पटु पाँखै भखु काँकरै, सपर परेई सग।
सुखी परेवा पुहुमि मैं, एकै तुही विहग॥१४॥

चाह भरी अति रस भरी, विरह भरी सब बात।
कोरि सँदेसे दुहुन के, चले पौरि लौ जात॥१५॥

कर लै सूधि सराहि हूँ, रहे सबै गहि मौनु।
गधी गध गुलाब कौ, गँवई गाहकु कौनु॥१६॥

कर लै चूमि चढाई सिर, उर लगाइ भुज भेंटि।
लहि पाती पिय की लखति, बाँचति धरति समेटि॥१७॥

अनियारे दीरघ दृगनु, किती न तरुनि समान।
वह चितवनि औरै कछू, जिहिं बस होत सुजान॥१८॥

कवित्त

महाराजा मानसिंह पूरब पठान मारे
श्रोणित की सरिता अजौं न सिमटति है।
सुकवि "विहारी" अजौ उठत है कवध कूद
अजौ लो रणते रणोही ना मिटत है॥
अजौं लो पिसाचन की चहेलन ते चौंकि चौंकि
सची मघवा की छतियाँ लिपटत है।
अजौं लग ओढे है कपाली आली आली खालें
अजौं लग काली मुख लाली ना मिटत है॥१॥

वाढै रोग गाढै गहि दावै दुहु डांढन सो
राड राहु राड चक्र चूरन चवायो है।
बारचो वडवानलन वोरि मारचो वारिघन
रह्यो चारि जाम जल-जन्तुह न खायो है॥
कहत "विहारी" कैसी जार दिन चारिक ते
आज कालि तू जु द्विजराज कहवायो है।
तोहि न तनक दोप क्यो न इतराहि चाँद
ऐते पर शकु ईश शीश ले चढायो है॥२॥
जोन्ह सी जगमगात भौन मे मयकमुखी
चाँदनी सी चहुं ओर रूप उथलति है।
चतुर "विहारी" जू तिहारी सौंह साँची कहूँ
हाँसी को हँसो तो फूलमाल सी गुथति है॥
दोऊ कर कटि पै धरे ते ऐसी राजति है
जैसी मेरी मति कछु उपमा कहति है।
त्रिवली की डोरी रोम राजि किधौ रम रही
नाभि की दहो ही मानो मैन को मथति है॥३॥

जान

जयपुर राज के प्रसिद्ध करद सस्थान सीकर के इलाके में परगना फतहपुर है। वहाँ वर्तमान शेखावत राजवश से पहले कायमखानी नवावो का शासन था। कायमखानी वश का मूल पुरुष चौहाण करमसी था जिसको फीरोजशाह तुगलक के ओहदेदार सैयद नासिर ने स० १४४० मे मुसलमान वनाया और उसका नाम वदलकर कायम खाँ रखा। जान फतहपुर के आठवे कायमखाँनी नवाव थे। इनका असली नाम न्यामतखाँ था। कविता मे जान लिखा करते थे। इनके पिता का नाम अलफखाँ था।

अपने पिता के पाँच पुत्रो मे ये दूसरे थे। इनका रचना काल स० १६७१-१७२१ है।

जान अरबी, फारसी, सस्कृत आदि भाषाओ के सुज्ञाता, अच्छे इतिहासज्ञ और आशु कवि थे। इन्होंने कुल ७५ ग्रथ बनाए जिनके नाम ये है--

(१) मदनविनोद (२) ज्ञान दीप (३) रसमजरी (४) अलफखाँ की पेडी (५) कायम रासौ (६) पुहुप वरखा (७) कवलावती कथा (८) वरवा ग्रथ (९) छवि सागर (१०) कलावती कथा (११) छीता की कथा (१२) रूपमजरी (१३) मोहनी (१४) चदसेन राजा सीलनिधान की कथा (१५) अरदेसर पातिसाह की कथा (१६) कामरानी या पीतमदास की कथा (१७) पाहन परिच्छा (१८) श्रृगार शतक (१९) भाव शतक (२०) विरह शतक (२१) वलूकिया विरही की कथा (२२) तमीम अनसारी की कथा (२३) कथा कलदर की (२४) कथा निर्मल की (२५) सतवती की कथा (२६) शीलवती की कथा (२७) कुलवती की कथा (२८) खिजरखाँ शाहिजादा व देवल देवी (२९) कनकावती की कथा (३०) कौतूहली की कथा (३१) कथा सुभटराय की (३२) बुधिसागर (३३) कामलता कथा (३४) चेतन नामा (३५) सिख ग्रथ (३६) सुधा सिख ग्रथ (३७) वुधिदायक (३८) बुधिदीप (३९) घूघट नामा (४०) दरसनामा (४१) अलक नामा (४२) दरसन नामा (४३) बारह मासा (४४) सत नामा (४५) वर्न नामा (४६) बाँदी नामा (४७) बाज नामा (४८) कबूतर नामा (४९) गूढ ग्रथ (५०) देसावली (५१) रस कोष (५२) उत्तम सब्द (५३) सिख्या सागर (५४) वैद्यक सिख शतपद (५५) श्रृगार तिलक (५६) प्रेमसागर (५७) वियोग सागर (५८) षट्ऋतु पवगम छद (५९) रस तरगिनी (६०) रतन मजरी (६१) नलें-दमयती (६२) पैमुनामा (६३) मानविनोद (६४) विरही को मनोरथ (६५) जफरनामा (६६) पद नामा (६७) भाव कल्लोल

(६८) कदर्प कल्लोल (६९) नाम माला—अनेकार्थी (७०) रत्नावली (७१) सुधासागर (७२) श्वास सग्रह (७३) लैला मजनू (७४) कवि वल्लभ (७५) वैदक मति।

जान कवि ने प्रेमाख्यान अधिक लिखे है। इसलिए इनकी रचना मे श्रृगार-रस का प्राधान्य है। इनकी भाषा पिंगल है। कविता सरस और भाव पूर्ण है। उदाहरण—

कत कह्यौ हौ विदेस कौ जैहौ सुने तिय कौ उपज्यौ दुखु भारौ।
झाँकि रही नभ वोरि क्रिमोदरी हा हा दई करि ही जिन न्यारौ॥
दौरि सपी गई कुज लता मधि बोलि है कोकिल की उनिहारौ।
गौन निवारन कौ कियौ कारन जानि वसत रहै जिन प्यारौ॥

नैणसी

मुहणोत नैणसी ओसवाल महाजन थे। इनका जन्म स० १६६७ मे हुआ था। इनके पिता का नाम जयमल, पितामह का जैसा (जयशाह) और प्रपितामह का अचला था। इनके तीन भाई और थे सुन्दरदास, आसकरण और नरसिंहदास। नैणसी बडे वीर, शासन-पटु और राजभक्त पुरुप थे। इन गुणो के कारण जोधपुर के महाराजा जसवतसिंह (प्रथम) ने इन्हे अपने राज्य का दीवान बनाया था। स० १७२३ मे महाराजा जसवतसिंह औरगावाद मे थे और नैणसी तथा उनका छोटा भाई सुन्दरदास जो महाराजा के खानगी दीवान थे, उनके साथ थे। किसी कारण वश महाराजा दोनो भाइयो से रुष्ट हो गए और दोनो को कैद मे डाल दिया। परन्तु दो वर्ष वाद एक लाख रुपया दड लगाकर दोनो को छोड दिया। लेकिन उन्होने एक पैसा भी देना स्वीकार नही किया। इस विपय के दो दोहे राजस्थान मे अव तक प्रसिद्ध है—

लाख लखारां नीपजै, बड पीपळ री साख।
नटियौ मूंतो नैणसी, तांबो देण तलाक ॥१॥
लेसी पीपळ लाख, लाख लखारां लावसी।
तांबो देण तलाक, नटिया सुन्दर नैणसी[४] ॥२॥

इस पर महाराजा ने इन्हें वापस कैद कर लिया और रुपयो के लिए सख्तियाँ करने लगे। फिर दोनो भाई औरगाबाद से जोधपुर भेज दिए गए जहाँ जेलखाने के छोटे - छोटे कर्मचारियो का दुर्व्यवहार इनके लिए असह्य हो उठा। अपमान सहन करने की अपेक्षा मर जाना अच्छा समझ दोनो भाइयो ने अन्त मे आत्महत्या करना तय किया और स० १७२७ भादो वदि १३ को अपने पेट मे कटार भोककर दोनो सदैव के लिए सो गए।

नैणसी जैसे आत्माभिमानी और वीर प्रकृति के पुरुष थे वैसे ही विद्यानुरागी और इतिहास प्रेमी भी थे। स्वर्गीय मुशी देवीप्रसाद इन्हे ने राजपूताने का अबुलफज्ल कहा है, जो बहुत ही उचित है। इनका मुख्य ऐतिहासिक ग्रथ 'मूता नैणसी री ख्यात' नाम से प्रसिद्ध है। यह रायल अठपेजी साइज के एक हजार से अधिक पृष्ठो का बहुत बडा ग्रथ है। इसमे राजस्थान के विभिन्न राज्यो के इतिहास के अतिरिक्त गुजरात, काठियावाड कच्छ, बघेलखड, बुदेलखड और मध्य भारत के इतिहास पर भी अच्छा प्रकाश डाला गया है। इनका दूसरा ग्रथ जोधपुर राज्य का गजेटियर है।

---

४ लाख लखेरो के यहाँ और बड-पीपल की टहनियो पर मिलती है, (यह कहकर) महता नैणसी ताँबे का एक पैसा भी देने से इनकार कर गया ॥१॥ लाख पीपल पर से या लखेरो के यहाँ से लीजिएगा, (यह कह कर) सुन्दरदास और नैणसी ताँबे का एक पैसा भी देने से इनकार कर गए ॥२॥

इसमें जोधपुर राज्य के परगनों का बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। ये दोनों ग्रंथ इतिहास के अमूल्य रत्न और अपने रंग ढंग के अप्रतिम हैं।

उच्च कोटि के इतिहासज्ञ होने के साथ-साथ नैणसी डिंगल भाषा के सिद्धहस्त गद्य लेखक भी थे यह बात इनकी उक्त रचनाओं से साफ झलकती है। इनकी भाषा बहुत सरल, परिमार्जित और चलती हुई है। वर्णन-शैली सुगठित एवं रोचक है। नमूने के तौर पर इनकी ख्यात में से थोड़ा-सा अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है–

"डूंगरपुर सहर, ता उगवण नै दिपण वेउ तरफ भाखर छै। खोहल माहे सहर मगरा री खभ वसीयो छै। छोटो-सो कोट छै। उठै रावळ रा घर छै। गांव माहे देहुरा घणा छै। चोहटा घणा पिण हाटे उसडी पीठ को नहीं। डूंगरपुर थी उत्तर दिस नु रावळपूजा री करायो गोवरधननाथ री वडो देहरो छै। गांव सू ईसान कूण में रावळ गैपा री करायो वडो तळाव छै। सहर रै पाछै भाखर छै। सिकार री आहुखांनो पिण उण होज भाखर ऊपर छै। घणो दूर आहूखानै रै वास्ते भींत छै। सहर सु कोस पूण मे गांगडी नदी छै। तिण रै टाहे रावळ पूजा री करायो वडो राजवाग छै"।[५]

नरहरिदास

ये रोहड़िया शाखा के चारण लखाजी के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १६४८ और देहान्त सं० १७३३ में हुआ था। ये जोधपुर नरेश महाराजा

---

५ उगवण नै दिपण=पूरब और दक्खिन। वेउ=दोनो। भाखर =पहाड़। खोहल माहे=बीच में। मगरा=पर्वत। खभ=ढाल। उसडी=वैसी, इतनी। पीठ=व्यापार। आहूखांनो=शिकारगाह। उण होज=उसी। भीत=दीवार। पूण=पौन। टाह=तट पर। घण=बहुत।

गजसिंह के आश्रित थे जिन्होंने इन्हे टहला नामक गाँव प्रदान किया था। ये दो भाई थे। छोटे भाई का नाम गिरधरदास था। इनके कोई सन्तान नही थी। इस सबध मे इनकी भावज ने इन्हें एक दिन जब ताना दिया तब क्रुद्ध होकर इन्होने उससे कहा कि सन्तान तो मेरे नही है जिससे मेरे मरने के पश्चात् मेरे वश का नाम दुनियाँ मे रह सके, पर विधाता ने मुझे कविता करने की अलौकिक शक्ति प्रदान की है जिसके द्वारा मैं अपने नाम को सदैव के लिए ससार मे अमर कर दूंगा। इसी प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए इन्होने 'अवतार चरित्र' की रचना की, जिससे अभी तक इनका नाम चला आता है।

'अवतार चरित्र' ज्ञान सागर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित हो चुका है, जो बहुत अशुद्ध है। इसमे ५२० पृष्ठ है। इनमे ३२० पृष्ठो मे रामावतार का और शेष मे कृष्णावतार, कपिलावतार, वुद्धावतार आदि का सक्षिप्त वर्णन है। ग्रथ की भाषा पिंगल है जो बहुत सरल एव व्यवस्थित है। कथा-प्रसग के अनुकूल छदो को चुनने मे भी कवि ने अच्छी पटुता प्रदर्शित की है, पर नरहरिदास के भावो मे मौलिकता का प्राय अभाव-सा है। मालूम होता है, तुलसी के राम चरित मानस तथा केशव की रामचन्द्रिका को सामने रखकर कवि ने इस ग्रन्थ की रचना की है क्या रचना-पद्धति क्या घटनाक्रम, क्या भावव्यजना और क्या उक्ति-चमत्कार सभी रामचरित मानस से मिलते-जुलते हैं। जहाँ कही रामचरित मानस से विभिन्नता है, वहाँ केशव की रामचन्द्रिका का अनुकरण किया गया है।

चाप चढावन को गनै, सकै न अवनि छुडाइ।
भई उर्व्वी निर्व्वीर अव, कह्यो जनक अकुलाइ॥
जो जानत निर्व्वीर भुव, तो न करित पन एहु।
पावक प्रजलत गेह अव, तव कहँ पइयत मेहु॥

रही कुँवारी कन्यका, लिखत विरंच ललार।
पन कीनौ जो परिहरौ, तौ उपहास ससार॥

—अवतार चरित्र

रहा चढाउब तोरब भाई, तिल भरि भूमि न सकै छुडाई।
अब जनि कोउ माखै भट मानी, वीर विहीन मही मैं जानी॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू, लिखा न विधि वैदेहि विवाहू।
सुकृत जाय जो प्रण परिहरऊँ, कुँवरि कुँवारि रहै का करऊँ॥
जे जनतेऊँ विन भट महि भाई, तौ प्रण करि करतेऊँ न हँसाई॥

—रामचरित मानस

कहि पूछत तुम मुद्रिका, होत मौन इहि हेत।
नाम विपर्जय आपनै, तिहिं उत्तर नहिं देत॥

—अवतार चरित्र

तुम पूछत कहि मुद्रिका, मौन होत यहि नाम।
ककन की पदवी दई, तुम विन या कहँ राम॥

—राम चन्द्रिका

कहते है कि अवतार-चरित्र के अतिरिक्त नरहरिदास ने १६-१७ ग्रथ और भी बनाए थे पर उन सबका पता नही लगता। केवल नीचे लिखे छ ग्रथो के नामो का पता है—

(१) दशमस्कन्ध भाषा (२) रामचरित्र कथा (३) अहिल्या पूर्व प्रसग (४) वाणी (५) नरसिंह अवतार कथा (६) अमरसिंहजी रा दूहा। इनकी कविता देखिए—

जा दिन आन उपाइ थकै सब, ता दिन भाइ सहाइ करैगो।
धोक अलोक विलोकि त्रिलोक, रह्यो भव पूरसु दूरि टरैगो॥

जैसें चढै गजराज की पीठि, त्यौ कूकर वादि हिं भूसि मरैगो।
जौ करुणामय स्याम कृपा तो, कहा जग की अकृपा बिगरैगो॥

कटक कपूर भए कौतुक भयानक से,
हार अहि गए अँधियार भयो आरसौ।
नाहर से नूपुर पहार से पहर भए
सेज समसान भए, भूसन सुभारसौ॥
आक सो तवीर सिरवाइ सी सुवास सवै,
चीर भए कौछी से, अजन अगार सौ।
विपति दुसह ऐसी कपि अवधेस विना
प्रान भए पाहुनै से प्रेम भौ प्रहार सौ॥

कल्याणदास

कल्याणदास रचित 'गुण गोविंद' नामक एक ग्रंथ का पता हाल ही मे लगा है। इसके अतिम दोहे में इन्होंने थोडा-सा अपना व्यक्तिगत परिचय भी दिया है जिससे सूचित होता है कि ये मेवाड राज्य के समेळा गाँव के निवासी लाखणोत शाखा के भाट वाघजी के वेटे थे–

वास समैळे वाघ तण, लाखणोत कलियाण।
गायौ श्री गोविंद गुण, पाए भगत प्रमाण॥

गुण-गोविंद डिंगल भाषा का ग्रथ है। स० १७२५ की लिखी हुई इसकी यह हस्तलिखित प्रति उदयपुर के सरस्वती भडार मे सुरक्षित है। ग्रथ स० १७०० मे रचा गया था–

सतरा सै सँवतां वरीप पहिले मै वखणें।
मास चैत सुदी दसमी पुष्य रविवार प्रमाणें॥

इसमे भगवान श्री रामचन्द्र और श्री कृष्णचन्द्र की विविध लीलाओ का बहुत सरस और भक्ति भावपूर्ण वर्णन है जो १९७ छदो मे समाप्त हुआ है। भाषा सरल और विषयानुकूल है। ग्रथ साहित्य की दृष्टि से अत्युत्तम और श्लाघनीय है। रचना का नमूना यह है—

गज आनन्न गज करन, दत्त गज गर्जहि सुडाळ।
वदन सु ललित कपोल, चोळ चख लोल सुढाळ॥
रव रव लव कदव, अम्ब मदमस्त मत्तसरि।
कर मोदक उद्र लव, करत प्रणाम कृपा करि॥
गुणदधी गुणनिधी गणपती, अच्छर भँडार उघारि कवु।
आरभ परम लीला इहव, सो आरभ तुव सरण अवु॥

साँईदान

ये सीलगा खाँप के चारण मेवाड राज्य के झाडोली गाँव के निवासी थे। इनके पिता का नाम मेहाजळ था। आविर्भाव-काल स० १७०९ है। मिश्र बधु-विनोद मे इनका रचना-काल स० ११९१ वतलाया गया है जो अशुद्ध है[५]। इन्होने वृष्टि-विज्ञान का एक ग्रन्थ वनाया जिसका नाम 'समतसार' है। ग्रन्थ अपूर्ण है। इसमे २७७ पद्य हैं मुख्य छद दोहा, पद्धरि और छप्पय है। ग्रथारभ मे गणेश, सरस्वती और चण्डिका की स्तुति की गई है। फिर मुख्य विषय शुरू होता है। ग्रथ शिव-पार्वती-सवाद के रूप मे है। पार्वती प्रश्न करती है। शिवजी उसका उत्तर देते है। रचना बहुत साधारण है। उदाहरण—

---

५ प्रथम भाग, पृ० ९२

दूहा

पारवती कीनी प्रसन, हे देवन के देव।
सुरभष दुरभप परत हैं, सो भव कहिये देव ॥
महादेव उत्तर दियौ, सुनहु उमा चितलाय।
सुरभप दुरभप को तुमैं, देऊँ भेद वताय ॥

कवित्त

ऊगै धूमर केत गगन तारा बहु तुट्टै।
मँडै धनुष विन मेघ विना बद्दल जल वुट्टै ॥
धरा कप जळ उमँग गैव अम्वर फिर गाजै।
विन घन पवन अकास भानु ससि कुडल राजै ॥
यहु गर्ग रिषि कै वचन सुनि पडित ह्वै सो उर धरौ।
उल्लकापात जो एक हुव सरव धान सग्रह करौ ॥

।

वूदी राज्य-निवासी जाति के राव थे। इनका रचना-काल स०
के लगभग है। ये वूदी के राव राजा शत्रुसाल के आश्रित थे।
इन्हे नैनवा नामक एक गाँव प्रदान किया था जो अभी तक
शवालो के अधिकार मे है। इन्होंने 'शत्रुसाल रासौ' नामक
ाया जिसमे शत्रुसाल के राज्य-वैभव, शौर्य-पराक्रम इत्यादि का
सविस्तर वर्णन है। लगभग ५०० छदो का यह एक भारी ग्रथ है।
इसकी भापा-शैली चद कृत पृथ्वीराज रासौ से मिलती-जुलती है।
उदाहरण—

वजै चग वाजिया अनग सारग भणकै।
उडै गुलाल रँग अमर, लाल लज्जा भवसकै ॥

भ्रम अत्रीर त्रीविध, समीर जुध नीर सजै गति।
समय थाज सुर पंचम, रग अबुज पराग अति॥
वन फूलि झूलि भ्रमरनं ललित कुरंग रति आरति करै।
राजाधिराज रतनपाल रमै, धारैं मध्य बसन्त रै॥

जग्गाजी

ये खिड़िया शाखा के चारण थे। इनके पिता का नाम रतनाजी था। इनकी जन्म भूमि आदि का ठीक-ठीक पता नहीं है। इनके वशज आजकल सामलखेड़ा गाँव में रहते है जो सीतामऊ राज्य के अन्तर्गत है। इन्होंने स० १७१५ के लगभग 'वचनिका राठौड़ रतनसिंह जी री महेसदासोतरी' नामक एक ग्रथ बनाया जिसका दूसरा नाम 'रतन रासौ' है। यह ग्रथ बगाल की रायल एशियाटिक सोसाइटी की ओर से प्रकाशित भी हो चुका है। इसमे जोधपुर के महाराजा जसवत सिंह और मुगल सम्राट शाहजहाँ के विद्रोही पुत्र औरगजेब तथा मुराद के बीच मे उज्जैन के रण-क्षेत्र पर स० १७१५ का युद्ध वर्णित है। इस लड़ाई मे रतलाम के राठौड़ राजा रतनसिंह बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए काम आए थे। इसलिए इन्ही के नाम से ग्रथ का नामकरण हुआ। यह एक वीर रस प्रधान ग्रथ है। इसकी भाषा डिंगल है। इसमे गद्य और पद्य दोनो है। ग्रथ साहित्य-रसिको एव इतिहास-प्रेमियो दोनों के काम का है।

वचनिका के अतिरिक्त जग्गाजी के रचे शान्त रसात्मक कुछ फुटकर छप्पय भी मिले है। इनमें जहाँ डिंगल का ओज है वहाँ भावो की कोमलता भी है। जग्गाजी की रचना के दो नमूने यहाँ दिये जाते हैं—

माया जळ अति विमळ, तास कोइ पार न पावै।
लहर लोभ ऊलन्त, भ्रम जेहाज चलावै॥

जग बूडै जम हँसे, पाव कर कहूँ न लग्गै।
पीठ पार नह कोइ, पार नह कोई अग्गै॥
अत वार वहै आपै अनंत, सह विढ्ढ हुय जावै सगा।
तक विट नाम श्री राम रौ, जग-समद तिर तू जगा॥

इणि भाँति सू चारि राणी त्रिण्हि खवासि द्रब्य नाळेर उछाळि वळण चाली। चचला चढि महासरवर री पाळि आइ ऊभी रही। किसडी हेक दीसै। जिसडी किरतिआँ रौ झूवकौ। कै मोतियाँ री लडि। पवगाँ सू ऊतरि महापवीत ठौडि ईसर-गौरिज्या पूजी। करजोडि कहण लागी। जुगि जुगि औ हीज धणी देज्यौ। न माँगाँ वात दूजी। पछै जमी आकास पवन पाणी चन्द सूरिज नू परणाम करि आरोगी दोली परिक्रमा दीन्हीं। पाछै आप रै पूत परिवार नै छेहली सीखमति आसीस दीन्ही।[१]

किशोरदास

ये राव जाति के कवि मेवाड के महाराणा राजसिंह के आश्रित थे। इन्होने 'राजप्रकाश' नाम का एक ग्रथ स० १७१९ मे वनाया जिसमे महाराणा राजसिंह के विलास-वैभव और शौर्य-पराक्रम का वर्णन है। सब मिलाकर १३२ छदो मे ग्रथ समाप्त हुआ है। इसकी भाषा डिंगल है। वहुत उच्चकोटि का साहित्यिक ग्रथ है। रचना इस ढग की है—

गणपति सरसति गरुडपति, ग्रपपति हसपति वाणि।
तुस्ट होय मो दीजियै, जुगति पुस्टि इस्ट जाणि॥

---

१ तास=उसका। पाव=पैर। विट=द्वीप। चचला=घोडो पर। किरतियाँ=कृतिका। पवगाँ=घोडे। आरोगी=चिता। दोली=चारो तरफ।

जुगति जगत जीवै जचै, उगति विगति अण पार।
निरत फुरत वाणी ग्रमळ, सुरति समा ससार॥
राणौ प्रतपै राजसी, घर गिरपाट उवोर।
राज प्रकासित नाम गहि, कहि कहि राव किसोर॥

गिरधर

ये मेवाड-निवासी आशिया शाखा के चारण थे। इनका रचना-काल स० १७२० के लगभग है। इन्होने "सगतसिंघ रासौ" नाम का एक ग्रथ वनाया, जिसमे प्रात स्मरणीय महाराणा प्रताप के छोटे भाई शक्तिसिंह का चरित्र-वर्णन है। दोहा, भुजगी, कवित्त आदि कुल मिलाकर कोई ५०० छदो मे ग्रन्थ समाप्त हुआ। इसकी भाषा डिंगल है। रचना प्रौढ और इतिहास की दृष्टि से उपयोगी है। उदाहरण—

ऊदळ राणै एक दिन, सभ पूछियौ स कोइ।
अणी सिरै कर आहणै, हूंसारै हूं सोइ॥१॥
मैंगळ मैंगळ सारिपौ, सीह सारिपौ सीह।
सगतौ उदियासिंघ तण, अग पित्त जिसौ अवीह॥२॥
चख रत्तं मुख रत्तडौ, वैस जिंहि कुळ वग्ग।
सगतै जमदड्ढा सिरै, आफाळियौ करग्ग॥३॥
कियौ हुकुम न काणि की, ए वट एह अवट्ट।
ऊदळ राण कमखीयौ, पह दी सीख प्रगट्ट॥४॥
पिता हुकुम लिखियौ परम, अँग अहंकार अथाह।
सगतौ उदियासिंघ तण, सु वसीयौ पतसाह[७]॥५॥

---

७ अणी = कटारी। ऊदल = उदयसिंह। आहणै = चोट करे। सभ = सभा। मैंगल = हाथी। सारिपौ = समान। तण = तनय।

जोगीदास

ये प्रतापगढ राज्य के महारावत हरिसिंह के आश्रित कवि जाति के चारण थे। इनके रचे हरिपिंगल-प्रबन्ध नामक एक बहुत उच्च कोटि के ग्रन्थ का पता हाल ही मे लगा है। यह स० १७२१ मे लिखा गया था। रचना काल का दोहा यह है—

> सवत सतर इकवीस मे, कातिक सुभ पख चद।
> हरिपिंगल हरिमद जस, वणियौ खीरसमद॥

यह छन्द-शास्त्र का ग्रन्थ है। इसकी भाषा डिंगल है। इसमे सस्कृत, हिन्दी और डिंगल मे प्रयुक्त मुख्य-मुख्य छन्दो का लक्षण-उदाहरण सहित विवेचन है। ग्रथ तीन परिच्छेदो मे बँटा हुआ है। अतिम परिच्छेद के अधिकाश मे जोगीदास ने अपने आश्रयदाता महारावत हरिसिंह के वश-गौरव का बडे विस्तार के साथ वर्णन किया है जो वास्तविक और उपादेय है। साहित्य एव इतिहास दोनो ही दृष्टियो से यह एक बहुत उत्तम कोटि का ग्रन्थ है। भाषा रचना इस ढग की है—

> वाणी सेस उचारवा, मै मन कीधौ पेख।
> काकीडा लोडै न की, गज घूमतौं देख॥
> हणमत सहजै डाकियौ, गौ लोपै महराण।
> त की न कूदै दादरौ, हत्थ-वेहत्थ प्रमाण॥
> राणी गज-मोताहळै, वौह मडै सणगार।
> की भीली झालै नही, गळ गुजाहळ हार[८]॥

अग=पहाड। अवीह=निडर। आफालियौ=मारा। काणि= मर्यादा। कमखीयौ=रुष्ट हुआ। वट=मार्ग, प्रण।

८ काकीडा=कीडे, गिरगिट। लोडे=लोटते हैं, रेंगते हैं।

(१) रस रहस्य (२) दुर्गाभक्ति चन्द्रिका (३) द्रोण-पर्व (४) गुण रस रहस्य (५) सग्राम सार (६) मुक्ति तरंगिणी (७) नखशिख (८) दुर्गा सप्तसती का अनुवाद (९) सरूप करूप वाद (१०) आसाम की वाढ (११) विष-अमृत का झगडा (१२) सेवा की वाढ (१३) सतसई।

कुलपति वहुत उच्च कोटि के कवि थे। इनकी भाषा व्रजभाषा है जिस पर इनका असाधारण अधिकार था। इनकी कविता ललित, कला-पूर्ण और प्रसाद गुण युक्त है। उदाहरण देखिये—

दान विन धनी सनमान विन गुनी ऐसे
विष विन फनी अनी सूर न सहत हैं।
मत्र विन भूप ऐसे जल विन कूप जैसे
लाज विन कामिनि के गुननि कहत हैं।
वेद विन यज्ञ जप जोग मन वस विन
ज्ञान विन योगी मन ऐसे निवहत है।
चंद विन निशा प्राण प्यारी अनुराग विन
सील विन लोचन ज्यो सोभा को लहत हैं।

मानजी

इनका पूरा नाम मानसिंह था। ये विजयगच्छीय जैन यति थे। इनका सम्पर्क मेवाड के राजवश से था। अत सभव है कि ये मेवाड-निवासी हो। परन्तु इस विषय मे ठीक-ठीक कुछ नही कहा जा सकता। कविराजा बाँकीदास के 'वात सग्रह' मे एक स्थान पर इनका उल्लेख आया है: "मानजी जती राज-विलास नाव रूपक राणा राजसिंह रो वणायौ।" इनका कविता-काल सं० १७३४-३७ है। इनका लिखा राज-विलास हिन्दी साहित्य की एक प्रसिद्ध रचना है।

राज-विलास का प्रारंभ स० १७३४ मे और समाप्ति उसकी स० १७३७ मे हुई थी। इसकी प्राचीनतम प्रति उदयपुर के राजकीय पुस्तकालय मे सुरक्षित है जो स० १७४६ की लिखी हुई है। राज-विलास एक वीर रस प्रधान काव्य है। यह अठारह विलासो मे विभक्त है। इसकी भाषा पिंगल है। इसमे मेवाड के महाराणा राजसिंह का जीवन-इतिहास वर्णित है। ग्रथ के आदि मे सीसोदिया वश का सक्षिप्त इतिवृत्त दिया गया है। मुख्य कथा महाराणा राजसिंह के राज्यारोहण (स० १७०९) मे प्रारभ होती है। ग्रथ मे महाराणा राजसिंह के समय की प्राय सभी मुख्य-मुख्य घटनाओ का समावेश हो गया है, पर अधिकाश महाराणा राजसिंह और औरगजेब के युद्ध वृत्तातो से रगा हुआ है। इसकी भाषा सालकार, वर्णनशैली चित्रोपम तथा कविता वीरदर्पपूर्ण है और वीर रस के सिवा शृगार आदि दो-एक अन्य रसो का भी इसमे अच्छा निदर्शन मिलता है।

इनकी रचना का नमूना देखिए—

ऊचलि गयो अग्गरो दन्द मच्यौ अति दिल्लिय।
हाजीपुर परि हक्क डहकि लाहोर सु डुल्लिय॥
थरस लयौ रिनथम्भ ध्रसकि अजमेर सु धुज्जिय।
सूनी भयौ सिरोंज भगग भलसा सुभज्जिय॥
अहमदावाद उज्जैनि जन थाल मृग ज्यो थरहरिय।
राजेस राण सु पयान सुनि पिशुन नगर खरभर मचिय॥
अजमेरह अग्गरौ, धाक दिल्ली धर धुज्जै।
रिनथभह रलतलै, लच्छि लाहोर लुटिज्जै॥
खुरासान खधार, थटा मुलतान थरक्कै।
चदेरी चल चलय, भीति उज्जैनि भरक्कै॥

मडवह धार धरत्ती मिलय, डुलय देस गुजरात डर।
औदकै साहि औरंग अति, राण सबल राजेस वर॥

वृन्द

वृन्द शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे।[९] इनके पूर्वज बीकानेर के रहने वाले थे। परन्तु किसी कारण विशेष से इनके पिता श्री रूपजी मेडते मे जा बसे थे जहाँ स० १७०० मे इनका जन्म हुआ था।[१०] इनकी माता का नाम कौशल्या और पत्नी का नवरगदे था। वृन्द जब दस वर्ष के थे तब इनके पिता ने इनको विद्याध्ययन के लिए काशी भेज दिया। वहाँ ताराजी नामक एक पडित के पास रहकर इन्होंने साहित्य, वेदान्त आदि अनेकानेक विषयो का ज्ञान प्राप्त किया और कविता करना भी सीखा। काशी से लौटकर जब ये अपने जन्म-स्थान मेडते गये तब वहाँ इनका बडा सम्मान हुआ और जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह ने कुछ भूमि पुण्यार्थ देकर इनकी प्रतिष्ठा बढाई। महाराजा जसवन्तसिंह ने इनका परिचय बादशाह औरगजेब के

---

९ 'माधुरी', सख्या २, अगस्त सन् १९२३ मे गोस्वामी किशोरीलाल ने 'महाकवि वृन्द' शीर्षक लेख मे लिखा है कि "यह कवि गौड ब्राह्मण कुल मे मथुरा प्रात के किसी ग्राम मे पैदा हुआ था।" यह उनकी भ्राति है।

१० मिश्रबन्धुओ ने इनका जन्म स० १७४२ माना है और श्री राम नरेश त्रिपाठी ने अपनी "कविता-कौमुदी" मे इनका जन्म स० १७३४ लिखा है। यह दोनो ही गलत हैं।

कृपापात्र वजीर नवाब मुहम्मद खाँ से भी करवा दिया जिससे आगे चलकर इनका शाही दरबार मे प्रवेश हो गया।

कहते हैं कि पहले-पहल जिस समय नवाब मुहम्मद खाँ वृन्द को शाही दरबार मे ले गया उस समय इनकी परीक्षा लेने के लिए औरगजेब ने इन्हे यह समस्या दी—

"पयोनिधि पैरयौ चाहै मिसरी की पुतरी"

वृन्द ने फौरन ईश-महिमा विषयक यह कविता रचकर सुनाई—

पूरन परम परब्रह्म को भरोसो धारि
सुर मुनि साख जिन डोलैं इत उत री।
थिरचर जीवन की जीवन की वृत्ति जाकै
ताही सू रुचि रुचि राच प्रीत जुत री॥
वृन्द कहै साहिब समरत्थ सब बातन प्रे
उनकी कृपा तैं ऐसी बात अद्‌भुत री।
पगु गिरि गाहै मूक निगम निबाहै क्यौं न
पयोनिधि पैरयौ चाहै मिसरी की पुतरी॥

ादशाह को यह कविता कुछ कम पसद आई। इसलिए वृन्द ने '-.... ..त दूसरी तरह से फिर की—

कुम्भज करूर ता की कठिन करूर दीठ
देखि कै डरानो न हलानो इत उत री।
परहर लहर गहर गाज छाँड दई
वृन्द कहै भई गति अदीठ अम्भुत री॥

अमल मुकुर कैसो अचल सुभाव रह्यो
रह्यो दवि भई वात ऐसी अद्‌भुत री।
होकर निशक अक ऐसो दाव पाव क्यो न
पयोनिधि पैरचो चाहै मिसरी की पुतरी ॥

औरगजेव काव्य का विरोधी था। कवियो को वह न धन देता था न प्रोत्साहन। परन्तु वृन्द की यह अनूठी उक्ति उस पर भी वार कर गई और उसके मुंह मे सहसा निकल पडा "खूब !, खूब !! " वादशाह ने वृन्द को वहुत-सा धन दिया। उन्हें अपना दरवारी कवि वनाया और अपने ज्येष्ठ पुत्र मुअज्जम (वहादुरशाह) तथा पौत्र अजीमुश्शान का अध्यापक नियुक्त किया। कालान्तर मे जव अजीमुश्शान वगाल और उडीसा का सूवेदार होकर उधर गया तव अपने साथ वृन्द को भी ले गया। तभी से ये उसके साथ रहने लगे।

स० १७६४ के लगभग किशनगढ के महाराजा राजसिंह ने वृन्द को वहादुरशाह से माँग लिया और अच्छी जागीर देकर किशनगढ मे वसाया। वही स० १७८० मे इनका देहान्त हुआ। इनके वशज अभी तक किशनगढ मे मौजूद हैं।[११]

वृन्द डिंगल और पिंगल दोनो मे कविता करते थे। इन्होंने ग्रन्थ भी लिखे और फुटकर कविता भी की। शुद्ध और स्वाभाविक अनुभूति के

---

११ वशक्रम—(१) सहदेवजी (२) रूपजी (३) वृन्दजी (४) वल्लभजी (५) सनेही रामजी (६) दौलतराम जी (७) अखैरामजी (८) हसराज जी (९) गोवरधन जी (१०) घनश्यामजी (११) श्रीपति (विद्यमान)।

आधार पर रची हुई इनकी कविता भारतीय साहित्य के विभव को बढाने-वाली है। इन्होंने छोटे-बड़े सब मिलाकर दस ग्रन्थ बनाए जिनका सक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है—

(१) वृन्द-सतसई—यह इनका प्रधान ग्रन्थ है। इसका दूसरा नाम दृष्टान्त-सतसई है। मुगल सम्राट् औरगजेब के पौत्र शाह अजीमुश्शान के विनोदार्थ इसकी रचना का आरंभ कवि ने स० १७६१ मे ढाका शहर मे किया था। इसमे ७१३ दोहे हैं। प्रत्येक दोहा सद्विचार-पूर्ण एव भावापन्न तथा उनसे वृन्द की कवित्व शक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। ज्ञान, नीति तथा उपदेश सबधी विचारो को वृन्द ने ऐसे मन-मोहक एव प्रभावो-त्पादक ढग से चित्रित किया है कि वे तुरन्त पाठक के हृदय मे घर कर लेते है। प्रसाद गुण की बहुलता होने से साधारण पढे-लिखे लोग भी इन दोहो का मर्म समझ लेते हैं और स्थान-स्थान पर उद्धृत कर अपने पक्ष एव प्रसंग का समर्थन करते हैं। दोहे लोकोक्तियाँ बन गई है। हिन्दी साहित्य मे अधुना सात-आठ सतसइयाँ प्रचलित हैं। काव्य प्रेमियो मे सभी का यथेष्ट सम्मान भी है। परन्तु सर्वप्रियता की दृष्टि से यदि देखा जाय तो बिहारी सतसई के अनन्तर वृन्द-सतसई ही उत्कृष्ट रचना ठहरती है।

(२) यमक सतसई—इसमे सातसौ दोहे है। वृन्द-सतसई मे कवि ने भाव-प्रदर्शन की ओर विशेष ध्यान रखा है। पर इसकी रचना उन्होंने कविता के कला-पक्ष और भाव-पक्ष दोनो को सामने रखकर की है। यमक अलकार की छटा एव भाव और भाषा का सामजस्य देखते ही बनता है।

(३) भाव पचाशिका—पच्चीस दोहे और पच्चीस सवैयो के इस छोटे ग्रन्थ की रचना स० १७४३ मे औरगाबाद मे हुई थी। इसमे मनोभावो का बहुत ही चमत्कारपूर्ण वर्णन है। यद्यपि यह ग्रन्थ छोटा है तथापि इसकी रचना बहुत ही सरस और हृदय ग्राहिणी है और वृन्द की भावुकता का परिचय देती है। भाषा भी इसकी बहुत परिमार्जित, प्रौढ और श्रुति-मधुर

है। इसकी रचना के सबंध मे एक कथा प्रसिद्ध है। जब वृन्द औरंगाबाद मे थे तब वहाँ पर किसी काव्य प्रेमी सज्जन ने कवियो की एक सभा की और वृन्द को भी उसमे सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रण दिया। जिस समय सब लोग इकट्ठे हो गए, वहाँ यह प्रश्न उठा कि इस सभा मे सबसे अच्छा कवि कौन है और आज कौन इसका सभापति बनाया जाय। बडी देर तक बहस हुई। जब कुछ भी तय न हो सका, तब उस सज्जन ने कहा कि जो आज रात मे सबसे अच्छी कविता करके लाएगा वही कवि शिरोमणि समझा जायगा। रात भर मे वृन्द ने यह ग्रन्थ बनाया और प्रातःकाल होते ही सबो के सामने जाकर पढा। वृन्द की कविता के सामने किसी दूसरे कवि का रग न जमा और यही बहुमत से सर्वोत्कृष्ट कवि माने गए। वृन्द के शिष्य किशनगढ के मीर मुन्शी माधौदास ने भी अपने 'शक्ति-भक्ति-प्रकाश' मे इस घटना की ओर सकेत किया है —

कारज औ कारण तूं विस्व विस्तारन है
अखिल की पालक सुजोति चिदानन्द की।
तूं ही गति, तूं ही मति, तूंही सुख सपति है,
विपति विहडनि वली है अनन्द की ॥
तेरे गुन गाइबे कौं विधि हू समर्थ नाहिं,
तो कहा गति मेरी रसना मतिमन्द की।
भक्तन की पति राखि ताके सुने गीत साखी
पति राखी मेरता के वासी कवि वृन्द की ॥

(४) शृंगार-शिक्षा—दिल्ली के बादशाह औरगजेब के वजीर नवाब मुहम्मद खाँ के पुत्र मिरजा कादरी, जो अजमेर का सूबेदार था, की कन्या को पतिव्रत धर्म की शिक्षा देने के निमित्त यह ग्रन्थ स० १७४८ मे लिखा गया था। ग्रन्थ के आरभ मे वर और कन्या के लक्षण, उनके गुण-

दूषण, उनकी सुन्दरता तथा उनके सखियो के लक्षणों का वर्णन है। बाद मे स्वकीया नायिका, पतिव्रत-धर्म, नायिका नवोढा, मुग्धा, अज्ञात यौवना, ज्ञात यौवना आदि का विवरण है। तदनन्तर कवि ने १६ शृगारो का बहुत ही सुन्दर, व्यवस्थित तथा काव्य-कलापूर्ण वर्णन किया है। बहुतेरे कवियो के समान न तो इस ग्रन्थ मे भरती के शब्द एव वाक्य हैं और न कही भावावेश मे आकर कवि ने लोक-मर्यादा का उल्लघन किया है।

(५) वचनिका—किशनगढ नरेश महाराजा मानसिह की आज्ञा से महाराजा रूपसिह की ख्याति को अक्षय रखने के लिए वृन्द ने इस ग्रन्थ की रचना स० १७६२ मे की थी। इसमे उस युद्ध का वर्णन है जो धौलपुर के मैदान मे स० १७१५ मे बादशाह शाहजहाँ के पुत्रो—दारा, शुजा, मुराद और औरगजेब मे दिल्ली के तख्त के लिए हुआ था। यह एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है। प्रारभ मे कन्नौज के महाराज राव सीहाजी से लेकर महाराजा रूपसिह तक के राजाओ की वशावली दी गई है। फिर रूपसिह के शौर्य का का वर्णन किया गया है। महाराजा रूपसिह ने दारा का पक्ष लिया था। औरगजेब की फौज को काटते-काटते वे उसकी सवारी के हाथी तक जा पहुँचे और वहाँ पैदल होकर हौदे की रस्सियाँ तलवार से काटने लगे। यह देखकर बहुत से आदमी उन पर टूट पडे और उनके टुकडे-टुकडे कर डाले। जैसा वीरतापूर्ण इतिहास है, वैसी ही वीरतापूर्ण भाषा मे यह लिखा भी गया है। वीर रस का कवि ने ऐसा मौलिक, ओजपूर्ण और लोमहर्षण वर्णन किया है कि पढते ही भुजाएँ फडकने लगती है।

(६) सत्यस्वरूप—यह ग्रन्थ स० १७६४ मे बना था। यह वृन्द की अतिम रचना है। इसमे बादशाह औरगजेब के मरने पर दिल्ली के तख्त के लिए शाहजादा मुअज्जम (बहादुरशाह), आजम, कामबख्श आदि की लडाई का वर्णन है। इस युद्ध मे किशनगढ के महाराजा राजसिह बहादुरशाह की ओर से लडे थे। उनके हाथ से आजमशाह के पक्ष के नवाब

व राजा, महाराजा आदि लड़ने वालो के १७ हौदे खाली हुए जिनमे दतिया के राजा दलपत और कोटा के महाराव राजा रामसिंह मुख्य थे। इस लडाई की विजय का सुयश राजसिंह ही को मिला। इतिहास की लगाम को मानते हुए भी कवि ने अपनी प्रतिभा से 'सत्यस्वरूप' को एक उच्च कोटि का काव्य-ग्रन्थ बना दिया है। भाषा, भाव, छन्द और शब्द-विन्यास, सभी का इसमे अपूर्व सम्मिलन है। विस्तार मे तो यह ग्रन्थ वचनिका से बडा है ही, साथ ही उसकी अपेक्षा इसकी कविता भी अधिक पुष्ट और भावमयी है।

ये इनके बडे ग्रन्थ हैं। छोटे ग्रन्थो के नाम ये हैं पवनपचीसी, समेत सिखर छन्द, हितोपदेशाष्टक, भारत-कथा और हितोपदेश।

वृन्द रचित पिंगल और डिंगल दोनो प्रकार की रचनाओ के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं—

दोहे

आप वरद बाहन वरद, कर त्रिसूल हर सूल।
अहितन अहितन हितनकर, सिव प्रभु सिव सुख मूल॥
दीन वीनती दीन-प्रति, मानहु परम प्रवीन।
हम से अपराधीन को, करिये अपराधीन॥
कुहुकि घूमि चूमैं चुगै, रहै परेवी सग।
अरे परेवा काम को, तू सुख लेत विहग॥
रह्यौ सवूरी साधि कै, चतुर परेवा जानि।
परी परेवी नीड दिव, काँकर साकर मानि॥
रागी औगुन ना गनत, यहै जगत की चाल।
देखो सब ही स्याम कूँ, कहत बाल सब लाल॥
रस अनरस समझै न कछु, पढै प्रेम की गाथ।
बीछू मन्त्र न जानही, साँपहि डारे हाथ॥

कवित्त

पाऊँ जो हुकुम तो न लाऊँ बार एक पल
　　जहाँ पाऊँ तहाँ तै ले आऊँ हेरी हेरि कै॥
गढ़ चूरि, गिरि चूरि, सुभटन लसकर तोरि
　　सीधे करि टारौं गज बाजि पेरि पेरि कै॥
सदन तै बन माँहि, बन तै छप्पन माँहि
　　छप्पन तै घेरि औ घाटिन मे घेरि घेरि कै॥
रूप कहै सग तै गुमान मौ खिसानो करि
　　फिरकी फिरत ज्यौं फिराऊँ फेरि फेरि कै॥
नैननि की ज्योति जो लौ नीकै कै निहार हरि,
　　सुन ले पुरान जो लौं सुनै तुव कान है॥
रसना रसीली जो लौ रसत रसीले बैन,
　　तो लौं हरिगुन गाय जो पै तूँ सुजान है॥
काँपे नाहि कर तो लौं भली भाँति सेवा कर,
　　पायन प्रदक्षिणा दे जो लौ वलवान है।
जरा जकरे नैं कहा करि हो कहत वृन्द,
　　भज भगवान जो लो देह सावधान है॥

गीत सपंखरो

मचै दिली रा चकत दिली दिसा धमचक्का मचै।
　　सँभाळै कायरा धरा सूरा चढै सोह॥
थवै नाळा भडाभडी धडाधडी धूजै धरा।
　　छूटै बाणा गोळी रामचंगिया छछोह॥१॥
तडातडी तठै बगतरा तणी तूटै कडी।
　　धमाधमी ऊठै धणा सेला रा धमोड॥

"झडाझडी जठै तरवारियाँ थी पडै झीक।
रमै खगा महाराजा राजसिंह राठोड ॥२॥
आजम का कटक्का झटक्का तणा वाड खूडै।
जोरावरा पाडै की अजीम तणी जीप ॥
वकारै हकारै हाथी भिडायै वरच्छी वाहै।
पछाडियौ हाडी राम मान रै महीप ॥३॥
घसै जठी तठी घणा वैरिया विघूसे धीग।
चाचरा घपायै धरा रगी घणू चोळ ॥
पाडै घणा उमीरा हमीरा होदा विचा पाडै।
रूपहरै कीवी फतै वैरिया विरोळ ॥४॥"[12]

वादर

ये जाति के ढाढी थे। इनका लिखा 'वीरमाण'* नामक डिगल भाषा का एक ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। इसमे मडोवर के राव मल्लिनाथ के पुत्र जगमाल और उनके भतीजे वीराम जी की युद्ध-वीरता का वर्णन है। परन्तु, जैसा कि कुछ लोग मान वैठे है, यह वीरमजी की समकालीन रचना नही है। कोई अठारहवी शताब्दी के मध्य मे रची गई है। इसके अधिक भाग मे वीरमजी और जोइयो की उस लडाई का वृत्तान्त है जो स० १४४७ के लगभग लखवेरा नामक स्थान मे हुई थी और जिसमे वीरमजी वडी वीरता से लडते हुए काम आए थे।

---

१२ औरगजेव की मृत्यु के वाद उसके वेटो—मुअज्जम, आजम और कामवख्श मे राजसिंहासन के लिए युद्ध हुआ जिसमे किशनगढ के महाराजा राजसिंह ने मुअज्जम का और कोटा के महाराव रामसिंह ने आजम

उसमे व्यवहृत मुख्य छन्द नीसाणी है। इसलिए इनका दूसरा नाम 'नीसाणी वीरमाण री' भी है। इसकी पद्य संख्या २८५ है। वीररस की बडी सबल, सजीव और फडकती हुई रचना है। उदाहरण—

सुत च्यारूं सळखेस रै, कुळ मैं किरणाळा।
राजस बका गाढवड, वर वीर वडाळा॥
साथ लियाँ दळ सामठा, विरदा रखवाळा।
भिडियाँ भाख्य भीम सा, दळ पारथ वाळा॥

का पक्ष लिया। रामसिंह महाराजा राजसिंह द्वारा मारे भी गये थे। इस गीत मे उसी युद्ध का वर्णन है।

दिल्ली के मुसलमान दिल्ली की तरफ धमचक मचा रहे है। सब सूरो ने चढकर कायरो के घरो को संभाल लिया है। भडाभड-धडाधड आवाज करती हुई वन्दूकें चल रही है जिससे पृथ्वी गूंजती है। तीर चल रहे है। तोपो से वडे वेग के साथ गोले छूट रहे हैं॥१॥ बख्तरो की कडियां तडातड टूट रही हैं। धमाधम की आवाज के साथ भालो के भारी प्रहार हो रहे है। तलवारो से झडाझडी झीक उड रही है। महाराजा राजसिंह राठोड तलवारो से खेल रहे हैं। ॥२॥ प्रहारो से आजम की सेनाओ का दलनकर, जोरावरो को गिराकर, अजीमुश्शान (आजम का बेटा) की जीत की ललकार डकारकर हाथी भिडाये और फिर बरछी चलाकर महाराजा मानसिंह के बेटे राजसिंह ने हाडा रामसिंह को पछाडा ॥३॥ इधर उधर घुसकर उस जबरदस्त ने वैरियो का विध्वस किया। पृथ्वी को लाल रंग से खूब रंगकर नरमुडो से तृप्त किया। बहुत अमीर-उमरावो को हौदो मे गिरा, वैरियो का नाश कर, रूपसिंह के वशज (राजसिंह) ने विजय प्राप्त की ॥४॥

*वीरस + अयन=वीरस+अयण=वीरसायण=वीरसाण।

देस दसू दिस दाविया, कीधा धकचाळा।
अरि औद्राह्या उड ग्या, कइ ताळ विमाळा॥
माल अगजी मुरधरा, ग्रहकै ग्रमाळा॥[१३]

हरिनाभ

ये जयपुर राज्यातर्गत खडेला (वडा पाना) के निवासी और वहाँ के राजा केसरीसिंह के आश्रित थे। ये जाति के पारीख ब्रह्मण थे। शाडिल्य इनका गोत्र था। रचनाकाल स० १७४०-५४ है। इन्होंने 'केसरीसिंह समर' नाम का एक ग्रन्थ वनाया जिसमे शेखावत-वश प्रवर्तक राव शेखाजी से आरभ कर राजा केसरीसिंह तक के इतिहास का वर्णन किया गया है। केसरीसिंह ने औरगजेब की हिन्दू हितविघातिनी नीति का विरोध किया था। इस पर वह इनसे नाराज हो गया और स० १७५४ मे अपने सेनापति नवाव अब्दुल्ला खाँ को एक वडी सेना देकर इनके विरुद्ध लडने को भेजा। खडेले के पास हरीपुरे के मैदान मे भारी सग्राम हुआ जिसमे केसरीसिंह अपने अनेक योद्धाओ सहित वीरगति को प्राप्त हुए और उनकी चार रानियाँ उनके साथ सती हुईं।

'केसरीसिंह-समर' पिंगल भाषा का ग्रन्थ है। इसमे छप्पय, हनूफाल, मोतीदाम, भुजगप्रयात आदि विविध छन्दो का प्रयोग किया गया है। इसकी पद्य-सख्या ४५९ है। ग्रन्थ यद्यपि वर्णनात्मक है तथापि मार्मिक

---

१३ सलखेस=सलखाजी। किरणाला=सूर्य के समान। राजसं=राज-कार्य। वडाला=वडे। सामठा=मजवूत, भारी। विरदां=यश। भारथ=युद्ध। धकचाला=धाक। अरि विमाला। दुश्मन भयभीत होकर भाग गये है। माल=मल्लीनाथ। अगजी=अजेय। ग्रहकै=वजते हैं। ग्रमाला=नगाडे।

स्थलो पर कवि ने अपनी सहज रससिक्त लेखनी से अनेक सुन्दर चित्र उपस्थित किये है। युद्ध-वर्णन, सतीचरित्र-वर्णन बडा ही मनोहारी है। इसी प्रकार सती-परी प्रश्नोत्तरी के वर्णन मे भी कवि ने अपनी स्वाभाविक सूक्ष्मदर्शिता और काव्यशक्ति का अच्छा परिचय दिया है। उदाहरण—

चढिकै तव राज निसान कियै, हय ऊपर पाखर डारि दियै।
तवही अग सूरन कोच कसै, जमराज भयकर रूप जिसै ॥
जरि कै गज पाखर साजवने, मनु पाय चले सु पहार घने।
सजि कै सब तोपन अग्ग कियै, उडि खूरन धूरिन छाय रियै ॥

दयाल

ये मेवाड-निवासी जाति के राव थे। इनका पूरा नाम दयाराम था। इन्होंने राणा रासो नाम का एक ग्रन्थ बनाया जिसमे मेवाड का इतिहास वर्णित है। इसकी स० १९४४ की लिखी हुई एक प्रति मिली है जिसे स० १६७५ की हस्तलिखित प्रति की नकल बतलाया गया है[१४]। परन्तु यह बात मान्य नही है, क्योकि इसके अतिम भाग मे महाराणा कर्णसिंह (स० १६७६-८४) का सविस्तार वृत्तान्त दिया हुआ है और प्रारभ मे महाराणा जगतसिंह (स० १६८४-१७०९), महाराणा राजसिंह (स० १७०९-३७) तथा महाराणा जयसिंह (स० १७३७-५५) का भी नामोल्लेख है जो सब स० १६७५ के बाद हुए है—

सीसोदा जगपति, नृपति, ता सुत राजरू रान।
तिनकै निरमल वंस कौ, करयौ प्रसमु बखान ॥

---

१४ राजस्थान मे हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थो की खोज, (प्रथम भाग), पृ० ११८।

राजस्यघ कै पाट अव, बैठे जैस्यघ रान।
घरा ध्रम्म अवतार लै, मनौ भान कै भान॥

साफ है कि ग्रन्थ महाराणा जयसिंह के समय में सं० १७३७ और सं० १७५५ के बीच मे किसी समय लिखा गया है। और मूल प्रति का लेखन-काल सं० १६७५ जो बतलाया गया है वह ठीक नही है। शायद सं० १७७५ के स्थान पर भूल से सं० १६७५ लिखा गया है।

राणारासौ पिंगल भाषा का एक ऐतिहासिक काव्य है। इसकी रचना चारण-भाटो की प्रथाबद्ध रीति पर हुई है। सरस्वती और गणपति की वन्दना के पश्चात् कवि ने सृष्टिकर्ता ब्रह्म से लेकर महाराणा जयसिंह तक के मेवाड के राजाओ की वशावलि दी है। बापा रावळ को एकलिंग का पुत्र कहा गया है। बापा रावळ और अजयसिंह के बीच के राजाओ के नामो मे से कुछ नाम ठीक है और कुछ गलत। बाद के सभी नाम ठीक हैं। महाराणा कुम्भा, महाराणा उदयसिंह, महाराणा प्रताप और महाराणा अमरसिंह का वर्णन बहुत विस्तारपूर्वक किया गया है। विशेषकर इनके विभिन्न युद्धों का वर्णन बहुत सजीव और चित्रोपम ढंग पर हुआ है। रचना इस तरह की है।

इक चढत उतरत इक इकनि विच घावतु।
परि पत्थर लरथरत सथु महि मथु लगावतु॥
ठूंठ ठेप उछरन्त पूंछ हय झार उरझत।
गिरति पाग तर लाग मुड कटि तुड मुरझत॥
ववकत वाघ वाराह वहु सहु ववकत न काज वस।
उछटत रीछ हय हीस सुनि पुनि शृगाल कल सेह सस॥

सुरती

ये मेवाड राज्य के कोठारिया ठिकाने के स्वामी रावत उदयभान के आश्रित थे। इनके लिखे दो ग्रन्थ मिले है 'त्रिया विनोद' और 'अश्वमेघ

यज्ञ'। लेकिन इनसे इनके व्यक्तिगत जीवन के विषय मे कुछ भी मालूम नही होता, सिर्फ इतना ही सूचित होता है कि 'त्रिया विनोद' को इन्होने रावत उदयभान के कहने से स० १७६३ मे और 'अश्वमेघ-यज्ञ' को मेवाड के महाराणा जयसिंह की आज्ञा से स० १७७५ मे बनाया था। ये दोनो ग्रन्थ पिंगल मे है। कविता-शैली भी दोनो की समान रूप से मधुर और रोचक है। रचना इस ढग की है।

> राजा आवध चालवै, तीर तुपक तरवार।
> आलस करै न अग मे, तौ पर घर लै मार॥
> राजा सोई जानियै, अरि ल्यावै गहि बाँह।
> घरपत सब घर का करै, सुख दे सोवत नाँह॥

नागरीदास

नागरीदास किशनगढ के महाराजा राजसिंह के पुत्र और महाराजा मानसिंह के पौत्र थे। इनका जन्म स० १७५६ मे हुआ था। इनका असली नाम सावतसिंह था। कविता मे नागरी, नागर, नागरीदास और नागरिया लिखा करते थे। अपने पिता के पाँच पुत्रो मे नागरीदास तीसरे थे। इनका विवाह भानुगढ के राजा यशवतसिंह की पुत्री के साथ हुआ था। इनसे तीन सतानें हुईं, दो कन्याएँ और एक पुत्र। पुत्र का नाम सरदारसिंह था।

नागरीदास बडे वीर और बहुत साहसी थे। दस वर्ष की उम्र मे इन्होंने एक मतवाले हाथी को तलवार की एक चोट से विचलित कर दिया था और तेरह वर्ष की अवस्था मे बूँदी के हाडा जैतसिंह को मारा था। इन्होंने दो अगुल चौडे बाढवाली नये ढग की एक तलवार का आविष्कार किया था जिसे 'सावतशाही बाढ' कहते है।

इनके पिता महाराजा राजसिंह के ज्येष्ठ पुत्र सुखसिंह राजगद्दी का मोह छोडकर साधू हो गए थे और द्वितीय पुत्र फतहसिंह का देहान्त पिता के जीवन-काल ही मे हो गया था। इसलिए किशनगढ की राजगद्दी पर अब नागरीदास का हक पहुँचता था। परन्तु दैव-दुर्विपाक से एक दिन के लिए भी इन्हे राज्य-सुख भोगने का अवसर नही मिला। बात यह हुई कि स० १८०५ मे जब इनके पिता महाराजा राजसिंह का देहान्त हुआ तब ये दिल्ली मे थे। वही बादशाह अहमदशाह ने इन्हे किशनगढ राज्य का उत्तराधिकारी नियत किया। परन्तु इनकी अनुपस्थिति मे इधर इनके छोटे भाई बहादुरसिंह किशनगढ के राजा बन बैठे। भाई के अनधिकार प्रयत्न की सूचना जब नागरीदास को दिल्ली मे मिली तब एक महती सेना लेकर उनसे लडने के लिए ये किशनगढ आए। दोनो भाइयो की सेनाओ मे भयकर युद्ध और रक्तपात हुआ। परन्तु बहादुरसिंह की सेना ने इन्हें किशनगढ की सरहद मे पाँव न रखने दिया। निराश होकर ये दिल्ली लौट गए और वहाँ से अपने राज्य को पुन हस्तगत करने का उद्योग करते रहे। मुगल साम्राज्य के ढलते दिन थे और अहमदशाह की अवस्था उस समय अत्यन्त दयनीय थी। इसलिए वह इन्हे यथेष्ट सहायता न दे सका। अतएव दिल्ली मे अधिक दिनो तक रहना व्यर्थ समझ तथा मरहठो से सहायता प्राप्त करने की आशा से ये दक्षिण की ओर जाने को रवाना हुए। जब वृन्दावन पहुँचे तब वहाँ हरिदास नामक एक वैष्णव ने इन्हे कहा कि अब आपको राज्याधिकार प्राप्त हो ऐसा योग नही है और अवस्था भी आपकी पचास से ऊपर हो गई है। इसलिए सब झझटो को छोडकर भगवद्भजन करो और अपने कुँवर को राज्य प्राप्ति के लिए उद्योग करने दो। यह सुनकर आप तो वही रह गए और अपने पुत्र सरदारसिंह को मरहठो की सेना देकर बहादुरसिंह के विरुद्ध लडने को भेजा। बहुत लडाई के बाद बहादुरसिंह ने किशनगढ का आधा राज्य सरदार सिंह को दे दिया, जिसमे सारवाड, फतहगढ और रूपनगर

ये तीनो परगने सम्मिलित थे। नागरीदास ने वृन्दावन से आकर आश्विन सुदी १० सं० '१८१४ के दिन सरदारसिंह का राज्यतिलक किया।

पुत्र का राज्याभिषेक हो जाने के पश्चात् नागरीदास वापस वृन्दावन चले गए और वहाँ कृष्ण-भक्ति मे लीन रहने लगे। जब कभी एक-आध दिन के लिए आते भी थे तो किशनगढ मे इनका मन नही लगता था। अतिम बार यह कवित्त कहकर वृन्दावन की ओर चले गए और आजीवन न लौटे।

ज्यो ज्यो इत देखियत मूरख विमुख लोग
त्यो त्यो व्रजवासी सुखरासी मन भावै है।
खारे जल छीलर दुखारे अन्ध कूप चितै
कालिन्दी कूल काज मन ललचावै है॥
जेती है बीतत मो कहत न बनत बैन
नागर न चैन परै प्राण अकुलावै हैं।
थूहर, पलास, देख-देख के बबूल बुरे
हाय हरे हरे वे कदम्ब सुध आवे है॥

नागरीदास का गोलोकवास सं० १८२१ भादो सुदी ५ को वृन्दावन मे किशनगढ राज्य की कुज मे, जो नागर-कुज के नाम से प्रसिद्ध है, हुआ था। वहा पर इनकी समाधि, चरणचिह्न आदि विद्यमान है, जिनकी अभी तक पूजा होती है। किशनगढ राज्य की ओर से 'नागर-कुज' मे २५ मनुष्यो को हमेशा सदावर्त मिलता है, और जब कभी महाराजा साहब का उधर पधारना होता है तब वे स्वय नागरीदास के चरण-चिह्नो की पूजा करते है। समाधि मे निम्नलिखित छप्पय खुदा हुआ है।

सुत को दे युवराज, आप वृन्दावन आये।
रूपनगर पति भक्ति, वृन्द बहु लाड लडाये॥

सूरवीर गभीर रसिक, रिझवार अमानी।
सत चरनामृत नेम, उदधि लौं गावै बानी॥
नागरीदास जगविदित सो, कृपा द्वार नागर ढरिय।
सावन्तसिह नृप कलि विषै, सत त्रेता सम आचरिय॥

नागरीदास-सस्कृत, फारसी आदि भाषाओं के सुज्ञाता और ब्रजभाषा एव ब्रजभूमि के अनन्य उपासक थे। इनकी रचना से वृन्दावन के प्रति इनकी अखड भक्ति टपकती है। इन्होंने छोटे-छोटे ७७ ग्रन्थ बनाए जिनका सग्रह 'नागर-समुच्चय' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। ग्रथो के नाम ये हैं—

(१) सिंगारसागर (२) गोपीप्रेमप्रकाश (३) पदप्रसगमाला (४) ब्रजवैकुण्ठतुला (५) ब्रजसार (६) भोरलीला (७) प्रातरस मजरी (८) विहारचद्रिका (९) भोजनानन्दाष्टक (१०) जुगलरस माधुरी (११) फूल-विलास (१२) गोधन आगम (१३) दोहन आनन्द (१४) लग्नाष्टक (१५) फागविलास (१६) ग्रीष्मवहार (१७) पावस पचीसी (१८) गोपीवन विलास (१९) रास-रसलता (२०) रैनरूपा रस (२१) सीतसार (२२) इश्कचमन (२३) मजलिसमडन (२४) अरिलाष्टक (२५) सदा की माँझ (२६) वर्षा ऋतु की माँझ (२७) होरी की माँझ (२८) कृष्ण जन्मोत्सव कवित्त (२९) प्रिया जन्मोत्सव कवित्त (३०) साँझी के कवित्त (३१) रास के कवित्त (३२) चाँदनी के कवित्त (३३) दिवारी के कवित्त (३४) गोवर्धन धारण के कवित्त (३५) होरी के कवित्त (३६) फाग गोकुलाष्टक (३७) हिडोरा के कवित्त (३८) वर्षा के कवित्त (३९) भक्तमगदीपिका (४०) तीर्थानन्द (४१) फागविहार (४२) बालविनोद (४३) सुजनानन्द (४४) वनविनोद (४५) भक्तिसार (४६) देहदशा (४७) वैरागवल्लरी (४८) रसिक

रत्नावली (४९) कलिवैरागवल्लरी (५०) अरिल्ल पच्चीसी (५१) छूटक विधि (५२) परायणविधिप्रकाश (५३) शिखनख (५४) नख-शिख (५५) छूटक कवित्त (५६) चरचरियाँ (५७) रेखता (५८) मनोरथमजरी (५९) रामचरित माला (६०) पदप्रबोध माला (६१) जुगलभक्तिविनोद (६२) रसानुक्रम के दोहे (६३) शरद की साँझ (६४) साँझी-फूल बानन समेत सवाद (६५) फाग खेलन समेतानुक्रम कवित्त (६६) बसत वर्णन (६७) रसानुक्रम के कवित्त (६८) निकुज विलास (६९) गोविंदपरचई (७०), बनजगप्रससा (७१) छूटक दोहा (७२) उत्सवमाला (७३) पदमुक्तावली (७४) वैनविलास (७५) गुप्तरसप्रकाश (७६) धन्य धन्य (७७) व्रज सम्बन्धी नाममाला।

नागरीदास श्रृगारी भक्त एव प्रेमी जीव थे। विधाता ने इन्हे कवि हृदय प्रदान किया था। अत श्रृगार का पूर्ण परिपाक इनकी रचनाओ मे विद्यमान है। वैष्णव सम्प्रदाय के कृष्णोपासक भक्त कवियो के समान इन्होंने भी राधाकृष्ण की प्रेमलीला विषयक श्रृगार रसात्मक कविताएँ अधिक सख्या मे रची हैं, पर ईश्वर-भक्ति के नाम पर श्रृगार रस की पिपासा शान्त करने की प्रवृति कही भी दृष्टिगोचर नही होती। विशुद्ध श्रृगार के साथ-साथ कृष्ण-भक्ति की उत्ताल तरगे इनकी कविता मे प्रवाहित हो रही है और उसमे कुछ ऐसे माधुर्य्य, ऐसा रस एव जादू है कि जो कोई उसे एक बार भी पढ लेता है वह सदैव के लिए नागरीदास का बन जाता है। नागरीदास नैसर्गिक कवि थे। इनकी कविता मे न तो परिश्रम की झलक है, न दूर की कौडी लाने का प्रयत्न और न पाण्डित्य-प्रदर्शन की रुचि। सीधी बात को सीधे ढग से कहकर इन्होने हृदय की सुकुमार वृत्तियो को छेडने का उद्योग किया है। भाषा और भाव दोनो मे सादगी, सहृदयता और प्रेम-जनित मस्ती है। दोनो ही बडे प्रेम से गले मिले हुए हैं। उदाहरण—

कृष्ण-भक्ति-सुख लेत न अजहूँ, वृद्ध देह दुख-रासी।
'नागरिया' सोई नर निहचै, जीवत नरक-निवासी॥

दोहा

मुख मुदे रहु मुरलिया, कहा करत उतपात।
तेरे हाँसी घर बसी, औरन के घर जात॥
बाजे मति मति बाँसुरी, मति पिय अधरन लागि।
अरी घर बसी देत क्यो, रोम रोम मे आगि॥
पीय लियो पिय मन लियो, लियो अधर रस झूम।
इतौ लयौ तै कहा दियो, वैरनि बसी भूम॥
गाठ गठीले बाँस की, महा द्रोह की खान।
मति मारै री मुरलिया, तानन विष के बान॥

वीरभाण

ये जोधपुर राज्य के घडोई ग्राम के रहने वाले रत्नू शाखा के चारण थे। इनका जन्म स० १७४५ मे और देहावसान स० १७९२ मे हुआ था। इनका लिखा 'राजरूपक' डिंगल भाषा का एक सुप्रसिद्ध ग्रथ है जो नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, द्वारा प्रकाशित भी हो चुका है। इसका मुख्य विषय जोधपुर के महाराजा अभयसिंह और गुजरात के सूबेदार शेर विलदखाँ की लडाई है जो स० १७८७ मे अहमदाबाद मे हुई थी और जिसमे शेर विलंदखाँ परास्त हुआ था। परन्तु महाराजा अभयसिंह के पिता महाराजा अजीतसिंह और दादा महाराजा जसवतसिंह की जीवन-घटनाओ पर भी इसमे खूब प्रकाश डाला गया है। उल्लिखित अहमदाबाद की लडाई मे वीरभाण महाराजा अभयसिंह के साथ थे। अत इस ग्रथ मे उन्होंने इस युद्ध का अपनी आँखो देखा वर्णन किया है। राजरूपक की एक बहुत बडी विशेषता

यह है कि इसमे घटनाओ के ठीक-ठीक सवत् और युद्ध मे भाग लेने वाले सरदार-सामतो आदि के नाम भी दिए गए है जो बहुत उपयोगी है। ग्रथ ४६ प्रकाशो मे विभक्त है। इसका ऐतिहासिक मूल्य यथेष्ट है। भाषा इस तरह की है—

> सुदर भाल विसाल, अळक सम माळ अनोपम।
> हित प्रकास म्रदु हास, अरुण वारिज मुख ओपम॥
> क्रपा-धाम नव कज, नयन अभिराम सनेही।
> रुचि कपोळ ग्रीवा त्रिरेख, छवि वेसे अछेही॥
> निरखत सत सनमुख निजर, करण पुनीत सुप्रीत कर।
> गुण मान दान चाहै सुग्रहि, कवि सुग्यान औ ध्यान धर॥

करणीदान

ये कविया शाखा के चारण मेवाड राज्य के शूलवाडा गाँव के निवासी थे। कर्नल टाड ने इन्हे कन्नौज का और प० रामकर्ण जी आसोपा ने आल्हावास का चारण वतलाया है जो गलती है। ये जोधपुर के महाराजा अभयसिंह के आश्रित थे। इनका रचना काल स० १८०० के आस-पास है। इन्होंने सूरजप्रकास नाम का एक ग्रथ रचा जिसमे ७५०० छद हैं। इसकी रचना से प्रसन्न होकर उक्त महाराजा ने इनको लाखपसाव दिया और इनका इतना मान बढाया कि इन्हे हाथी पर सवार किया और स्वय घोडे पर चढकर उनकी जलेव (हाजिरी) मे चले और उनको अपने घर पहुंचाया। इस विषय का यह दोहा प्रसिद्ध है—

> अस चढियौ राजा अभौ, कवि चाढै गजराज।
> पोहर हेक जलेव मे, मोहर चले महराज॥

सूरजप्रकास डिंगल भाषा का एक बहुत उत्तम कोटि का ग्रथ है। यह चारण काव्य-परम्परा का अच्छा प्रतिनिधित्व करता है। विषय इसका भी

लगभग वही है जो पूर्वोक्त वीरभाण कृत 'राजरूपक' का है। परन्तु भाषा, साहित्य एवं विषय-विस्तार की दृष्टि से यह उससे अधिक पूर्ण है। महाराजा अभयसिंह को सुनाने के लिए करणीदान ने सूरजप्रकास का सारांश एक दूसरे छोटे ग्रंथ के रूप मे लिखा था जिसका नाम 'विडद-सिणगार' है। इसमे १२६ पद्धरी छंद है। रचना यह भी उत्कृष्ट है। इनकी कविता का नमूना लीजिए—

कालिका डहकि डवरूरू काक। हर रिप मिलि जोगणि वीर हाक।
लग लहस्र अरावा धोमि लागि। ऊछळिया गोळा चौळ आगि॥
जळधर अग्राज चटि धोम जोर। घण निसा अमावस तिमिर घोर।
पखरैत भिडज जरदैत पूर। मंधार हुवै अणपार सूर॥
छुटै अस्होसम्ह कुहुकबाण। पमगा गज सुभटा उडै प्राण॥
पग हाथ उडै धड सीस पाट। आहुडै क्रोध पौरिस उपाट॥
हाकलै भटा जैचद अथाह। सुरताण माल पर तेज साह॥
तन फूटि पडत तडफडत ताय। लग हेक जाणि लोटण लुटाय॥
पाडि सोक भयकर उडि पखाळ। काळि मे जाणि घण प्रलय काळ॥[15]

हित वृन्दावनदास

ये पुष्कर-क्षेत्र के रहनेवाले गौड ब्राह्मण थे और स० १७६५ मे पैदा हुए थे। श्रीराधावल्लभीय गोस्वामी हितरूपजी इनके गुरु थे। इनके माता, पिता आदि के सम्बन्ध मे कुछ ज्ञात नही है। नागरीदास के भाई बहादुरसिंह इन्हे बहुत मानते थे। इसलिये ये प्राय. किशनगढ ही मे रहा करते थे। पर

---

१५ रिप = ऋषि, नारद। अरावा = तोपे। अग्राज = गर्जना। पखरैत = पाखरवाले। भिडज = घोडे। जरदैत = कवचयुक्त। पमगा = घोडे। आहुडे = लडते है। लोटण = कबूतर। पखाल = गीध आदि पक्षी।

बाद मे जब राज घराने मे राज्य सम्बन्धी झगडे उठ खडे हुए तब ये किशनगढ छोड कर वहाँ से वृन्दावन चले गए और अन्त समय तक वही रहे। स० १८४४ तक की इनकी रची कविताएँ मिलती है पर इसके बाद की नही मिलती। इससे अनुमान होता है कि उक्त सवत् के आसपास किसी समय इन्होने शरीर छोडा होगा।

वृन्दावनदास भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक थे। इन्होंने कृष्ण-लीला विषयक छोटे-बडे कई ग्रथ बनाए जिनके नाम ये है।

(१) कृष्ण गिरि पूजन वेलि (२) श्री, हितरूपचरित वेलि (३) भक्तिप्रार्थनावली (४) चौबीस लीला (५) हिंडोरा (६) श्री ब्रज प्रेमानन्द सागर (७) कृष्ण गिरिपूजन मगल (८) हरिनाम महिमावली (९) हितहरिवश चन्द्रजू की सहस्र नामावली (१०) भाव विलास टीका (११) राधा सुधा निधि (१२) सेवक बानी (१३) रसिक यशवर्णन (१४) युगल प्रीतिपचीसी (१५) आनन्दवर्द्धन वेलि (१६) नवम समय प्रवध श्रृखला (१७) कृष्ण सुमिरन पचीसी (१८) कृष्ण विवाह उत्कठा (१९) रास उत्साह वर्द्धन (२०) इष्टभजन पचीसी (२१) जगनिर्वेद पचीसी (२२) पद (२३) प्रार्थनापचीसी (२४) राधाजन्म उत्सव वेलि (२५) वृषभानु जस पचीसी (२६) राधाबाल विनोद (२७) लाडली जी की जन्म बधाई (२८) हित कल्पतरु (२९) भक्त सुजस वेलि (३०) करुणा वेलि (३१) भँवर गीत (३२) लीला (इसमे छोटे-छोटे ४१ ग्रथ है) (३३) हरि कला वेलि (३४) लाड सागर (३५) सेवक जी की विरु-दावली (३६) छद्म षोडशी (३७) रसिक अनन्य (३८) ख्याल विनोद (३९) ब्रज विनोद (४०) वेलि (४१) हितरूप चरितावली (४२) सेवक जी की परिचर्यावली।

इनके सिवा इन्होंने अष्टयाम, समय प्रबध, अष्टक, वेलि, पचीसी आदि भी कई लिखे है।

इन्होने श्रीकृष्ण के भोजन, शयन, रास आदि का बडा विशद वर्णन किया है। सबसे बडी विशेषता जो इनकी रचना मे हमे दीख पडती है वह इनकी शुद्ध, सरल और व्यवस्थित व्रजभाषा है। इनकी पदावली मे काति, माधुर्य्य और कोमलता है। पद-विन्यास भी बहुत ललित है। भावुक कवि के आराध्य देव के प्रति उठनेवाली भाव-तरग का हृदयग्राही दृश्य इनकी कविता मे हमे देखने को मिलता है। उदाहरण—

पद

(१)

सोभा केहि विधि बरनि सुनाऊँ।
इक रसना, सोउ लोचन-हीना कहाँ पार क्यो पाऊँ॥
अग-अग लावन्य-माधुरी वुधि बलि किती बताऊँ।
अतुलित सुनति कहि गये क्यो दृग पल, रजि धरिजु उचाऊँ॥
नव वय-सधि दुहुनि नित उलहत, जव देखौ तव औरै।
यहि कौतुक मेरो सुनि सजनी, चित्त न रहत इक ठौरै॥
लोकन सुनी दृगन् नहिं देखी, ऐसी रूप निकाई।
मेरी तेरी कहा चलीं, खग-मृग-मति प्रेम विकाई॥
कवहूं गौर स्याम तन कवहूं, लोचन प्यासे धावें।
कह घटि जात सिंधु कौ, पछी जो चौचन भरि लावें॥
सुदरता की हद मुरलीधर, वेहद छवि श्रीराधा।
गावै वपु अनन्त धरि, शारद, तऊ न पूजै साधा॥
न्याइ काम करवट ह्वै निकसत, पिय अरु रूप गुमानी॥
वृन्दावन हितरूप, कियो वस, सो कानन की रानी॥

(२)

प्रीतम, तुम मो दृगनि वसत हौ।
कहा भरोसे ह्वै पूछत हौ, कै चतुराई करि जु हँसत हौ?
लीजै परखि स्वरूप आपनो, पुतरिन मे तुमही जु लसत हौ।
वृन्दावन हितरूप, रसिक तुम, कुज लडावत हिय हुलसत हौ॥

सूदन

हिन्दी के वीर रस के कवियो मे सूदन का स्थान बहुत ऊँचा माना गया है। कोई-कोई तो चन्द बरदाई के बाद इन्ही को वीर रस का सर्वोत्कृष्ट कवि मानते हैं। पर दुःख है कि इनके व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध मे हिन्दी ससार को बहुत कम बातें अभी तक मालूम हुई है। इनके रचे 'सुजान-चरित्र' ग्रथ से भी केवल इतना ही सूचित होता है कि ये जाति के माथुर एव मथुरा के निवासी थे और इनके पिता का नाम बसन्त था—

मथुरापुर सुभ धाम, माथुर कुल उतपत्ति वर।
पिता वसन्त सुनाम, सूदन जानहु सकल कवि॥

सूदन भरतपुर के राजा सूरजमल उपनाम सुजानसिंह के आश्रित थे। इन्होंने 'सुजान-चरित्र' नामक एक ग्रथ बनाया जिसमे सूरजमल के युद्धो का वर्णन है और स० १८०२ से स० १८१० तक की घटनाएँ कही गई हैं। ग्रथ सात जगो मे विभक्त है। प्रत्येक जग मे कई अक हैं जिनको किसी खास नियम के अनुसार नही रखा गया है। स्वर्गीय पडित रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि सूरजमल की वीरता की जो घटनाएँ कवि ने 'सुजान-चरित्र' मे वर्णित की हैं वे कपोल-कल्पित नही, ऐतिहासिक हैं। परन्तु उनका यह कथन ठीक नही है, क्योंकि इसमे अनेक ऐसी बातें लिखी मिलती है जो वास्तविकता से बहुत दूर हैं। उदाहरण के लिए एक स्थान पर सूदन ने सूरजमल का मेवाड को जीतना लिखा है जो बिलकुल निर्मूल है। सच तो

यह है कि मेवाड के किसी महाराणा का कोई युद्ध ही सूरजमल के साथ नही हुआ। हार-जीत तो बहुत दूर की बात है।

सूदन की भाषा पिंगल है जिस पर पूरवी-पजाबी का भी पुट लगा हुआ है। केशवदास की तरह इन्होंने भी छन्द बहुत जल्दी-जल्दी बदले है और जिस स्थान पर जिस छन्द का प्रयोग किया है वहाँ छन्द-शास्त्र के नियमो का पूरी तरह से पालन किया है। अतएव एक तो छन्दोभग इनकी कविता मे बहुत कम है; दूसरे, गति भी अच्छी है। इनकी वर्णन-शैली साधारण रूप से सजीव एव कविता ओजस्विनी है, पर जैसा कि युद्ध की तैयारी के समय हथियारो तथा दिल्ली की लूट के समय बाजार के वर्णन मे देखा जाता है, वस्तुओ की नामावली प्रस्तुत करने मे कही-कही ये इतने आगे बढ गये है कि पढते-पढते जी ऊब जाता है। इनकी कविता का थोडा-सा अश यहाँ देते है।

जुटे रुहेले जट्टही। न कोई वीर हट्टही॥
सु एक एक डट्टही। झपट्टही लपट्टही॥
अनेक अग्ग बाहही। कितेक मार छाँहही॥
किते परे कराहही। हकार सौ रपट्टही॥
कहुँक हथ्थ हथ्थही। भरे कहुँक बथ्थही॥
परे सु लथ्थपथ्थही। सपट्टिकै चपट्टही॥
उताल चाल हाल सौ। धवत कोह ज्वाल सौ॥
गहे कृपाल ढाल सौं। अरीनु कौ कपट्टही॥
धमकि धिंग धावही। तमकि तेग आवही॥
झमकि कै चलावही। बुलावही बलक्कि कै॥
कटत कध कुडला। छटत बाहु डुडला॥
फटत पेट रुडला। ढुलावही ढलक्कि कै॥

करे कहूँ छुरा छुरी। परे कवन्ध रातुरी ॥
कितेक टूटि जावुरी। हलावही हलक्कि कं ॥
भलक्कि भाल भाल ही। झलक्कि झाल झालही ॥
रलक्कि घाव घालही। घुलावही घलक्कि कं ॥
लुटियौ लडुआ बहु भाँतिन के। लुकती अरु मोदक पाँतिन के ॥
कलकद सुमेथिय मूग दला। सिमई सतसूत मगद् भला ॥
सुठि सेव सु औरिहूं गोदगिरी। खुरमा मठरी भरि ली गठरी ॥
गुप-चुप्प गुना गुल पापरियाँ। खजला सु खजूरि खडापरियाँ ॥
अमृती रु जलेबिनु पुज लुटे। खिरमादर मिस्ति चुटे सुफुटे ॥
गुझिया गुलकद गुलाब करी। तिरकौनु सुहारिन मोट भरी ॥
बहु घेवर बावर मालपुवा। अरु सेव कचौरिन लेत हुवा ॥
हलुआ हिसमी बहु फेननु की। कतरी रसना-सुख चैननु की ॥
कहुँ लेत निवात बतासन कौ। सु गिंदौरन ए रनवासिन कौं ॥
अरु खोवन ढेर बखेर दए। बहु खाड खिलौनन लेत भए ॥
अरु लाइचदाननु गोद भरें। दधि दूवन के परसाद करें ॥
कुजतीतिल सक्कर रेवरियाँ। बहु पाक पुडार जु सेवरियाँ ॥
पकवान जथा रचि और घना। बुहरी परमल्ल सुखोल चना ॥

नन्दराम

ये मेवाड के महाराजा जगतसिंह (दूसरे) के आश्रित कवि जाति के ब्राह्मण थे। इनके 'शिकारभाव' और 'जगविलास' नाम के दो ग्रंथ मिले हैं जो क्रमश स० १७९० और स० १८०२ मे लिखे गए थे। 'शिकार भाव' मे महाराणा जगतसिंह की शिकार का और 'जगविलास' मे उनकी दिन-चर्य्या, राज्यवैभव तथा जग-निवास महल की प्रतिष्ठा आदि का सविस्तार वर्णन है। ये दोनो ग्रंथ पिंगल मे हैं और साहित्यिक दृष्टि से

उच्च कोटि के होने के साथ-साथ इतिहास की दृष्टि से भी बड़े महत्व के है। उदाहरण—

इक्क समय दीवान, मौज दरियाव नाव मधि।
राजत सकल समाज, रूप रतिराज सु विधि विधि॥
इत जलमंदिर निरखि, सरस सुन्दर सर राजै।
उत जगमंदिर जोति, धरा सारी सिरताजै॥
दुहूं बीच ठौर सरसी सरस, या तैं यह पुनि कीजियै।
सब दिखे जिते मोहूं जगत, आप पेखि मन रीझियै॥

खेतसी

ये सांदू शाखा के चारण जोधपुर के महाराजा अभयसिंह के आश्रित थे। इन्होंने महाभारत के अठारह पर्वों का सारांश डिंगल भाषा में लिखा, जो 'भाषा भारथ' के नाम से प्रख्यात है। यह लगभग तेरह हजार छंदों का एक भारी ग्रंथ है। इसमें मोतीदाम, हनूफाल, दोहा, छप्पय इत्यादि विविध प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए है। इसका रचना-काल सं० १७९० है। ग्रंथ डिंगल भाषा के प्रथम श्रेणी के ग्रंथों में गणना करने योग्य है। इसकी भाषा का नमूना लीजिए—

वेदव्यास धुरि वरिणि, अनन्त अवतार उदारह।
कजि संसारि उधारि, वेद किय चार प्रकारह॥
जैं भारथ भाषियौ, निगम पंचहमो वायण।
जगत हेत जुग कियौ, वळे भागवत पुरायण॥
सति मात सती पित धूम जिह, सतति सुष वाचा विमळ।
जिह कियौ परीयत भ्रिपत कूं, नभगामी रिप श्राप कळि॥

दलपतिराय और वसीधर

ये दोनों अहमदाबाद के रहनेवाले थे। इनमे दलपतिराय जाति के महाजन और वसीधर ब्राह्मण थे। मेवाड के महाराणा जगतसिंह (द्वितीय) की आज्ञा से इन्होने 'अलकार-रत्नाकर' नामक एक ग्रथ स० १७९८ मे बनाया जो पहले-पहल स० १९३८ मे उदयपुर के राज्य यन्त्रालय से प्रकाशित हुआ था। इसमे अलकारो का सोदाहरण विवेचन है और अलकार विषयक कुछ बातो को पद्य के साथ-साथ गद्य मे भी समझाने का उद्योग किया गया है। यह एक तरह से महाराजा जसवतसिंह कृत 'भाषा-भूषण' की टीका है। ग्रन्थारभ मे लिखा है कि कुवलयानन्द का अर्थ तो दलपतिराय ने किया और कवित्त वसीधर ने बनाये। पर दलपतिराय के रचे कवित्त सवैये भी इसमे बहुत है। इससे मालूम होता है कि ये दोनो ही अच्छे कवि थे, दोनो को अलकारो का अच्छा ज्ञान था, और दोनो ने सस्कृत-हिन्दी के प्रधान-प्रधान आचार्यों के अलकार-ग्रथो का गहरा अध्ययन किया था। इनकी रचनाएँ सुरुचिपूर्ण, सरल एव कला-समन्वित है और दोनो के काव्य-नैपुण्य का परिचय देते हैं। उदाहरण—

अलकैं अति लोल अमोल महा, चल कुडल जोत छटा बरसैं।
चल हार हिये बिथुर्‌यौ कचभार औ स्वेद कपोलन पैं दरसैं॥
अति लेत उसास विलास महा चल चारु नितबन को सरसैं।
सिल धन्य हैं पीसत दार जुनार अमद अनद घरैं परसैं॥

—दलपतिराय

हौं नवला गुन रंग रच्यौ नव पल्लव को तुहि रग दियौ हैं।
दौउन कौं तन बीर मनो भव चाप शिलीमुख छाय लियौ है॥
लागत नारि कौ पाय दुहूंन के मोह महा जुत होत हियौ है।
मोहि ससोक कियौ इहि लोक मैं तोहि असोक असोक कियो हैं॥

—वसीधर

देवकर्ण

ये कायस्थ जाति के कवि मेवाड के महाराणा जगतसिंह (द्वितीय) के दीवान थे। इनका रचनाकाल स० १८०३ है। इनके पिता का नाम हरनाथ और दादा का महीदास था। इन्होने 'वाराहपुराण' के काशीखड के आधार पर एक बहुत बडा ग्रथ रचा जिसका नाम 'वाराणसी-विलास' है। यह ग्रथ स० १८०३ मे बना था। इसके रचना-काल का दोहा यह है—

आश्विन कृष्णा अनग तिथि, अट्ठारह मै तीन।
उदियापुर सुभ नगर मे, उपज्यौ ग्रथ नवीन॥

वाराणसी-विलास पिगल भाषा मे रचा गया है। इसमे ४०५२ छन्द हैं। ग्रथ तीन विलासो मे विभक्त है। इसमे दोहा, सोरठा, छप्पय, गीतिका, त्रोटक, तोमर आदि अनेक छदो का प्रयोग किया गया है। ग्रन्थारभ मे कवि ने मेवाड का सक्षिप्त इतिहास और थोडा सा अपना परिचय दिया है। फिर मुख्य विषय आरभ होता है। बहुत प्रौढ एव प्रशसनीय रचना है। उदाहरण—

महाराज जगतेस सुहायो। जगनिवास मधि ताल बनायो॥
सीस महल अनमित चित्रसारी। देवदारु मय अमित किंवारी॥
बुर्जे गौख चादिनी चौरी। चढि अरास मुकता रग धौरी॥
रगि तरहट बहु लक धारी। अहि निसि सुभग सीचियतु क्यारी॥
सब रितु तहाँ बसत हि मानौ। इमि जगमहल सुगधनि सानौ॥

हरिचरणदास

ये किशनगढ के रहनेवाले जाति के ब्राह्मण थे। इनका जन्म स० १७६६ में और मृत्यु स० १८३५ मे हुई थी। इन्होने केशवदास कृत रसिक-प्रिया एव कवि-प्रिया, बिहारीलाल कृत सतसई और महाराजा जसवन्तसिंह कृत

भाषा-भूषण की टीकाएँ लिखीं। इनके अतिरिक्त इन्होंने दो स्वतन्त्र ग्रन्थ भी रचे थे। सभा प्रकाश और बृहत्कविवल्लभ। ये बहुत उच्च कोटि के कवि थे। इनकी भाषा व्रजभाषा है। कविता बहुत रसीली, प्रौढ एव भावमयी है। उदाहरण—

> आनद को कद वृषभानुजा को मुख-चद
>
> लीला ही तें मोहन के मानस कों चोरै है।
>
> दूजो तैसो रचिवै को चाहत विरचि नित
>
> ससि को बनावैं अजौं मनको न मोरै है॥
>
> फेरत है सान आसमान पै चढाय फेरि
>
> पानप चढाइवै को वारध मे वोरै है।
>
> राधिका को आनन के जोट न विलोकै विधि
>
> टूक टूक तोरै पुनि टूक टूक जोरै है॥

सुन्दरकुंवरि

ये किशनगढ के महाराजा राजसिंह की पुत्री थीं। इनका जन्म स० १७९१ मे हुआ था। सुप्रसिद्ध भक्त कवि नागरीदास इनके भाई थे। जब बाईजी चौदह वर्ष की थी तब इनके पिता की मृत्यु हो गई थी और तदनन्तर इनके भाइयों मे किशनगढ के राजसिंहासन के लिए झगडे होने शुरू हो गए थे, इसलिए इनका विवाह न हो सका और ३१ वर्ष की उम्र तक ये कुँवारी रही। बाद मे जब इनके भतीजे सरदारसिंह गद्दी पर बैठे तब उन्होंने इनका विवाह राघौगढ के राजा बलभद्रसिंह के कुँवर बलवन्तसिंह के साथ किया। बाई जी का देहान्त स० १८५३ के लगभग हुआ था।

सुन्दर कुँवरि बाई साहित्यिक वायु-मडल मे पली थी और कविता इनकी पैतृक सम्पत्ति थी। इनके पिता राजसिंह, माता व्रजदासी, भ्राता नागरीदास और भतीजी छत्रकवरि बाई सभी साहित्य-रुचि सम्पन्न एव प्रकृष्ट कवि थे।

उस वातावरण मे इन्हे सत्काव्य रचना मे बडी सहायता मिली। पन्द्रह वर्ष की आयु मे बाईजी बहुत अच्छी कविता करने लग गई थी और बाद मे तो काव्य-रचना का उन्हे ऐसा व्यसन पड गया था कि जिस दिन थोडा बहुत भी नही लिख लेती, उन्हे कल न पडती थी। इन्होने ग्यारह ग्रन्थो की रचना की जिनके नाम ये है —

(१) नेह निधि (२) वृन्दावन गोपी माहात्म्य (३) सकेत युगल (४) रगझर (५) गोपी माहात्म्य (६) रस-पुज (७) प्रेम सपुट (८) सार-सग्रह (९) भावना प्रकाश (१०) राम-रहस्य (११) पद तथा स्फुट कवित्त।

सुदर कुंवरि बाई की कविता मे भक्ति और प्रेम का प्राधान्य है। इनकी रचना से स्पष्ट विदित होता है कि रस, छद, अलकार आदि का इन्हे प्रौढ ज्ञान था, और भाषा तथा भाव के सामजस्य को अच्छी तरह से समझती थी। इनकी भाषा बडी शिष्ट, स्वच्छ एव सुव्यवस्थित है, इन्होने काव्य के कला पक्ष तथा भाव पक्ष दोनो ही का बडी सुन्दरता से निर्वाह किया है। इनके दो कवित्त यहाँ दिए जाते है —

स्याम रूप-सागर मे नैर बार पारथ के
तरल तरग अग-अग रगमगी है।
गाजन गहर धुनि बाजन मधुर बैन,
नागिन अलक जुग सोधै सगमगी है॥
भँवर त्रिभगताई पान पै लुनाई ता मै,
मोती मणि जालन की जोति जगमगी है।
काम पौन प्रबल धुकाव लोपी पाज तातै
आज राधे लाज की जहाज डगमगी है॥

गगरि गिरी हैं कोऊ सीस उघरी हैं कोऊ
सुध विसरी हैं ते लगी है द्रुम डारि कै।
डगमग ह्वै के भुज धारी गर द्वै के काहु
बैठि गई कोऊ सीस मटकी उतारि कै॥
मैन-सर-पागि कोऊ घूमन हैं लागी कोऊ
मोती मणिभूषन उतारै डारै वारि कै।
ऐसी गति हेरि इन्हे ग्वार कहे टेरि टेरि,
मदन दुहाई जीति मदन मरारि कै॥

उम्मेदराम

ये पाल्हावत शाखा के चारण थे। इनका जन्म जयपुर राज्यान्तर्गत हणूतिया नामक ग्राम मे स० १८०० मे हुआ था। इनके पिता का नाम सामतजी और दादा का घासीराम था। युवावस्था मे उम्मेदराम को अलवर के राव राजा वख्तावरसिंह ने अपने यहाँ बुला लिया था और अच्छी जीविका प्रदान की थी। वही स० १८७८ मे इनकी मृत्यु हुई।

उम्मेदराम डिंगल और पिंगल दोनो मे सुमधुर एव सरल कविता करते थे। इनके नीचे लिखे ग्रथो का पता है—

(१) वाणी भूषण (२) राजनीति चाणक्य (३) रामचन्द्रजी की राजनीति (४) अवध पच्चीसी (५) मिथिला पच्चीसी (६) जनक शतक (७) बिहारी सतसई की टीका (८) कवि-प्रिया की टीका (९) मरसिया वख्तावरसिंह जी।

उम्मेदराम की भाषा मंजी हुई और सरस है। उसमे अलंकार की छटा भी यत्र-तत्र पाई जाती है। इनकी भावना सीधे हृदय को जाकर स्पर्श करती है। इनके जैसी कलात्मक और विचार-वैभव पूर्ण कविता करनेवाले कवि चारणो मे बहुत थोडे हुए हैं। इनके तीन दोहे नीचे उद्धृत किए जाते हैं—

कारज आछौ औ बुरो, कीजै बहुत विचार।
किये जलद नाही बनै, रहत हिये मे हार॥
पर नारी सब मातु सम, पर धन धूलि समान।
सबै जीव निज जीव सम, देखै सो दृगवान॥
इक तरु सूखे की अगिन, जारत सब वनराय।
त्योंही पूत कपूत तैं, बश समूल नसाय॥

जोधराज

ये आदि गौड कुलोत्पन्न अत्रि गोत्रीय ब्राह्मण थे और अपने समय के प्रसिद्ध कवि होने के सिवा अच्छे ज्योतिषी भी थे। इनके पिता का नाम बालकृष्ण था। अपने आश्रयदाता नीमराणा के अधिपति महाराज चन्द्रभानु की आज्ञा से इन्होंने हमीर रासो लिखा, जो स० १७८५ मे समाप्त हुआ था—

चन्द्र नाग वसु पच गिनि, सवत माघव मास।
शुक्ल सत्रतिया जीव जुत, ता दिन ग्रन्थ प्रकास॥

हमीर रासो नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, द्वारा प्रकाशित हो चुका है। इसमे चौहाण-कुल-भूषण महाराज हमीर की वशावली उनका अला-उद्दीन से वैर, उनकी वीरता, उनके युद्ध-कौशल, उनकी मृत्यु आदि का यथाक्रम तथा विस्तृत वर्णन है और लगभग १००० छन्दो मे समाप्त हुआ है। रासो का ढाँचा ऐतिहासिक है पर काव्यपयोगी बनाने की लालसा से कवि ने कथा-वस्तु मे परिवर्तन भी यत्र-तत्र किया है। हमीर का जन्म जोध-राज ने स० ११४१ मे होना लिखा है, जो ठीक नही है। इसी प्रकार हमीर के आत्महत्या करने तथा अलाउद्दीन के समुद्र मे कुदकर मर जाने की कथाएँ भी अनैतिहासिक और प्रमाण-शून्य हैं। हमीर रासो मे जोधराज ने हमीर, अलाउद्दीन तथा महिमाशाह इन तीन व्यक्तियो के चरित्र को विकसित करने

का उद्योग किया है और इसमे इन्हें अच्छी सफलता मिली है, विशेषता हमीर के चरित्र-चित्रण मे। हमीर जैसे वीर और स्वदेशाभिमानी पुरुष का जिस ढग से वर्णन होना चाहिए उसी ढग से रासौ मे हुआ है। हमीर और अलाउद्दीन का स्वर्ग मे सम्मेलन करा कर कवि ने पाठको का ध्यान शायद हिन्दू-मुस्लिम एकता की ओर आकर्षित किया है। पर समझ मे नही आता कि ऐसा करने से उनका वास्तविक अभिप्राय क्या था? यदि अलाउद्दीन जैसा नृशस, हृदय-हीन तथा पतित मनुष्य भी मरने के पश्चात् स्वर्ग मे पहुँचता है तो फिर नरक है किसके लिए?

हमीर रासौ एक वीर रस प्रधान काव्य ग्रन्थ है। पर शृगार की अद्भुत छटा भी इसमे इधर-उधर दीख पडती है। इससे मालूम होता है कि जोधराज का शृगार और वीर दोनो रसो पर अच्छा अधिकार था। इन्होंने प्रकृति वर्णन तथा ऋतु-वर्णन भी बहुत अच्छे ढग से किया है। इनकी कविता देखिए—

मिले बधु दोउ धाय। बहु हरष कीन सुभाय ॥
अब स्वामि धर्म सुधारि। दोउ उठे वीर हँकारि ॥
असमान लग्गिय सीस। मनौ उसै काल सदीस ॥
इत कोप महिमा कीन्ह। हम्मीर नौन सु चीन्ह ॥
उत मीर गभरू आय। मिलि सेख के परि पाँय ॥
कर तेग वेग समाहि। रहि दूहूँ सेन सचाहि ॥
कम्मान लीन सुहत्थ। जनु सार कार सुपत्थ ॥
धरि स्वामी काज समत्थ। दोउ उभै जुद्ध सपत्थ ॥
दुहुँ द्वन्द्व जुद्ध सुकीन। मनु जुटे मल्ल नवीन ॥
तरवारि वज्जिय ताय। मनु लगी ग्रीषम लाय ॥
करि चरण सीस रु हत्थ। परि लुत्थ जुत्थ मुतत्थ ॥

घमसान थान मु धीर। धर धरनि खेलत वीर॥
गजराज लुट्टत भुम्मि। वहु तुरग परत सु झुम्मि॥
विय वीर वज्जिय सार। तरवार वरसहु धार॥
दोउ भ्रात स्वामि सकाम। जग मे किय अति नाम॥
दोहुँ वीर देखत दूर। चढि गये मुख अति नूर॥
दल दोय दिक्खत वीर। पहुँचे विहस्त गहीर॥

तजियें तप पावस विंत्ति सब। ऋतु शारद वादर दीस अव॥
सरिता सर निम्मल नीर वहै। रस रंग सरोज सुफुल्लि रहै॥
वहु खजन रजन भृग भ्रमै। कलहस कलानिधि वेद भ्रमै॥
वसुधा सब उज्जल रूप किय। सित वासन जानि विछाय दिय॥
वहु भाँति चमेलिय फूलि रही। लखि मार सुमार सुदेह दही॥
वन रास विलास सुवास भरै। तिय काम कमान सुतानि धरै॥
भ्रमणे परतैं नर काम जगै। विरही मुनि कै उर धाव खगै॥
धर अम्बर दीपक जोति जगी। नर नारि लखै उर प्रीति पगी॥

बुधसिंह

बूदी नरेश महाराव राजा बुधसिंह का जन्म स० १७४२ मे हुआ था। अपने पिता राव राजा अनिरुद्धसिंह की मृत्यु के पश्चात स० १७५२ मे ये बूदी की राजगद्दी पर आसीन हुए थे। बड़े वीर, रणपटु एव अपने वश गौरव के नाम पर मर मिटने वाले आत्माभिमानी पुरुष थे। औरगजेब की मृत्यु के वाद उसके दो वेटो, वहादुर शाह और आजम, मे दिल्ली के राजसिंहासन के लिए जो सग्राम हुआ उसमे वहादुरशाह की विजय इन्हीं के कारण हुई थी। कर्नल टॉड के शब्दो मे "केवल वुधसिहजी के पराक्रम ही से शाह आलम अपने प्रतिद्वन्द्वियो को जीत कर दिल्ली के सिहासन पर बैठ सका। कोटे के रामसिहजी और दतिया के दलपति वुदेला तोप के गोले से उड

का उद्योग किया है और इसमे इन्हें अच्छी सफलता मिली है, विशेषता हमीर के चरित्र-चित्रण मे। हमीर जैसे वीर और स्वदेशाभिमानी पुरुष का जिस ढग से वर्णन होना चाहिए उसी ढग से रासौ मे हुआ है। हमीर और अलाउद्दीन का स्वर्ग मे सम्मेलन करा कर कवि ने पाठको का ध्यान शायद हिन्दू-मुस्लिम एकता की ओर आकर्षित किया है। पर समझ मे नही आता कि ऐसा करने से उनका वास्तविक अभिप्राय क्या था? यदि अलाउद्दीन जैसा नृशस, हृदय-हीन तथा पतित मनुष्य भी मरने के पश्चात् स्वर्ग मे पहुँचता है तो फिर नरक है किसके लिए?

हमीर रासौ एक वीर रस प्रधान काव्य ग्रन्थ है। पर शृगार की अद्भुत छटा भी इसमे इधर-उधर दीख पडती है। इससे मालूम होता है कि जोधराज का शृगार और वीर दोनो रसो पर अच्छा अधिकार था। इन्होंने प्रकृति वर्णन तथा ऋतु-वर्णन भी वहुत अच्छे ढग से किया है। इनकी कविता देखिए—

मिले वधु दोउ धाय। वहु हरख कीन सुभाय॥
अव स्वामि धर्म सुधारि। दोउ उठे वीर हुँकारि॥
असमान लग्गिय सीस। मनौ उभै काल सदीस॥
इत कोप महिमा कीन्ह। हम्मीर नौन सु चीन्ह॥
उत मीर गभरु आय। मिलि सेख के परि पाँय॥
कर तेग वेग समाहि। रहि दूहँ सेन सचाहि॥
कम्मान लीन सुहत्थ। जनु मार कार सुपत्थ॥
धरि स्वामी काज समत्थ। दोउ उभै जुद्ध सपत्थ॥
दुहुँ द्वन्द्व जुद्ध सुकीन। मनु जुटे मल्ल नवीन॥
तरवारि वज्जिय ताय। मनु लगी ग्रीपम लाय॥
करि चरण सीस रु हत्थ। परि लुत्थ जुत्थ सुतत्थ॥

घमसान थान सु घीर। घर धरनि खेलत वीर॥
गजराज लुट्टत भुम्मि। वहु तुरंग परत सु भुम्मि॥
विय वीर वज्जिय सार। तरवार वरसहु धार॥
दोउ भ्रात स्वामि सकाम। जग मे किय अति नाम॥
दोहुँ वीर देखत दूर। चढि गये मुख अति नूर॥
दल दोय दिक्खत वीर। पहुँचे विहस्त गँहीर॥

नजिये तप पावस विति सब। ऋतु शारद बादर दीस अब॥
सरिता सर निम्मल नीर वहै। रस रग सरोज सुफुल्लि रहैं॥
वहु खजन रजन भृग भ्रमैं। कलहस कलानिधि वेद भ्रमैं॥
वसुधा सव उज्जल रूप किय। सित वासन जानि विछाय दिय॥
वहु भाँति चमेलिय फूलि रही। लखि मार सुमार सुदेह दही॥
वन रास विलास सुवास भरै। तिय काम कमान सुतानि धरै॥
भ्रमणें पर तैं नर काम जगै। विरही मुनि कै उर घाव खगै॥
धर अम्बर दीपक जोति जगी। नर नारि लखै उर प्रीति पगी॥

बुधसिंह

बूदी नरेश महाराव राजा बुधसिंह का जन्म स० १७४२ मे हुआ था। अपने पिता राव राजा अनिरुद्धसिंह की मृत्यु के पश्चात स० १७५२ मे ये बूदी की राजगद्दी पर आसीन हुए थे। बडे वीर, रणपटु एव अपने वश गौरव के नाम पर मर मिटने वाले आत्माभिमानी पुरुष थे। औरगजेव की मृत्यु के बाद उसके दो बेटो, बहादुर शाह और आजम, मे दिल्ली के राजसिंहासन के लिए जो सग्राम हुआ उसमे बहादुरशाह की विजय इन्ही के कारण हुई थी। कर्नल टॉड के शब्दो मे "केवल बुधसिंहजी के पराक्रम ही से शाह आलम अपने प्रतिद्वन्द्वियो को जीत कर दिल्ली के सिंहासन पर बैठ सका। कोटे के रामसिंहजी और दतिया के दलपति बुदेला तोप के गोले से उड

गए और शाहजादा आजम अपने बेटे केदार बख्श समेत इस लडाई मे वुधसिंह की तलवार खा कर सदा के लिए कबर मे सो गया"। वुधसिंह का देहान्त स० १७९६ मे अपनी ससुराल बेगू से तीन कोस की दूरी पर बाघपुर गाँव मे हुआ था।

महाराव राजा वुधसिंह कला और सौन्दर्य के उपासक थे, साथ ही प्रतिभावान कवि भी थे। इन्होंने 'नेहतरग' नाम का एक रीतिग्रथ बनाया जो अपने रग-ढग का अप्रतिम है। यह स० १७८४ मे रचा गया था जैसा कि इसके अन्तिम दोहे से सूचित होता है—

सतरहसै चौरासिया, नवमी तिथि ससिवार।
शुक्ल पक्ष भादौ प्रगट, रच्यौ ग्रथ सुख सार॥

'नेहतरग' चौदह तरगो मे विभक्त है। दोहा, कवित्त, सवैया, छप्पय आदि कुल मिलाकर ४४६ छदो मे यह समाप्त हुआ है। इसकी भाषा ब्रजभाषा है। कविता शृगार रस से सराबोर है। अत्यन्त सरस एव सराहनीय रचना है। उदाहरण—

साजै सिंगार सषीन की सगति देखी हुँती वृषभानदुलारी।
लालन चित्त घनै ललचै भुज भेटन कौं बढि बाह पसारी॥
नैन की सैन निसक, झुकी उझकी कटु बैन उचारत गारी।
जानै कहा चतुराई कौ जो रस आखर गोरस बेचन हारी॥

हंमीर

ये रत्नू शाखा के चारण कच्छ-भुज के राजा महाराव श्री देशल जी प्रथम (स० १७७४–१८०८) के महाराज कुमार लखपत जी के आश्रित थे। इनका जन्म जोधपुर राज्य के घडोई गाँव मे हुआ था। विद्या अध्ययन इनका कच्छभुज मे हुआ जहाँ भाट-चारणो के लिए उन दिनो विशेप सुविधा

थी। इन्होने लखपत-पिंगल, गुण-पिंगल-प्रकास, हमीर-नाममाला, जोतिष जडाव, ब्रह्माण्ड पुराण, भागवत दर्पण इत्यादि बाईस ग्रन्थ बनाए जिनमे लखपत-पिंगल इनकी सर्वोपयोगी रचना है। यह डिंगल के छन्दशास्त्र का ग्रथ है। इसकी रचना स० १७९६ मे हुई थी—

सबत सत्तर छिनुओ पर्णां तस वरस पटतर।
तिथि उत्तिम सातिम्म वार उत्तिम गुरु वासर॥
माह मास व्रतमान अरक बैठो उतराहणि।
सुकल पष्य रिति सिसिर महा सुभजोग सिरोमणि॥
विसतार गाह मात्रा वरण सुजि पसाउ सरसत्ती रौ।
कहियौ हमीर चित चौजि करि पिंगल गुण लखपत्ति रौ॥

लखपत पिंगल मे चार प्रकरण हैं जिनमे क्रमश वर्णिक छन्दो, मात्रिक छन्दो, गाहा छन्द के विविध भेदो और गीतो की विविध जातियो का सविस्तार वर्णन किया गया है। कुल मिलाकर ४६९ छन्दो मे ग्रन्थ समाप्त हुआ है। पहले छन्द का लक्षण देकर फिर उदाहरण दिया गया है जिसमे महाराज कुमार लखपत जी की प्रशसा की गई है। भाषा-रचना इस ढग की है—

महादेव सुत करि महर, गणपति सुमति गभीर।
कुअर वखाणा कुल तिलक, धजबन्धी लखधीर॥१॥
अति उत्तिम दीजै उकति, सरसति हू सुप्रसन्न।
गाओं लखपती गुंणे, महिपती वड मन्न॥२॥
किया छद पिंगल कवि, के हजार लख कोडि।
आखाँ हूं तिण ऊपरे, जाति अमोलिक जोडि॥३॥

सोमनाथ

ये माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मण थे। इनका रचना काल स० १७९०–१८१० है। ये भरतपुर के महाराज बदनसिंह के आश्रित थे, जिन्होने इनको

राज्याचार्य, दानाध्यक्ष आदि के पद दे रखे थे। सस्कृत-हिन्दी के प्रकाड पडित होने के अतिरिक्त ये ज्योतिष एव काव्य रचना मे भी परम प्रवीण थे। इनके रचे ग्रन्थो के नाम ये हैं—

(१) रसपीयूषनिधि (२) सुजान-विलास (३) माधव-विनोद (४) कृष्ण-लीलावली (५) पचाध्यायी (६) दशमस्कन्ध भाषा (७) ध्रुव-विनोद (८) राम-कलाधर (९) वाल्मीकि रामायण (१०) अध्यात्म रामायण (११) अयोध्याकाड (१२) सुन्दरकाड (१३) व्रजेन्द्र-विनोद (१४) रस विलास (१५) रामचरित्र रत्नाकर।

सोमनाथ व्रजभाषा मे कविता करते थे। इनकी भाषा बहुत कर्ण-मधुर, सरस और सीधी-सादी है। कविता साहित्यिक दृष्टि से निर्दोष, भावपूर्ण और रसीली है। एक उदाहरण दिया जाता है—

दिसि विदिसनि तें उमडि मढि लीनो नभ,
छाँडि दीने धुरवा जवासे-जूथ जरिगे।
डहडहे भये द्रुम रचक हवा के गुन,
कहूं कहूं मोरवा पुकारि मोद भरिगे॥
रहि गए चातक जहाँ के तहाँ देखत ही,
सोमनाथ कहै बूंदाबांदी हूं न करिगे।
सोर भयो घोर चहुं ओर महि मडल मे,
आए घन आए घन, आय कै उघरिगे॥

प्रतापसिंह

जयपुर नगर के बसानेवाले महाराजा सवाई जयसिंह की तीसरी पीढी मे महाराजा माधवसिंह हुए जिनके दो पुत्र थे, पृथ्वीसिंह और प्रतापसिंह। पृथ्वीसिंह का जन्म स० १८१९ मे और प्रतापसिंह का स० १८२१ मे हुआ था। माधवसिंह के बाद पृथ्वीसिंह जयपुर के उत्तराधिकारी हुए। परन्तु

सं० १८३३ मे इनकी अकाल मृत्यु हो गई। इनके कोई सतान न थी, इसलिए प्रतापसिंह को राज्याधिकार प्राप्त हुआ।

महाराजा प्रतापसिंह के समय मे मरहठो का राजस्थान मे बडा आतक और जोर था। इसलिए उनका दमन करने के लिए महाराजा को कई युद्ध करने पडे और दो-एक बार इन्होने उन्हे पराजित भी किया। पर राजपूतो की अनेकता तथा अन्त कलह के कारण राजस्थान का राजनैतिक वातावरण उस समय कुछ ऐसा बिगड़ा हुआ था कि इन्हे अपने प्रयत्न मे स्थायी सफलता न मिली। निरतर युद्ध मे लगे रहने के कारण इनकी धन-जन से ही हानि नही हुई, वल्कि इनके स्वास्थ्य को भी भारी धक्का पहुँचा और अन्त मे स० १८६० मे इनके जीवन का अंतिम अभिनय समाप्त हो गया।

ये वडे मिलनसार, हँसमुख एव गुणग्राही थे और काव्य,सगीत, चित्र-कारी आदि कलाओ के सरक्षक थे। कवियो, विद्वानो और गायको का इनके दरवार मे वडा सम्मान होता था। इन्होने आईने-अकवरी, दीवाने हाफिज आदि ग्रन्थो का हिन्दी मे अनुवाद करवाया और ज्योतिष, धर्मशास्त्र, वैद्यक, सगीत आदि विषयो पर भी वहुत से ग्रथ लिखवाए, जो जयपुर के राज्य पुस्तकालय मे सुरक्षित है। इनके सिवा इन्होने कविता के सग्रह ग्रथ भी वहुत से तैयार करवाए थे, जिनमे 'प्रताप वीर हजारा' और 'प्रतापसिंह हजारा' मुख्य है।

महाराजा स्वय भी वहुत अच्छी कविता करते थे। इन्होंने वहुत से ग्रथ वनाए जिनका काव्य-प्रेमियो मे बडा आदर है। कविता मे ये अपना नाम 'व्रजनिधि' लिखते थे। इनके ग्रथो के नाम नीचे दिये जाते है। ये सभी ग्रथ नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा 'व्रजनिधि-ग्रथावली' के नाम से प्रकाशित हो चुके है। ग्रन्थो के नाम ये हैं—

(१) प्रीतिलता (२) स्नेह सग्राम (३) फाग रग (४) प्रेम प्रकाश

(५) विरह सलिता (६) स्नेह बहार (७) मुरली विहार (८) रमक-जमक बत्तीसी (९) रास का रेखता (१०) सुहाग रैन (११) रग-चौपड (१२) नीति मजरी (१३) शृगार मजरी (१४) वैराग्य मजरी (१५) प्रीति पच्चीसी (१६) प्रेम पथ (१७) ब्रज शृगार (१८) श्री ब्रजनिधि मुक्तावली (१९) दुख हरण वेलि (२०) सोरठा ख्याल (२१) ब्रजनिधि पद सग्रह (२२) हरि पद सग्रह (२३) रेखता सग्रह।

ब्रजनिधि की भाषा ब्रजभाषा है और कविता के विषय हैं—शृगार, नीति और वैराग्य। इनकी कविता बहुत सरल, परिमार्जित एव उल्लास-पूर्ण है। वर्णन-शैली बहुत सहज और मार्मिक है। कृष्ण-लीला के विविध दृश्य जो इन्होने अकित किए है वे बहुत मर्यादा-पूर्ण तथा लोक-रजनकारी हैं, और उनसे इनकी अखड कृष्ण-भक्ति ही झलकती है। पर राधा के चित्रा-कन से इनकी इन्द्रिय-लिप्सा व्यजित होती है। ब्रजनिधि की राधा एक भक्त कवि की राधा नही, वरन किसी कामुक शृगारी कवि की राधा प्रतीत होती है। इनकी दो कविताएँ यहाँ उद्धृत करते हैं—

विधि वेद-भेद न बतावत अखिल विस्व,
पुरुष पुरान आप धार्‌यौ कैसौ स्वाग वर।
कईलास वासी उमा करति खवासी दासी,
मुक्ति तजि कासी नाच्यौ राच्यौ कैयो राग पर॥
निज लोक छाँडयो ब्रजनिधि जान्यौ ब्रजनिधि,
रग रस बोरी सी किसोरी अनुराग पर।
ब्रह्मलोक वारो पुनि शिवलोक वारौ और,
विष्णु लोक वारि डारो होरी ब्रज फाग पर॥

राधे बैठी अटारियाँ, झाँकत खोलि किवार।
मनौं मदन गढ तें चली, द्वै गोली इकसार॥

दूँ गोली इकसार, आनि आँखिन मे लागी।
छेदे तन-मन-प्रान, कान्ह की सुधि बुधि भागी।।
ब्रजनिधि है वेहाल, विरह बाधा सौ दाधे।
मद मद मुसकाइ, सुधा सो सीचति राधे।।

कृपाराम

इनका रचना काल स० १८६५ के आसपास है। ये जोधपुर राज्य के गाँव खराडी के निवासी खिडिया शाखा के चारण थे। इनके पिता का नाम जगराम था। वडे होने पर ये सीकर के रावराजा लक्ष्मणसिंह के पास चले गए और अन्त समय तक वही रहे। इनको ढाणी गाँव मिला जो 'कृपाराम की ढाणी' के नाम से मशहूर है।

राजिया के नाम से जो सोरठे राजस्थान मे प्रचलित है वे कृपाराम के वनाए हुए है। राजिया इनका नौकर था। उसी को सबोधित करके ये सोरठे कहे गए है।

कृपाराम रचित इन सोरठो की सख्या १७५ के लगभग है। इनमे नीति और उपदेश की बातें कही गई है। भाषा इनकी डिंगल है। प्रसाद गुण युक्त होने से अपढ लोग भी इन सोरठो का मर्म समझ लेते है और बात-बात मे इनका प्रयोग करते है।

कहा जाता है कि फुटकर सोरठो के अतिरिक्त कृपाराम ने 'चालक नेसी' नामक एक नाटक और अलकारो का एक ग्रथ भी वनाया था। परन्तु इनका पता नही लगता। राजिया के कुछ सोरठे यहाँ दिए जाते है—

कारज सरै न कोय, वळ प्राक्रम हीमत विना।
हलकार्याँ की होय, रग्या स्याळाँ राजिया।।

(बल, पराक्रम और हिम्मत के बिना कोई काम पूरा नहीं हो सकता। हे राजिया! रंगे हुए सियार को हिम्मत दिखाने से क्या हो सकता है?)

काळी भांत कुरूप, कस्तूरी कांटै तुलै।
साकर घणी सरूप, रोडां तुलै राजिया॥

(कस्तूरी बहुत काली और कुरूप होती है पर कांटे पर तोली जाती है। परन्तु हे राजिया! शक्कर बहुत सुन्दर होने पर भी पत्थरों के बराबर तोली जाती है।)

गहभरियो गजराज, मदछकियो चालै मतै।
कूकरिया बेकाज, रोस भुसै क्यूं राजिया॥

(गंभीर हाथी मद मस्त होकर अपनी मौज में चला जा रहा है। हे राजिया! कुत्ते क्यों रो-रोकर भौंकते हैं?)

गुण-औगण जिण गांव, सुणै न कोई सांभळै।
मच्छगळागळ मांय, रहणो मुसकल राजिया॥

(जिस गांव में गुण-अवगुण को सुनने व समझने वाला कोई नहीं है और जहां अराजकता फैली हुई है, हे राजिया! वहां रहना कठिन है।)

पाटा पीड उपाव, तन लागा तरवारियां।
वहै जीभ रा घाव, रती न ओषद राजिया॥

(शरीर में तलवारों के घाव लगने पर पट्टी द्वारा उनकी पीड़ा का इलाज हो सकता है। पर हे राजिया! जीभ के घावों की रत्ती भर भी दवा नहीं है।)

मुख ऊपर मीठास, घट मांही खोटा घडै।
इसडा सूं इखळास, राखीजै नहं राजियां॥

(मुंह से मीठे बोलते हैं पर हृदय में बुराई करते रहते हैं। हे राजिया! ऐसे लोगों से कभी सम्पर्क नहीं रखना चाहिए।)

मूसा नै मजार, हितकर बैठा हेकठा।
सौ जाणै ससार, रस नहँ रहसी राजिया।।

(चूहा और बिल्ली प्रेम पूर्वक एक साथ बैठे हुए हैं। परन्तु हे राजिया! सारा ससार जानता है कि यह प्रेम रहने का नही है।)

लावा तीतर लार, हर कोई हाका करे।
सिंघाँ तणौ सिकार, रमणौ मुसकल राजिया।।

(लवा और तीतर के पीछे प्रत्येक आदमी हाँक लगा सकता है। परन्तु हे राजिया! सिहो का शिकार करना कठिन है।)

रोटी चरखौ राम, इतरौ मुतलब आप रो।
की डोकरियाँ काम, राज-कथा सूं राजिया।।

(रोटी, चरखा और राम इन बातो से बुढियाओ का मतलब होना चाहिए। हे राजिया! राजनीति से उन्हे क्या मतलब?)

मानसिंह

ये महाराजा विजयसिंह के पौत्र और गुमानसिंह के पुत्र थे। इनका जन्म स० १८३९ मे हुआ था। इक्कीस वर्ष की अवस्था मे ये जोधपुर की गद्दी पर बैठे। कुछ सरदारो के षड्यन्त्रो, नाथो तथा मरहठो के कारण इनके राज्य मे बडी अव्यवस्था रही और इन्हे बडे कष्ट झेलने पडे। मरहठो आदि से तो इन्होने खूब लोहा लिया और बडी चतुराई से उनका दमन किया पर नाथ सप्रदाय के प्रति अत्यधिक भक्ति होने से नाथो का दमन ये न कर सके। यही नही, तत्कालीन पोलिटिकल एजेण्ट लड्लो ने जब दो-एक उपद्रवी नाथो को पकडकर अजमेर भेज दिया तब इन्हे असीम दु ख हुआ और उनको छुडवाने की चेष्टा करने लगे। अन्त मे अपने इस प्रयत्न मे जब इन्हे सफलता न मिली तब इन्होने अन्न खाना छोड दिया और सन्यास लेकर

इधर-उधर भटकने लगे। इनका देहान्त स० १९०० की भादो सुदी १३ को जोधपुर मे हुआ।

महाराजा मानसिंह बडे गुणाढ्य, कविता-प्रेमी एव सरस्वती-सेवक थे। विशेपत काव्यकला को इन्होने बडा प्रोत्साहन दिया। ये इसके रहस्य को भी भली प्रकार समझते थे, और स्वय भी काव्य-रचना मे प्रवीण थे। कवियो, विद्वानो एव पडितो का ये इतना आदर करते थे कि वे पालकियो मे वैठे फिरते थे। इन्होने जोधपुर मे 'पुस्तक प्रकाश' नामक पुस्तकालय की स्थापना की जिसमे आज सस्कृत की १६७८ और डिंगल आदि की १०९४ हस्तलिखित पुस्तको का सुन्दर सग्रह है। इसमे सवसे प्राचीन पुस्तक स० १४७२ की लिखी हुई है। महाराजा की गुण ग्राहकता के विषय मे यह दोहा आज भी मारवाड मे प्रसिद्ध है—'

जोध वसाई जोधपुर, व्रज कीनी व्रिजपाल।
लखनेऊ, काशी, दिली, मान करी नेपाल॥

इनके रचे हिन्दी तथा सस्कृत के ग्रन्थो के नाम ये हैं—

(१) नाथ चरित्र (२) विद्वज्जन मनोरजनी (३) कृष्ण विलास (४) भागवत की मारवाडी भाषा की टीका (५) चौरासी पदार्थ नामावली (६) जलधर चरित्र (७) जलधर चन्द्रोदय (८) नाथ पुराण (९) नाथ स्त्रोत्र (१०) सिद्ध गगा, मुक्ताफल सप्रदाय आदि (११) प्रश्नोत्तर (१२) पदसग्रह (१३) शृगार रसकी कविता (१४) परमार्थ विषय की कविता (१५) नाथाष्टक (१६) जलधर ज्ञान सागर (१७) तेज मजरी (१८) पचावली (१९) स्वरूपो के कवित्त (२०) स्वरूपो के दोहे (२१) सेवासागर (२२) मान विचार (२३) आराम रोशनी (२४) उद्यान वर्णन।

महाराजा मानसिंह डिंगल और पिंगल दोनो मे कविता करते थे। नाथ सप्रदाय के प्रति अत्यधिक भक्ति होने से इन्होने उक्त पथ के सिद्धातो

उसकी महिमा आदि के विषय मे अधिक लिखा है। पर इनकी शृगार रस की कविताएँ भी थोडी सी मिली है जो काव्य कला एव भाव-मौलिकता दोनो ही दृष्टियो से बहुत सुन्दर बन पडी हैं। इनकी कविता देखिए—

सररर बरसत सलिल, घरर घरर घनघोर।
झररर झरना झरत, दसौ दिसि बोलत मोर॥
झर पावस चहुँ दिसि, प्रचड दामिनि दमकाई।
सर डाबर जल झरत, सरित जलनिधिहि मिलाई॥
किलकारि करत जित तितहि विहँग, मधुर सबद मन भावही।
नृप मान कहत या विधि प्रबल, घन बरषा रितु आवही॥

पद

म्हारी बिगडी कौन सुधारै, नाथ बिन बिगडी कौन सुधारै।
बनी बनी के सब कोय सीरी, कोई बिगडी को नही नाथ॥
कडवी बेल की कडवी तुमडिया, सब तीरथ कर आई जी।
गगा न्हाँही जमुना न्हाँही, अजहुँ न गई कडवाई जी॥
नाथ नाम की चुदडी हमारी, चुदडी मे दाग लगाया जी।
नाथ निरजन अरसन-परसन, राजा मान गुण गाया जी॥

ओपाजी

ये आढा गोत्र के चारण सिरोही राज्य के पेशवा ग्राम मे पैदा हुए थे। इनका रचना काल स० १८६०-९० है। इनका कोई ग्रथ नही मिलता, फुटकर गीत देखने मे आते है। ये गीत डिंगल भाषा मे है और शात रसात्मक हैं। इनके कारण ओपाजी की राजस्थान मे बडी ख्याति है। इन गीतो मे बडी सरसता और कोमलता है। भाव-सौन्दर्य भी इनमे यथेष्ट पाया जाता है। एक गीत देखिए—

मन जाणै चढूं हाथियाँ माथै, खुर घासता जनम खुवै।
नर री चींती वात न होवै, हर री चींती वात हुवै॥१॥
मन जाणै पदमण हूं माणूं, गोवेंद वाँचै पथर गळै।
माडणहारै लेख माँडिया, मेटण वाळौ कूंण मळै॥२॥
यूं जाणै पकवान अरोगू, धापर मिलै न लूकौ धान।
हचियौ खाय काय हीचोळा, भोळा रे रचियौ भगवान॥३॥
दिल मे जाणै पाव दवाऊ, औंरा रा पग दावै आप।
कळपै कमू कसू मन कोपै, प्राणी लेख तणौ परताप॥४॥
चित मे जाणै हुकुम चलाऊँ, हुकुम तणै वस नार न होय।
साचा लेख लिख्या उण साई, काचा करण न दीसै कोय॥५॥
धापै मन वैठा बीळाहर, तापै सुनौ ढूट तठै।
आदू रीत असी है 'ओपा', कुटी लिखी नो महल कठै[१६]॥६॥

बाँकीदास

ये आशिया शाखा के चारण थे। इनका जन्म जोधपुर राज्य के पचभदरा परगने के भाडियावास नामक गाँव मे स० १८२८ मे हुआ था। इनके पिता का नाम फतहसिंह और दादा का नाम शक्तिदान था। अलकारो के प्रख्यात ग्रन्थ 'जसवत-जसो-भूषण' के रचयिता मुरारिदान इनके पौत्र थे। छोटी अवस्था मे बाँकीदास ने अपने गाँव मे थोडा-सा पढना-लिखना सीखा और सोलह वर्ष की आयु में जोधपुर चले गए, जहाँ भिन्न-भिन्न गुरुओ से काव्य, व्याकरण, इतिहास आदि विभिन्न विषयो का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। तद-नन्तर अपने ऊँचे व्यक्तित्व एव ऊँची योग्यता के सहारे महाराजा मानसिंह के

---

१६ घासता=घिसते हुए। खुवै=नष्ट करता है। माणूं=वार्तालाप करूँ। गोवद=गोविन्द। धापर=पेट भर कर।

प्रीति-पात्र बन गए। महाराजा मानसिंह बाँकीदास की कवित्व शक्ति और विद्वत्ता पर मुग्ध थे। उन्होने इन्हे अपना काव्य-गुरु बनाया और कालान्तर मे कविराजा की उपाधि ताज़ीम, पाँव मे सोना, बाँह-पसाव आदि देकर इनकी प्रतिष्ठा बढाई। गुरु-शिष्य का संबध सूचित करने के अभिप्राय से उक्त महाराजा ने इन्हे कागजो पर लगाने की मोहर रखने का भी मान दे रखा था, जिस पर निम्नलिखित शब्द अंकित थे—

श्रीमन् मान धरणि पति, बहु गुन राम।
जिन भाषा गुरु कीनी, बाँकीदास॥

बाँकीदास संस्कृत, डिंगल, फारसी तथा ब्रजभाषा के अच्छे पंडित थे और आशु कवि होने के साथ-साथ इतिहास के भी सुज्ञाता थे। कहा जाता है, एक बार ईरान का कोई सरदार भारतवर्ष मे भ्रमण करता हुआ जोधपुर आया और महाराजा मानसिंह से मुलाकात करते समय उनसे यह प्रार्थना की कि यदि आपके यहाँ कोई अच्छा इतिहासवेत्ता हो तो मैं उससे मिलना चाहता हूँ। इसपर महाराजा ने बाँकीदास को उसके पास भेजा। बाँकीदास के ऐतिहासिक ज्ञान, उनकी स्मरण शक्ति और उनके काव्य-चमत्कार को देखकर वह सरदार दग रह गया और जिस समय जोधपुर से जाने को रवाना हुआ महाराजा से कह गया कि जिस आदमी को आपने मेरे पास भेजा था वह इतिहास ही का पूर्ण ज्ञाता नही, वरन् उच्च कोटि का कवि भी है। इतिहास का ऐसा पूर्ण और पुख्ता ज्ञान रखनेवाला कोई दूसरा व्यक्ति मेरे देखने मे अभी तक नही आया। इसे समस्त भूमण्डल के इतिहास का भारी ज्ञान है। मैं ईरान का रहनेवाला हूँ, पर ईरान का इतिहास भी मुझसे अधिक वह जानता है।

बाँकीदास का अन्तकाल सं० १८९० मे श्रावण सुदी ३ को जोधपुर मे हुआ था। इनकी मृत्यु से महाराजा मानसिंह को असीम दु:ख हुआ और

निम्नलिखित शब्दो द्वारा उन्होने अपने शोकोद्गार प्रकट किए—

सद्विद्या बहु साज, बाँकी थी बाँका वसु।
कर सूधी कवराज, आज कठी गौ आसिया॥१॥
विद्या-कुळ विख्यात, राज काज हर रहसरी।
बाँका तो विण बात, किण आगळ मनरी कहाँ[१७]॥२॥

इनके ग्रथो के नाम ये है—

(१) सूर छत्तीसी (२) सीह छत्तीसी (३) वीर विनोद (४) धवळ पच्चीसी (५) दातार बावनी (६) नीति मजरी (७) सुपह छत्तीसी (८) वैसक वार्ता (९) मावडिया मिजाज (१०) कृपण दर्पण (११) मोहमर्दन (१२) चुगल मुख चपेटिका (१३) वैसवार्ता (१४) कुकवि बत्तीसी (१५) विदुर बत्तीसी (१६) भुरजाल भूषण (१७) गज लक्ष्मी (१८) झमाल नख-शिख (१९) जेहल जस जडाव (२०) सिद्ध राव छत्तीसी (२१) सतोष बावनी (२२) सुजस छत्तीसी (२३) वचन विवेक पच्चीसी (२४) कायर बावनी (२५) कृपण पच्चीसी (२६) हमरोट छत्तीसी (२७) स्फुट सग्रह।

इन ग्रथो के अतिरिक्त बाँकीदास के लिखे डिंगल भाषा के बहुत से फुटकर गीत और २८०० के लगभग इतिहास विषयक छोटी-छोटी कहानियाँ (वार्ता) भी उपलब्ध हुई हैं।

बाँकीदास की गणना डिंगल भाषा के प्रथम श्रेणी के कवियो मे की

---

१७ हे बाँकीदास! तेरी सुविद्या रूपी सामग्री के कारण पृथ्वी पर बहुत बाँकपन (निरालापन) था। हे आशिया! आज उसे सीधी करके तू कहाँ चला गया? ॥१॥ विद्या और कुल मे विख्यात हे बाँकीदास! तेरे विना राज-काज की प्रत्येक बात को किसके आगे जाकर कहूँ?॥२॥

जाती है। इनकी भाषा प्रौढ, परिमार्जित और सरस है, वर्णन-शैली सयत और स्वाभाविक है। इन्होने नीति-उपदेश की बाते अधिक कही है जिनमे मौलिकता और चमत्कार विशेष दिखाई नहीं देता परन्तु वीर रस की उक्तियाँ इनकी कही-कही बहुत सुन्दर बन पडी है—

सूतो नाहर नीद सुख, सादूळो बळवत।
बन काठै मारग वहै, पग-पग हील पडन्त॥१॥
घाल घणाँ घर पातळा, आयौ थह मे आप।
सूतौ नाहर नीद सुख, पौहराँ दियै प्रताप॥२॥
केहर कुम्भ विदारियौ, गजमोती खिरियाह।
जाँणै काळा जळद सू, ओळा ओसरियाह[18] ॥३॥

बाँकीदास को अलकारो का अच्छा ज्ञान था। इसलिए अलकारो की बडी सुन्दर छटा इनकी रचना मे स्थान-स्थान पर दिखाई देती है। इनके मुख्य अलकार अप्रस्तुत प्रशसा, हेतु, उदात्त और समुच्चय है। अप्रस्तुत प्रशसा के तो इनको मास्टर हैड ही समझना चाहिए—

गाज इतै उखेड गज, माझळ बन तर मूळ।
जागै नहे थह मे जितै, सझ हाथळ सादूळ॥१॥

---

१८ बलवान सिंह अपनी माँद मे सुख पूर्वक सोया हुआ है। पर उस वन के पास वाले मार्ग पर चलते हुए हाथी के मन मे पगपग पर डवके पड रहे है॥१॥ बहुत से घरो के मनुष्यो का नाश कर सिंह अपनी माँद मे आया और सुखपूर्वक निद्रा मे सो रहा। उसका प्रताप उसका पहरा देने लगा॥२॥ सिंह ने हाथी का कुभस्थल विदीर्ण कर दिया जिससे गजमुक्ता निकल पडे। ऐसा प्रतीत होता था मानो काले बादल से ओले बरसे हो॥३॥

सादूळौ वन साहिबौ, खाटै पग-पग खून।
कायरडा इण काम नूं, जवक कहै जवून॥२॥
कै दती भ्रृगी किता, किता नखी वन जत।
समझाया दे दे सजा, सादूळै वलवन्त॥३॥
मयंद धपावै मोतियां, हसां लांघणियांह।
रहै नही जुध रोकियौ, औ धारां अणियांह[19]॥४॥

नीति-उपदेश विषयक अपनी कविताओ मे बाँकीदास ने दुर्जनो, कायरो मूँजियो, कुकवियो, चुगलखोरो इत्यादि के स्वभाव-लक्षणो को वतलाया है और उनकी वडी भर्त्सना की है जो यथार्थ है। परन्तु भावावेश मे कही कही इतने आगे वढ गए है कि साहित्यिक शिष्टाचार को भूल वैठे हैं और वर्णन मे अश्लीलता आ गई है। परन्तु सौभाग्य से ऐसे स्थल वहुत अधिक नही है। सामान्यत बाँकीदास की रचना मे ऊँची रुचि और ऊँचे आदर्शो ही के दर्शन होते हैं। उदाहरण—

दोहे

नर कायर आंणै नही, लूण लिहाज लगार।
धोळै दिन छोडै धणी, अणी मिलै उण वार॥१॥

---

१९ हे गज! जव तक सिह अपनी माँद मे जग न जाय और अपने पजे को ठीक न कर ले तव तक तू गर्जना कर ले और वन के वृक्षो की जडे उखाड ले ॥१॥ वन की स्वामी सिंह पग-पग पर अपराध करता है। कायर जम्बुक इस काम को कठिन वतलाते है॥२॥ वलवान सिंह ने कितने ही दाँतवालो, कितने ही सींगवालो और कितने ही नखवालो को सजा दे देकर सीधा किया ॥३॥ मृगेन्द्र भूखे हसो को मोतियो से तृप्त करता है। वह युद्ध मे तलवारो की धारो और भालो की नोको से रोके नही रुकता॥४॥

बादळ ज्यूं सूर धनुप विण, तिलक विना द्विज पूत।
वनौ न सोभै मौड विण, घाव विना रजपूत॥२॥
कीडी कण पावै नहीं, अदनाग घर आय।
ओर घर नूं आणियौ, जिको गमाडै जाय॥३॥
दाता धन जेनो दियै, उम तेतो धर पीठ।
जेनो गुळ लै थाळियां, तेतो जीमण मीठ॥४॥

झमाल

झाळी भमगावळि कळी मूंहा बांकडियांह।
कमळ प्रभात विकासिया, इसडी आंखडियांह॥
इसडी आंखडियांह किया अग वारणै।
सर मनमथ गा हारि क अजण सारणै॥
खूबी न रही काय खनगां खजनां।
सेही ह्वै मुनिराज विसारि निरंजनां॥

गवरीबाई

गवरीबाई का जन्म स० १८१५ मे डूंगरपुर शहर मे हुआ था। यह जाति की नागर ब्राह्मण थी। इनके माता-पिता का नाम अविदित है।

---

२० लूंग=नमक। लगार=जरा भी। वीलै दिन=दिन ही में। धणी=स्वामी। अणी=सेना। उण=उस। वनौं=दूल्हा। मौड=सेहरा। कीडी=चींटी। कण=दाना। अदनाग=कजूस। आणियौ=लाया हुआ। जिको=वह भी। गमाडै खो देता है। गुळ=गुड। गा=गये। सारणै=लगाने मे। काय=कुछ भी। खनगां=बाण। सेही ह्वै=मोहित होकर। निरजनां=ईश्वर।

इनका विवाह पाँच-छ वर्ष की बहुत छोटी अवस्था मे हो गया था। परन्तु विवाह के एक ही वर्ष बाद इनके पति का देहान्त हो गया। वैधव्य धर्म का पालन गवरीबाई से अच्छी तरह से हो सके इस उद्देश्य से इनके माता-पिता ने इन्हे पढाना-लिखाना प्रारभ किया और कुछ ही समय मे यह पढ-लिखकर होशियार हो गईं। कालान्तर मे इन्होने भागवत, गीता आदि धार्मिक ग्रन्थो का अच्छा अध्ययन कर लिया और कविता भी करने लग गईं। अपना अधिकाश समय यह पूजा-पाठ और भजन-कीर्तन मे व्यतीत करती थी। धीरे-धीरे इनकी ज्ञान-गरिमा और भगवत् भक्ति की महिमा चारो ओर फैल गई और हजारो की सख्या मे लोग इनके दर्शन करने तथा भजन सुनने के लिए इनके पास आने लगे। उस समय डूंगरपुर पर महारावळ शिवसिंह (स० १७८६-१८४२) राज्य करते थे जो बडे धर्मिष्ठ और प्रभु-भक्त राजा थे। उनके कानो मे भी गवरीबाई की कीर्ति कथा पहुँची। एक दिन वे इनके घर गए और इनसे वार्तालाप कर बहुत खुश हुए। उन्होंने इनके लिए एक मन्दिर बनवा दिया जो अभी तक डूंगरपुर मे मौजूद है।

कहते है कि अन्त समय मे गवरीबाई काशी चली गई थी और वही स० १८६५ के लगभग ५० वर्ष की अवस्था मे इनका देहावसान हुआ था।

गवरीबाई मीराँ का अवतार मानी गई हैं। उनकी तरह इन्होंने भी केवल फुटकर पद लिखे है जिनकी सख्या ६१० है। इन पदो मे इन्होने ज्ञान, भक्ति तथा वैराग्य की महिमा बतलाई है। इनकी भाषा गुजराती, राजस्थानी तथा ब्रजभाषा का मिश्रण है। इनके पदो पर कबीर, सूर आदि प्राचीन भक्त कवियो का प्रभाव स्पष्ट है। परन्तु साथ ही उनमे मौलिकता का सर्वथा अभाव भी नही है। सरलता और तन्मयता भी उनमे यथेष्ट पाई जाती है। पद गाने के लिए बहुत उपयुक्त हैं। उदाहरण—

प्रभु मोकूं एक बेर दरसन दइये।
तुम कारन मैं भइ रे दिवानी, उपहास जगत की सहिये॥

हाथ लकुटिया कधे कमळिया, मुख पर मुरली वजैये।
हीरा मानिक गरथ भडारा, माल मुलक नहिं चहिये ॥
गवरी के ठाकर सुख के सागर, मेरे उर अन्तर रहिये ॥
होरी खेले मदन गोपाल।
मोर मुगट कट कछनी काछै, चचळ नैन विसाल ॥
सब सखियन मे मोहन सोहत, ज्यूं तारन बिच चद उजाल ॥
चोवा चन्दन और कुमकुम, उडत अबीर गुलाल ॥
ताल मृदग झांझ डफ बाजै, गावत बसत धमाल ॥
गवरी के प्रभु नटवर नागर, निरखी भई नेहाल ॥

मंछाराम

ये सेवक जाति के ब्राह्मण जोधपुर नगर के निवासी थे। इनका जन्म स० १८३० मे और देहान्त स० १८९२ मे हुआ था। इनके पिता का नाम बख्शीराम और माता का रुक्मिणी था। ये जोधपुर के महाराजा मानसिंह के कृपापात्र थे। कविता करना इन्होंने जोधपुर के तत्कालीन मत्री भडारी अमरसिंह के पुत्र किशोरीदास से सीखा था, जैसा कि इन्होने अपने 'रघुनाथ रूपक' के प्रारभ से बतलाया है–

सदगुर प्रणाम किसोर, सचिव अमरेस सवाई।
करै पिता जिम कृपा, तिकण गुण समझ बनाई ॥

मछाराम का लिखा अभी तक सिर्फ एक ग्रथ, रघुनाथ-रूपक, प्रकाश मे आया है। कहते है कि इन्होने दो-चार ग्रथ और भी लिखे थे जो इनके वशवालो के पास सुरक्षित है। 'रघुनाथ-रूपक' डिंगल के छदो का ग्रन्थ है। इसकी समाप्ति स० १८६३ मे हुई थी—

सवत् ठारै सतक बरस तेसठौ बखाणौ।
सुकल भादवी दसम वार ससि हर बरताणौं ॥

ग्रन्थ नव विलासो में विभाजित है। प्रथम दो विलासो मे वर्ण, गुण, दग्धाक्षर, दुगण, अक्षर-त्याग, फलाफल, वयण-सगाई, काव्य-दोष, अख-रोट, उक्ति के लक्षण-भेद, रसो के नाम-भेद लक्षण इत्यादि का वर्णन है। शेष सात विलासो मे डिंगल भाषा मे प्रयुक्त ७२ जाति के गीतो का लक्षण उदाहरण सहित विवेचित है। गीतो के उदाहरण मे भगवान् श्री रामचन्द्र की कथा कही गई है और इसीलिए ग्रथ का नाम रघुनाथ-रूपक रखा गया है—

इण ग्रन्थ मो रघुनाथ गुण अत भेद कविता भाखियौ।
इण हीज कारण नाम ओ रघुनाथ रूपक राखियौ॥

इसमे वर्णित श्री राम-कथा का क्रम तुलसीकृत रामायण के अनुसार रखा गया है। कही-कही अन्तर भी है पर वह नगण्य है।

रघुनाथ-रूपक बहुत उपयोगी ग्रथ है। डिंगल भाषा-साहित्य की ज्ञान प्राप्ति के लिए इसका अध्ययन अनिवार्य है। ग्रन्थ कविता की दृष्टि से भी काफी महत्व का है। इसके विषय मे उत्तमचन्द भडारी की निम्नलिखित राय उल्लेखनीय है—

आछौ कीध इसौह, रस लै साहित-सिंधु रो।
जग सह पियण जिसौह, रूपक राम पयोध रुख॥
मनसाराम प्रबध मझ, राखै मनसा राम।
कियौ भलो हिज काम कवि, कियो भलो हिज काम॥

पाठको के विनोदार्थ 'रघुनाथ रूपक' में से एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है—

(वरण जथा)

पावडियाँ सहत नरम पद-पकज,
नूपूर हाटक परम पुनीत।

छक कडवन्ध सुचंगा छाजै
पट अगा राजै पुण पीत ॥१॥

पुणचा जडत जडाऊ पुणची,
कळ आजान भुजा केयूर।
वैजती वळ मुगत विसाला,
प्रगट हियै माळा भरपूर ॥२॥

कडसरी ग्रीवा श्रुत कुडळ,
चंदण निले तिलक दुत चद।
सिर सिरपेच सुघट हीरा सद,
क्रीट मुगट सोमै सुखकंद ॥३॥

जळघर वरण भव भजण,
सीता मन रजण सज साथ।
मो मन आण सुजाण सिरोमण,
नित इण वाण वसौ रघुनाथ ॥४॥

(खडाऊँ सहित कोमल चरण-कमलो मे स्वर्ण के पवित्र नूपुर हैं। कमर मे श्रेष्ठ किंकिणी और शरीर पर सुन्दर पीला वस्त्र सुशोभित होता है।॥१॥ हाथ के पहुँचे पर जडाऊ पहुँची और सुन्दर आजानु भुजाओ पर भुजबन्ध शोभित हैं। हृदय पर बडे-बडे मोतियो की वैजयती माला है ॥२॥ ग्रीवा मे कटसरी, कानो मे कुडल (ललाट पर) मलयागिरि चदन का द्युतिवत तिलक और मस्तक पर अच्छे घाट के सच्चे हीरो का सिरपेंच, किरीट और मुकुट सुशोभित होता है। ॥३॥ भक्तो के भय को नाश करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषो के सिरमौर मेघवर्ण राम मन को प्रसन्न करनेवाली सीता के साथ हमेशा इस रूप से मेरे मन मे निवास करें ॥४॥)

कृष्णलाल

ये बूंदी के प्रसिद्ध गोस्वामी गदाधरलाल के वश मे महत श्री मोहनलाल के पुत्र थे। इन्होंने स० १८७२ मे नायिका भेद का एक ग्रन्थ 'कृष्ण-विनोद' और स० १८७४ में दूसरा ग्रथ अलकारो का रस-भूषण नाम का बनाया। महाराव राजा विष्णुसिंहजी की रानी राठौडजी की आज्ञा से भक्तमाल की टीका भी इन्होंने लिखी थी। इनकी भाषा सानुप्रास और कविता मधुर है। एक उदाहरण देखिए —

> सूखि सफेद भई विरहै जरि, सोई गगे गति ऊरध दैनी।
> अग मलीन अगार के धूमसी, सो जमुना जग जाहर रैनी ॥
> ताहि समै भयो प्यारे को आवन, सो अनुराग गिरा गति लैनी।
> कृष्ण कहै तब ही वर बालकै, आय कढी ततकाल त्रिवैनी ॥

रामदान

ये जोधपुर राज्य-निवासी लालस गोत्र के चारण थे। इनका जन्म स० १८१८ मे और देहान्त स० १८८२ मे हुआ था। इनके पिता का नाम फतहदान था। स० १८६५ मे जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने रामदान को तोलेसर नामक एक गाँव दिया था। कुछ वर्ष तक मेवाड मे भी रहे थे। इन्होंने 'भीमप्रकाश' नाम का एक ग्रन्थ रचा जिसमे मेवाड के महाराणा भीमसिंह के राजमहल, राज-दरबार, राजवैभव, गणगौर की सवारी इत्यादि का भव्य वर्णन है। दोहा कवित्त आदि सब मिलाकर १७५ छदो मे ग्रन्थ समाप्त हुआ है। बीच मे कही-कही गद्य भी है। प्रारम्भ के ७० छन्दो मे मेवाड का इतिहास वर्णित है। फिर महाराणा भीमसिंह का वर्णन शुरू होता है। इसकी भाषा डिंगल है। रचना इस तरह की है —

अमक सेन आरम्भ वोल नकीब वळोवळ।
गहर थाट गैमरा चपळ हैमरा वळोवळ॥
भाळ तेज भळहळै ढळै विहुँवै पख चम्मर।
दिन दूलह दीवाण ए चढियौ छक ऊपर॥
तिण वार आप दरियाव तट विडग छडि जगपति वियौ।
दीवाण भीम गणगौर दिन एम राण आरम्भियौ[21]॥

जवानसिंह

ये मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह के पुत्र और महाराणा हमीरसिंह (द्वितीय) के पौत्र थे। इनका जन्म सं० १८५७ मे और देहान्त म० १८९५ में हुआ था। इतिहास-प्रसिद्ध रूपवती कृष्णकुमारी इनकी वहिन थी। ये कविता मे अपना नाम 'व्रजराज' लिखा करते थे। इन्होंने व्रजभाषा मे अनेक कवित्त, सवैया, पद आदि वनाए जिनका सग्रह 'व्रजराज पद्यावली' के नाम से प्रसिद्ध है। इनकी भाषा परिमार्जित, कल्पनाएँ सुघर और रचना-पद्धति सरस है। इनके काव्य मे आत्म-समर्पण की झलक है और उसमे शृगार-भक्ति का अच्छा स्फुरण हुआ है। उदाहरण—

उद्धव आय गये व्रज मे सुनि गोपिन के तन मे सुख छायौ।
आनद सौं उमगी सगरी चलि प्रेम भरी दधि आन वँधायौ॥
पूछति है मन मोहन की सुधि वोलत ही दृग नीर चलायौ।
देखि सनेह सखा हरि कै घनश्याम वियोग कछू न सुनायौ॥

---

२१ नकीव=ढोली। वलोवल=एक के वाद दूसरा। थाट=समूह। विहुवै=दोनो। दिन दूलह=नित नया।

चडीदान

ये मिश्रण शाखा के चारण बूंदी के रहनेवाले थे। इनका जन्म स० १८४८ मे और देहावसान स० १८९२ मे हुआ था। इनके पिता का नाम बदनजी था जो बूंदी दरबार के बहु सम्मानित कवि थे। ये सस्कृत, पिंगल एव डिंगल के अच्छे विद्वान् और तत्वज्ञाता थे—

बदन सुकवि सुत कवि मुकुट अमर गिरा मतिमान।
पिंगल डिंगल पटु भये धुरधर चडीदान ॥
रवि साहित्य सरोज के रनसुम केरो लब।
तत्त्वबोध वैराग्य निधि अरु स्वधर्म पिक अब ॥

इन्होंने पाच ग्रथ बनाए जिनके नाम ये हैं—

(१) सार सागर (२) बलविग्रह (३) वंशाभरण (४) तीज तरग और (५) विरुद प्रकास।

चडीदान की कविता में भाव की नवीनता नही है। इनकी वर्णन-शैली भी प्राचीन ढग की और प्रथाबद्ध है। परन्तु एक तो भाषा इनकी बहुत सरल एव मधुर है, दूसरे, छन्दो की गति भी अच्छी है। उदाहरण—

घूमत घटा से घनघोर से घूमड घोख,
उमडत आए कमठान तें अधीर से ॥
चपट चपेट चरखीन की चलाचल तें,
धूरि धूम धूसंत धकात बलि बीर से ॥
मसत मतग रामसिंह महिपाल जू के,
डाकिनि डराए मद छाकिनि छकीर से।
साजे साटमारन अखारन के जैतवार,
आरन के अचल पहारेन के पीर से ॥

किशनजी

ये आढा गोत्र के चारण राजस्थान के प्रसिद्ध कवि दुरसाजी की वशपरम्परा मे थे और मेवाड के महाराणा भीमसिंह के आश्रित थे। इनके पिता का नाम दूल्ह था, जिनके छ पुत्रो मे ये तीसरे थे। 'रघुवर-जस-प्रकास' मे इन्होने अपना वश-परिचय इस प्रकार दिया है—

दुरसा घर किसनेस, किसन घर सुकवि महेसर।
सुत महेस गुमाण, खानसाहिब सुत जिण घर॥
साहिब घर पनसाह, पना सुत दूल्ह सुकव पुण।
दूल्ह घरे षट पुत्र, दान१ जसर२ किसन३ बुधोसण ४॥
सारूप५ चमन६ सुरधर ऊनत, घणट नगर पाँचेटियो।
चारण जात आढा विगत, किसन सुकवि पिंगल कियो॥

किशनजी को हिन्दी तथा सस्कृत के रीति ग्रथो का प्रौढ ज्ञान था और ये डिंगल-पिंगल दोनो मे कविता करने के अभ्यासी थे। इतिहास की ओर इनकी रुचि विशेष थी। इतिहास-सम्बन्धी सामग्री को एकत्र करने के लिए जब कर्नल टॉड ने मेवाड मे भ्रमण किया था तब ये उनके साथ थे और चारण-भाटो के घरो मे पडी हुई बहुत सी सामग्री इन्ही के अविश्रान्त उद्योग से कर्नल टॉड को प्राप्त हुई थी। इनकी लिखी सैकडो फुटकर कविताएँ तथा भीमविलास और रघुवर-जस-प्रकास नामक दो ग्रथ प्राप्त हुए है। भीमविलास महाराणा भीमसिंह की आज्ञा से स० १८७९ मे लिखा गया था। इसमे उक्त महाराणा का जीवन-वृत्तान्त है। इतिहास की दृष्टि से यह ग्रथ बहुत उपयोगी है। परन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण रचना रघुवर-जस प्रकास है। इसमे डिंगल के छन्दशास्त्र का विस्तृत विवेचन है। यह स० १८८१ मे पूरा हुआ था। इसमे हिन्दी, सस्कृत और डिंगल मे प्रयुक्त प्रधान-प्रधान छन्दो के लक्षण बहुत सरल भाषा मे समझाए गए हैं और उदाहरणो मे भगवान रामचन्द्र का यशोगान किया गया है। मात्रा, गण, प्रस्तार, वैणसगाई, काव्य-दोष

आदि पर लिखी हुई इनकी व्याख्याएँ वास्तव में बहुत मौलिकतापूर्ण और अपने रंग-ढंग की अनुपम हैं। किसन जी का एक छप्पय यहाँ उद्धृत किया जाता है—]

हय अरोह कहा लगत, सर्प सिर पै कहा सोहत।
कहा न दाता कहत, सिद्ध कह का को रोकत॥
नर सेवक कहा नाम, कवित के आदि धरत किहिं।
का घटने को कहत, वनिक सचत का कहि वहि॥
लख चलत खाग कहाँ लरत दल, दसरथ सुत को है वरन।
कवि कृस्न इहै उत्तर कियौ, राम नाम जग उधरन॥

दीनजी

मेवाड की वर्तमान राजधानी उदयपुर से १३ मील उत्तर दिशा में मेवाड के महाराणाओं के इष्टदेव श्री एकलिंग जी का मन्दिर है। जिस गाँव में यह मन्दिर अवस्थित है उसे आजकल कैलाशपुरी कहते हैं। दीनजी इसी गाँव के निवासी थे। ये जाति के लोहार थे। इनके जन्म-मृत्यु सम्वत् का ठीक-ठीक पता नहीं है। परन्तु इनके ग्रंथों से इनका रचना काल सं० १८६३-८८ निश्चित होता है। मिश्रबन्धुओं ने इन्हें काठियावाड-निवासी बतलाया है जो भूल है। काठियावाडी ये नहीं, इनके गुरु थे जिनका नाम बाल गुरु था और जो गिरनार के रहनेवाले थे। इस विषय में दीनजी स्वयं एक स्थान पर लिखते हैं——

"गुरुस्थान गिरनार, हौं उदैपुर देस एकलिंग वासी"

मेवाड के महाराणा भीमसिंह दीनजी को बहुत मानते थे। इसलिए जब तक उक्त महाराणा जीवित रहे तब तक इन्होंने मेवाड में निवास किया पर बाद में कोटे चले गए जहाँ एक दिन जब ये चंबल नदी पर स्नानार्थ गए हुए थे पानी में डूबकर मर गए। यह घटना सं० १८९० के आसपास की है।

दीनजी प्रतिभावान कवि और योग-सिद्ध पुरुष थे पर पढ़े-लिखे विशेष न थे। इनकी भाषा बोलचाल की राजस्थानी है। रचना आध्यात्मिक, ब्रह्मविद्या से सम्बन्ध रखनेवाली और रहस्यवाद-पूर्ण है। उदाहरण—

जितना दीसै थिर नही, थिर है निरजन नाम।
ठाट पाट नर थिर नही, नाही थिर धन धाम॥
नाही थिर धन धाम, गाम घर हस्ती घोडा।
नजर आत थिर नाहि, नाहि थिर साथ सजोडा॥
कहै दीन दरवेस, कहा इतने पर इतना।
थिर निज मन मत शब्द, नाही थिर दीसै जितना॥
बूझै कूप समद कू, अडियो सनमुख आय।
तुव मे जल कितनोक है, हम कूं देव बताय॥
हम कूं देव बताय, समद कै ह्वै सुन भाई।
भोले जल मन भूल, नाहि अपनी सर खाई॥
कहै दीन दरवेस, तु होवे तैसा सूझै॥
सुनो मुग्यानी मत, कूप समद कू बूझै॥

ऊपर जिन कवियो का परिचय दिया गया है उनके अतिरिक्त और भी अनेक कवि इस काल मे हुए है जिनमे से कुछ का उल्लेख आवश्यक है। कुभकर्ण सांदू शाखा के चारण थे। इन्होने 'रतनरासो' (स० १७३२) नामक एक ग्रथ बनाया जिसमे मुगल बादशाह शाहजहां के विद्रोही पुत्रो की आपसी लडाई का वर्णन है। जोधपुर के महाराजा अजीतसिह (स० १७३५-८१) अच्छे कवि थे। इनकी रची दो पुस्तको का पता है, 'गुण-सागर' और 'भाव-विरही'। इनके अतिरिक्त इनके दो-चार और ग्रथो के नाम मिश्रबन्धु विनोद मे दिये हुए हैं। मालूम नही, ये नाम कहां तक ठीक है। हरिदास भाट डिंगल भाषा के अच्छे कवि थे। इन्होने 'अजीतसिह चरित्र', और 'अमर

बत्तीसी' (सं० १७००) नामक दो ग्रंथ बनाये जो काफी अच्छे हैं। किशनगढ़ के मीर मुंशी माधोदास कृत 'शक्ति-भक्ति-प्रकाश' (सं० १७४०) एक उत्तम रचना है। वहाँ के महाराजा राजसिंह (सं० १७६३-१८०५) के भी तीन ग्रन्थ मिले हैं—राजप्रकाश, बाहु-विलास और रसपाय नायक। ये रचनाएँ कला-समन्वित और ईश-भक्ति से ओत-प्रोत हैं। इनके राज्य में रूपजी और वल्लभ जी दो अच्छे कवि हुए। रूपजी कृत 'रस-रूप' (सं० १७३९) नायिका-भेद का ग्रन्थ है। वल्लभजी प्रसिद्ध कवि वृन्द के पुत्र थे। उनके दो ग्रन्थ मिले हैं, 'वल्लभ-विलास' और 'वल्लभ-मुक्तावली'। लोकनाथ चौबे बूंदी-निवासी थे। इनका रचना काल सं० १७६० है। इन्होंने 'रस तरंग' और 'हरिवंश चौरासी' नामक दो ग्रन्थ बनाये। उनकी स्त्री भी कविता करती थी। नाजिर आनन्दराम-रचित 'भगवद्गीता' (सं० १७६१) प्रसिद्ध है। इसमें गद्य और पद्य दोनों हैं। प्रियादास प्रसिद्ध भक्त नाभादास के शिष्य थे। अपने गुरु के कहने से इन्होंने सं० १७६९ में भक्तमाल की टीका बनाई थी। धर्मवर्द्धन (सं० १७००-८१) जैन साधु थे। इनके छोटे-मोटे २३ ग्रंथ उपलब्ध हैं जो जैन धर्म विषयक हैं। इन्होंने चारणी ढंग की कविता भी की है। ये उन इने-गिने जैन पंडितों में से हैं जिनकी रचना में थोड़ी सी साहित्यिकता भी पाई जाती है। भोज मिश्र (सं० १७७७) बूंदी के राव राजा बुधसिंह के दरबारी कवि थे। इन्होंने 'मिश्र शृंगार' नामक एक ग्रन्थ लिखा। पृथ्वीराज साँदू शाखा के चारण थे। इन्होंने 'अभय विलास' की रचना की जिसमें जोधपुर के महाराजा अभयसिंह (सं० १७८१-१८०६) का इतिहास वर्णित है। ग्रन्थ डिंगल भाषा का है। महाराज सुजानसिंह (सं०१७९०) करौली के राज-घराने में पैदा हुए थे। 'सुजान-विलास' इनकी एक प्रसिद्ध रचना है। कुँवर कुशल और कनककुशल दोनों भाई थे। ये जैन थे और जोधपुर के रहने वाले थे। इन्होंने कच्छ के राजा लखपतसिंह (सं० १७९६) के लिए 'लख-पत-सिंधु' नाम का एक बहुत बड़ा ग्रन्थ बनाया। शिवसहायदास (सं०

१८०९) जयपुर-निवासी भद्र कवि थे। इनके 'शिव-चौपाई' और 'लोकोक्ति-रस-कौमुदी' नामक दो ग्रथो का पता है। गोपीनाथ गाडण शाखा के चारण थे। इनका रचना-काल स० १८१० है। इन्होने 'ग्रन्थराज' नामक एक ग्रन्थ बनाया जिसमे बीकानेर के महाराजा गजसिंह का वर्णन है। इस ग्रन्थ पर इन्हें लाखपसाव मिला था। ग्रन्थ डिंगल भाषा का है और उपयोगी भी है। मेवाड के महाराणा अरिसिंह ने नागरीदास कृत 'इश्क-चमन' के जवाब मे रसिक-चमन (स० १८२५) लिखा जो एक छोटी पर सरस रचना है। श्रीनाथ शर्म्मा जैसलमेर के रावळ मूलराज के सभासद थे। सस्कृत, हिंदी और डिंगल के अच्छे कवि एव विद्वान् थे। इनके चार ग्रन्थ मिलते है मूल राज काव्य, अन्योक्ति मजूषा, लोलिवराज और मूलविलास। रमपुजदास (स० १८३०) सुकवि थे। इनके रचे चार ग्रन्थ कहे जाते है—प्रस्तार प्रभाकर, वृत्तविनोद, चमत्कार-चन्द्रोदय और कवित्त श्री माताजी रा। करौली के गणेश कवि चतुर्वेदी ब्राह्मण थे। इनके रचे ग्रन्थो के नाम ये है—रस-चन्द्रोदय, कृष्ण-भक्ति-चद्रिका नाटक, सभासूर्य्य, नखशतक और फागुन माहात्म्य। उत्तमचद भडारी (स० १८६०) जोधपुर के महाराजा मानसिंह के समकालीन थे। इन्होंने चार-पाँच ग्रन्थ बनाये जिनमे 'अलकार-आशय' सर्वोत्कृष्ट है। भोमाजी बीठू शाखा के चारण थे। इनका रचना-काल स० १८८० के लगभग है। इन्होंने डिंगल भाषा के तीन-चार ग्रन्थ बनाये जो बीकानेर के राजकीय पुस्तकालय में मौजूद है।

इस काल की कवयित्रियों मे छत्रकुँवरि बाई (स० १७३१), ब्रजदासी (स० १७८०), रसिक बिहारी उपनाम बणीठणी जी (स० १७८७), चद्रसखी (स० १८८०) और प्रतापबाला (स० १८९०) मुख्य है।

पूर्व मध्यकाल की तरह फुटकर काव्य रचयिता इस काल मे भी सैकडो हो गये है।

पाँचवाँ प्रकरण

संत साहित्य

सत कबीर के सदुपदेशो का जनसाधारण ने अच्छा स्वागत किया और उनकी सफलता से उत्साहित होकर राजस्थान मे भी कुछ सत-महात्माओ ने कबीर पथ से मिलते-जुलते दादू पथ, चरणदासी पथ इत्यादि नवीन पथो को जन्म दिया जो कालातर मे राजस्थान के सिवा अन्य प्रान्तो मे भी बडे लोक-प्रिय सिद्ध हुए। सैद्धान्तिक दृष्टि से इन नये पथो के जन्मदाताओ की विचार-धारा और कबीर की विचार-धारा मे विशेष अतर न था। कबीर के समान इनकी उपासना भी निराकारोपासना थी और उन्ही की तरह ये भी मूर्ति-पूजा, कर्मकाड आदि के विरोधी थे और प्रेम, नाम, शब्द सद्गुरु आदि की महिमा का गुण-गान करते थे। इन सन्तो के कारण राजस्थानी साहित्य की अच्छी उन्नति हुई और इस उन्नति मे सबसे अधिक हाथ दादू पथियो का रहा। कहना न होगा कि ये सत लोग न तो विशेष पढे-लिखे होते थे। और न काव्य-निर्माण की ओर इनका विशेष ध्यान था। ये पहले भक्त, फिर उपदेशक और फिर कवि थे और जहाँ तक बन सकता अपने विश्वासो को सरल से सरल रूप मे लोगो के समक्ष रखने का प्रयत्न करते थे। काव्य कलासबधी नियमो के निर्वाह एवं भाषा की प्राजलता की अपेक्षा लोक-कल्याण की ओर इनका ध्यान विशेष रहता था। अतएव अपने धर्म-सिद्धान्तो के प्रचार तथा प्रसार की भावना से प्रेरित होकर जो कुछ भी इन्होंने लिखा उसमे कलापक्ष की

अपेक्षा विचार पक्ष की प्रधानता है। निःसदेह कुछ सत ऐसे भी हुए जिन्होंने विचार-प्रदर्शन के साथ-साथ काव्य-चमत्कार और भाषा-लालित्य का भी पूरा खयाल रखा, पर ऐसे सतो की सख्या बहुत अधिक नही है।

दादू पंथ

दादूपथ के जन्मदाता सत दादूदयाल थे। इस पथ मे मुख्यत चार प्रकार के साधु पाए जाते है—खाकी, विरक्त, थाँभाधारी और नागा। इनमे जो खाकी है वे शरीर पर भस्म लगाते और सिर पर जटा बढाते हैं। विरक्त कोपीन बाँधते, काषाय वस्त्र पहिनते और हाथ मे तूबी रखते है। ये भजन-कीर्तन, ज्ञान-चर्चा आदि कर अपना समय बिताते है। नागा और थाँभाधारी सफेद वस्त्र पहिनते और खेती, नौकरी, वैद्यक आदि द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करते है। नागे साधु बडे वीर, साहसी और रण-कुशल होते हैं। जयपुर के सैन्य-विभाग मे एक नागा जमात आज भी विद्यमान है। विवाह करने की सभी प्रकार के साधुओ को मनाई है। गृहस्थो के लडको को चेला बनाकर ये अपना पथ चलाते हैं। ये लोग न तो तिलक लगाते है, न चोटी रखते हैं और न गले मे कठी पहिनते है। ये प्राय हाथ मे सुमिरनी रखते हैं और जब मिलते हैं 'सत्तराम' कहकर एक दूसरे का अभिवादन करते हैं। दादू पथानुयायी निरजन निराकार परब्रह्म की सत्ता को मानते है और मूर्तिपूजा मे विश्वास नही रखते। ये अपने अस्थलो मे दादूजी तथा उनके प्रधान-प्रधान शिष्यो की वाणियाँ रखते है और उन्ही का अध्ययन-अध्यापन करते रहते हैं। जयपुर से लगभग बीस कोस की दूरी पर नरैणा नाम का एक छोटा-सा कस्बा है। इसी के पास भेराणे की पहाडी है जहाँ पर दादू दयाल ने शरीर छोडा था। दादू पथी इस स्थान को बहुत पवित्र मानते है और यही इनका मुख्य तीर्थ है। यहाँ पर दादूजी के उठने-बैठने के स्थान, कपडे और पोथियाँ हैं, जिनकी पूजा होती है, प्रति वर्ष फाल्गुन सुदी चौथ से द्वादशी तक एक

भारी मेला लगता है और एक बहुत बडी सख्या मे दादू पथी लोग एकत्र होते हैं।

दादूजी

सत दादू का जन्म स० १६०१ मे हुआ था। इनकी जाति के सबध मे विद्वानो मे बहुत मतभेद है। कोई इन्हें ब्राह्मण, कोई मोची और कोई धुनिया बतलाते हैं। इनके जन्मस्थान का भी ठीक-ठीक पता नही है। कहते हैं कि अहमदाबाद के किसी लोदीराम नामक एक ब्राह्मण को ये साबरमती नदी मे बहते हुए एक सदूक मे मिले थे। उसी ने इनका पालन-पोषण किया। इनके गुरु का नाम भी अज्ञात है। इनके शिष्य जनगोपाल ने 'दादू जन्म लीला परची' मे लिखा है कि एक दिन भगवान ने स्वय सामने आकर इनको दर्शन और उपदेश दिया था। तभी से ये विरक्त हो गये और साधु-सेवा तथा सत्सग मे अपना जीवन बिताने लगे। उन्नीस वर्ष की उम्र मे ये अहमदाबाद से राजस्थान मे चले आए और साँभर, आमेर, कल्याणपुर, नरैणा आदि स्थानो मे घूम-घूमकर अपने धर्म-सिद्धान्तो का प्रचार करने लगे। दादूजी ने विवाह भी किया था और इनके दो पुत्र और दो पुत्रियाँ थी। इनके ज्येष्ठ पुत्र का नाम गरीबदास था जो इनकी मृत्यु के बाद इनकी गद्दी के उत्तराधिकारी हुए थे। दादूजी का गोलोकवास स० १६६० के आस-पास नरैणा मे हुआ था।

दादूजी की 'वाणी' प्रसिद्ध है। इसमे इन्होंने प्रेम, गुरुभक्ति, सत्सग माया, जीव ब्रह्म आदि तत्वज्ञान सम्बन्धी अनेकानेक विषयो पर अपने विचार व्यक्त किये है। इनकी भाषा पिंगल है जो बहुत सीधी-सादी और सुलझी हुई है। कबीर की भाषा की तरह अटपटापन उसमे नही है। भाव विचार की दृष्टि से इनकी रचना मे बडी गम्भीरता है। इनका एकपद और कुछ साखियाँ यहाँ उद्धृत की जाती है—

भाई रे ऐसा पथ हमारा
द्वै पख रहित पथ गह पूरा अवरण एक अघारा।
वाद विवाद काहु सौ नाही मै हूँ जग थें न्यारा ॥
समदृष्टी सूं भाई सहज मे आपहि आप विचारा।
मैं तैं मेरी यह मति नाही निरवैरी निरविकारा॥
काम कलपना कदे न कीजे पूरण ब्रह्म पियारा।
एहि पथ पहुँचि पार गहि दादू सो तत सहज सँभारा॥
घीव दूध मे रमि रह्या, व्यापक सब ही ठौर।
दादू वकता बहुत है, मथि काढै ते और ॥१॥
दादू दीया है भला, दिया करो सब कोय।
घर मे धरा न पाइये, जो कर दिया न होय ॥२॥
कहि कहि मेरी जीभ रहि, सुणि सुणि तेरे कान्न।
सतगुरु वपुरा क्या करै, चेला मूढ अजान॥
दादू देख दयाल कौ, सकल रहा भरपूर।
रोम-रोम मे रमि रह्यो, तू जिनि जानै दूर॥
केते पारिख पचि मुये, के मति कही न जाइ।
दादू सब हैरान हैं, गूगे का गुड खाइ॥
क्या मुह ले हँसि बोलिए, दादू दीजै रोइ।
जनम अमोलक आपणा, चले अकारथ खोइ॥
सुरग नरक ससय नही, जिवण मरण भय नाहिं।
राम विमुख जे दिन गये, सो सालै मन माँहि॥
कहताँ सुनताँ, देखताँ, लेताँ देताँ प्रान।
दादू सो कतहूँ गया, माटी धरी मसान॥
जिहि घर निंदा साधु की, सो घर गये समूल।
तिनकी नीव न पाइये, नाँव न ठाँव न धूल॥

बखनाजी

ये जयपुर राज्य के नराणा नामक गाँव में सं० १६०० और सं० १६१० के बीच किसी समय पैदा हुए थे। इनकी जाति के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है। कोई हिंदू और कोई मुसलमान बतलाते हैं। परन्तु अधिक मत मुसलमान मानने के पक्ष में है। इनके मृत्यु-काल का भी निश्चित पता नहीं है। अनुमान किया जाता है कि सं० १६८० के बाद और सं०१६८७ से पूर्व ये ब्रह्मलीन हुए थे।

बखनाजी की 'बाणी' प्रकाशित हो चुकी है। इसमे इनके पद, दोहे आदि संगृहीत हैं। ये गायन विद्या मे प्रवीण थे। इसलिए इन्होंने गेय पद अधिक बनाए हैं जिनकी संख्या १६७ है। इनकी भाषा आम जनता की भाषा है। भाव-बोधक की शैली क्लिष्ट न होकर बहुत सरल और सुबोध है। उदाहरण देखिए—

बखना हरि जल बरखिया, जल-थल भरे अनेक।
करम कठोरां माणसां, रोम न भीगो एक॥
पाणी मे पथर रह्यो, ऊपरि बंध्या सिवाल।
बखना डाच्यां नीकळी, माँहि, अगन की झाल॥
अपणी माया पार की, पलक एक मैं होइ।
अगनि दहै तसकर मुसै, देखत बिनसै कोइ॥
पय पाणी भेला पिवै, नहीं ग्यान को अंस।
तजि पाणी पय नै पिवै, बखना साधू हंस॥

रज्जबजी

ये जाति के पठान थे और जयपुर राज्य के सांगानेर नामक स्थान मे सं० १६२४ के आसपास पैदा हुए थे। इनका असली नाम रजबअलीखाँ था।

कहते है कि वीस वर्ष की उम्र मे जब ये अपना विवाह करने के लिए साँगानेर से आमेर गए हुए थे तब वहाँ इनका दादूदयाल से साक्षात्कार हुआ और विवाह करने का विचार छोड उनके चेले हो गए। तभी से ये दादू जी के साथ रहने और कथा-कीर्तन, सत्सग आदि मे अपना समय व्यतीत करने लगे। दादूजी के प्रति इनकी वडी श्रद्धा थी और वे भी इनको वहुत मानते थे। कहा जाता है कि दादूजी की मृत्यु से इन्हें ससार सूना प्रतीत होता था और जिस दिन उन्होंने शरीर छोडा उस दिन से उन्होंने भी अपनी आँखे वन्द कर ली और आजन्म न खोली। इनका देहान्त सं० १७४६ में साँगानेर ही मे हुआ था।

रज्जवजी पढे-लिखे न थे, पर वहुश्रुत थे। इन्होंने 'वाणी' और 'सर्वंगी' नामक दो वहुत वडे ग्रन्थ वनाए जिनसे इनकी कवित्वशक्ति, ज्ञानगरिमा और गुरु-भक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। इनकी भाषा पिंगल और कविता भावमयी है। भक्ति एव प्रेम के उद्‌गारो का इन्होने वहुत ही हृदयग्राही और नैसर्गिक ढग से चित्रण किया है। इनकी रचना के नमूने लीजिए—

पद

संतो मगन भया मन मेरा
अह-निस सदा एक रस लागा दिया दरीवै डेरा ॥टेक॥
कुल मर्याद मैंड सव भागी वैठा भाठी नेरा।
जाति पाँति कछु समझौ नाही किस कू करै परेरा ॥१॥
रस की प्यास आस नहिं औरो इहिं मत किया वसेरा।
ल्याव ल्याव या ही लै लागी पीवै फूल घनेरा ॥२॥
सो रस माग्या मिले न काहू सिर साटै वहुतेरा।
जन रज्जव तन मन दै लीया होय धणी का चेरा ॥३॥

साखी

दादू दरिया राम जल, सकल संत जन मीन।
सुख सागर मे सब सुखी, जन रज्जब लो लीन ॥१॥
सतगुरु चुम्बक रूप है, सिष्य सुई ससार।
अचल चलै उनके मिलै, या मे फेर न फार ॥२॥
विरही साबित विरह मे, विरह बिना मर जाय।
ज्यू चूने का काकरा, रज्जब जल मिल जाय ॥३॥
नाव निरजन नीर है, सब सुकृत बनराय।
जन रज्जब फूलै फलै, सुमिरन सलिल सहाय ॥४॥
रज्जब पारस परस तै, मिटिगो लोह विकार।
तीन बात तो रहि गई, बाक धार अरु भार ॥५॥
भली कहत मानत बुरी, यहै परकृति है नीच।
रज्जब कोठी गार की, ज्यू धोवै ज्यू कीच ॥६॥
सिर छेदे हू वीर को, वीरपनो नहीं जाय।
दीन हीनता ना तजै, पद विशेष हू पाय ॥७॥
रज्जब कोल्हू काल कै, सब तन तिली समानि।
मो उबरै कहि कौन विधि, जो आया बिचि घानि ॥८॥

गरीबदास

ये दादूदयाल के ज्येष्ठ पुत्र थे और उनके स्वर्गवास के बाद उनकी गद्दी के उत्तराधिकारी हुए थे। इनका जन्म स० १६३२ मे हुआ था। ये बहुत अच्छे पडित और गान-विद्या मे निपुण थे। इनके रचे 'साखी' 'पद' 'अनर्भ प्रबोध' 'अध्यात्म बोध' आदि ग्रन्थ मिलते हैं। एक पद देखिए —

पद

नाद ब्यद ले उरधैं धरैं।
सहज जोग हठ निग्रह नाही पवन फ़ेरि घट माहै भरैं ॥टेक॥
त्रिकुटी ध्यान सधि नहिं चूके भौंर गुफा क्यूँ भूलैं।
द्वै सर सधि अनूप अराधैं सुख सागर में झूलैं ॥१॥
इगला प्यगुला सुपमन नारी तिरवेणी सग ल्यावैं।
नौमें नवासी फेरि अपूठा दसवें द्वार भमावे ॥२॥
अरधै उरधै ताली लखे चन्द सूर सम कीन्हा।
अष्ट कमल दल माहे विगसे ज्योति सरूपी चीन्हा ॥३॥
रोम रोम धुनि उठी सहज मे परचै प्राण सुपीवैं ॥
गरीबदास गुरमुपि व्है बूझी जो जाणै सो जीवैं ॥४॥

जगन्नाथदास

ये जाति के कायस्थ थे। स० १६४० के लगभग आमेर मे दादूजी के शिष्य हुए थे। दादूजी की इन पर बडी कृपा थी। प्राय उन्ही के साथ रहा करते थे। बडे योग्य और प्रतिभावान कवि थे। इनके 'वाणी' और 'गुण गजनामा' ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त इनके लिखे दो और ग्रन्थो का भी पता है, (१) गीता सार और (२) योग वाशिष्ठ सार। इनकी रचना का नमूना देखिए —

मणियाँ सहज इकीस लै, पटसत माला पोइ।
जगन्नाथ मन सुरति सो, रात-दिवस भजि सोइ ॥
मन की मेरे कलपना, तन निश्चल जगनाथ।
सुमिरन सो स्वासा रहै, चचल मन नहँ हाथ ॥

जनगोपाल

ये फतहपुर सीकरी के रहनेवाले जाति के वैश्य थे। अपने जन्मस्थान सीकरी मे ही इन्होने दादूदयाल से गुरु-मत्र लिया था। इनका रचनाकाल स० १६५० के लगभग है। दादूपथियो मे इनके पद और छद बहुत प्रचलित हैं। इनके ग्रन्थ ये हैं—

(१) दादू जन्मलीला परची (२) ध्रुव चरित्र (३) प्रह्लाद चरित्र (४) भरत चरित्र (५) मोहविवेक (६) चौबीस गुरुओ की लीला (७) शुक सवाद (८) अनन्त लीला (९) बारहमासिया (१०) भेंट के सवैये-कवित्त (११) जखडी-काया प्राण सवाद (१२) साखी, पद इत्यादि।

इनकी कविता का थोडा सा अश नीचे उद्धृत है—

> तोसी मैं स्वामी ह्वै आये। द्वारै सेवग तिन सुख पाये।।
> अरु जब बीतें समये दोई। ढुढाहर की विनती होई।।
> स्वामी गए सबनि सुप पाये। रमते नग्र नराणे आये।।
> बपनौ होरी गावत देख्यौ। गुरु दादू अपनौ करि पेख्यौ।।
> कृपा करी तब ऐसी स्वामी। वचन बोलिया अतरजामी।।
> ऐसी देह रची रे भाई। राम निरजन गावौ आई।।
> ऐसा वचन सुन्या है जबही। बपनी दष्या लीन्ही तबही।।

जगजीवन

ये ब्राह्मण कुल मे पैदा हुए थे और दादूजी के प्रधान शिष्यो मे से थे। इनका रचना-काल स० १६५० के आस-पास है। बहुत बडे सत और शास्त्र-वेत्ता थे। काव्य-रचना मे भी निपुण थे। इनकी 'वाणी' एक बहुत बडा ग्रन्थ है। ये पहले वैष्णव थे और दादूपथी बाद मे हुए थे। इसलिए इनकी

रचना पर वैष्णव धर्म के सिद्धान्तो का प्रभाव भी पर्याप्त मात्रा मे पाया जाता है। इनकी भाषा बहुत सीधी-सादी और सरल है। उदाहरण—

खीर नीर निरलै करै, पर उपगारी संत।
कहि जगजीवण साखि धर, पारब्रह्म को अंत ॥
यह सब सम्पत्ति जायगी, विपति पडेगी आय।
जगजीवण सोई भली, जै कोइ खरचै खाय ॥

दामोदरदास

ये दादूजी के शिष्य जगजीवनजी के चेले थे। मिश्रबंधु-विनोद मे इनका समय सं० १७१५ बतलाया गया है, जो अशुद्ध है। इनका ठीक समय सं० १६५० और सं० १६६० के मध्य मे है। इन्होंने गद्य मे मार्कंडेयपुराण का अनुवाद किया था जो काफी अच्छा है। ये पद्य-रचना भी करते थे। दो दोहे देखिए—

सुगति सुरझै प्राणि सब चार वरण कुल सब्ब।
हरि सुमरण छिन सू करै कारज होवै तब्ब ॥
कोटि कोटि कित कीजिये जो कीजै सतसंग।
सतसंगत सुमरण बिना, चढै न जिउ के रंग ॥

माधौदास

ये गूलर (मारवाड) के रहनेवाले थे। रचनाकाल सं० १६६१ है। इनका लिखा 'संत गुण सागर सिद्धान्त' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इसमे २४ तरंगें हैं। दादूजी के चरित्र का अनेक छंदो मे वर्णन किया गया है। बहुत उपयोगी रचना है। इसका साहित्यिक महत्त्व भी यथेष्ट है। एक सवैया दिया जाता है—

द्यौसा मे इक भूसर सेवग, ता सुत सुन्दर नाम कहाई।
ता जननी सुत आइ गुरु ढिग, पाद-सरोजहि देख लुभाई॥
सुन्दर के सिर हाथ धरयौ गुरु कानहि मे निजमन्त्र सुनाई।
बालपने उपदेश दियो गुरु मात पिता घर तातें रहाई॥

भीखजन

ये फतहपुर-निवासी जाति के महाब्राह्मण (तारक व आचारज) थे और संतदास के चेले थे। इनका रचनाकाल स० १६८३ है। सत्संगी और गुणाढ्य महात्मा थे। इनकी 'भीख बावनी' एक प्रसिद्ध रचना है। इसमे ५३ छप्पय हैं। नीति का यह एक छोटा पर अमूल्य ग्रन्थ है। भाषा इस ढग की है—

सम्वत सोला सह वरस, जव हुतो तियासी।
पोष मास पष सेत, हेत दिन पूरनमासी॥
सुभ निपत्र गुन करयौ, अखिर जो धरयौ जु आरज॥
कथ्यौ भीखजन ज्ञान, जाति द्विज कुल आचारज॥
सब संतन सौ विनती करै, औगुन मोहि निवारियौ।
मिलते सू मिलता रहहु अनमिल आक सवारियौ॥

संतदास

ये चमडिया गोत्र के अग्रवाल महाजन और दादूजी के बावन प्रधान शिष्यो मे से थे। इनके जन्मकाल का ठीक-ठीक पता नही है। इन्होने जीवित समाधि ली थी। समाधि-समय स० १६९६ है। इनकी अठखभो की एक छतरी अभी तक फतहपुर मे विद्यमान है। इन्होने 'वाणी' रची थी जिसकी छंद-संख्या बारह हजार है। इसी से ये 'बारा हजारी' भी कहलाते थे। रचना इस तरह की है—

रैण छमाही ह्वै रही, आया नाँही पीव।
सन सनेही कारणै, तलफै मेरा जीव॥
बिरहणी बिछुडी पीव सो, ढूढत फिरै उदास।
सतदास इक पीव बिन, निहचल नाँही वास॥

सुन्दरदास

ये बूसर गोती खंडेलवाल महाजन थे और जयपुर राज्यान्तर्गत धौसा नगरी में, जो जयपुर शहर से पूर्व दिशा में १६ कोस पर है, स० १६५३ में पैदा हुए थे। इनके पिता का नाम चोखा उपनाम परमानन्द और माता का सती था। ये दोनो बड़े धर्मात्मा, भगवद्भक्त और साधु-महात्माओ का सत्कार करनेवाले व्यक्ति थे। कहते है कि टहटडा गाँव की ओर से घूमते हुए एक दिन दादूदयाल जब धौसा मे आये और सुन्दरदास के माता-पिता इन्हें लेकर उनके निवास स्थान पर गये तब दादूजी इनकी मुखाकृति से बहुत प्रभावित हुए और होनहार समझकर इन्हें अपना चेला बना लिया। इस समय सुन्दरदास की अवस्था ६ वर्ष की थी। उसी दिन से इन्होने अपना जन्म-स्थान तथा परिवार छोड दिया और जगजीवन नामक दादूजी के एक शिष्य की देख-रेख मे गुरु के साथ रहने लगे। अपने गुरु-सम्प्रदाय ग्रन्थ मे सुन्दरदास ने इस घटना का उल्लेख किया है—

प्रथमहिं कहौ आपुनी वाता, मोहि मिलायौ प्रेरि विधाता।
दादूजी जब धौसह आये, बालपनै हम दर्शन पाये॥
तिनके चरननि नायौ माथा, उनि दीयौ मेरै सिर हाथा।
स्वामी दादू गुरु है मेरौ, सुन्दर दास शिष्य तिन केरौ॥

दादूजी के स्वर्गवास (स० १६६०) के समय तक ये नराणे मे रहे। तदनन्तर अपने माता-पिता के पास धौसा चले आए और कुछ दिन वहाँ

रहकर शिक्षा प्राप्त करने के लिए काशी चले गए। लगभग तीस वर्ष की आयु तक काशी मे रहकर इन्होंने व्याकरण, साहित्य, वेदान्त, योग और षट्दर्शन के ग्रथो का मनन किया तथा भाषा काव्य के छद, रस, अलकारादि विविध अगो के विषय मे भी बहुत से ग्रथ पढे। वहाँ से लौटकर ये अपने गुरु भाई प्रयागदास के साथ फतहपुर मे रहने लगे।

सुन्दरदास बाल ब्रह्मचारी, बडे स्वरूपवान, विनोदप्रिय तथा मधुर-भाषी थे। उनकी प्रकृति अत्यन्त सरल और उन्मुक्त हँसी बालको की तरह भोली थी। उच्च कोटि के दार्शनिक होते हुए भी दार्शनिको का सा-रूखापन इनके स्वभाव मे न था। सरल, निरभिमान तथा आडम्बर शून्य स्वभाव के साथ-ही-साथ स्वामीजी के व्यक्तित्व मे कुछ ऐसा आकर्षण था कि जिससे प्रत्येक मिलनेवाला प्रभावित हुए विना नही रहता था। उनकी मनमोहक मुख-श्री और सौम्य मूर्ति के दर्शन मात्र से एक प्रकार की पवित्रता एव शान्ति का अनुभव होता था। स्वामीजी सत्साहित्य के उद्भावक, पोषक तथा उन्नायक थे, और कहा करते थे कि शृगार रसात्मक कविता कला की दृष्टि मे चाहे कितनी ही उच्च कोटि की क्यो न हो, लोकहित साधन के विचार से तो विष ही है। केशवकृत रसिकप्रिया हिन्दी साहित्य मे रसो पर एक अद्भुत, अपूर्व एव अनूठा ग्रथ समझा जाता है पर सुन्दरदास की दृष्टि मे उसका कुछ भी मूल्य न था—

रसिकप्रिया रसमजरी और सिंगारहि जानि।
चतुराई करि बहुत विधि विषै बनाई आनि॥
विषै बनाई आनि, लगत विषयिन को प्यारी।
जागै मदन प्रचण्ड, सराहैं नख सिख नारी॥
ज्यो रोगी मिष्टान्न, खाइ रोगहि विस्तारै।
सुन्दर यह गति होइ, जु तौ रसिकप्रिया धारै॥

स्वामी जी को देशाटन का बड़ा शौक था। बिना किसी खास कारण के एक स्थान पर ये विशेष न रहते थे। प्राय समस्त उत्तरी भारत, गुजरात, मध्यप्रदेश, मालवा आदि का इन्होंने कई बार पर्यटन किया था, और दादू पंथियो के स्थानो को देखा था। इससे इनके ज्ञान-भंडार की अच्छी अभिवृद्धि हुई और अन्य भाषा-भाषियो के सम्पर्क मे आने से अरबी, फारसी, पूर्वी पंजाबी, गुजराती आदि भाषाओ का भी इन्हे अच्छा ज्ञान हो गया। इनका नियम था कि जिस स्थान पर जाते वहाँ के साधु-महात्माओ से अवश्य मिलते थे। उनके सत्संग से लाभ उठाते और अपने सदुपदेशो से उन्हें लाभान्वित करते थे। अपनी गुणग्राहिता के कारण दादूपंथियों के सिवा इतर धर्मावलम्बी भी उन्हें बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते और इनकी ज्ञान-गरिमा, साधुता तथा रचना-पाटव की बड़ी सराहना करते थे।

सुन्दरदास कभी फतहपुर मे, कभी मोरा मे, कभी कुरसाने मे, और कभी आमेर मे रहे पर अन्त समय मे ये सागानेर मे थे जहाँ स० १७४६ मे इनका वैकुंठवास हुआ।

सुन्दरदास के कई शिष्य थे जिनमे दयालदास, श्यामदास, दामोदरदास, निर्मलदास और नारायणदास मुख्य थे। इन पाँचो के थाभो को बड़े थाभे कहते है। इनमे भी फतहपुर का थामा प्रधान गिना जाता है। इसलिए ये 'सुन्दरदास फतहपुरिया' भी कहलाते हैं। इनके हाथ की लिखी हुई पुस्तकें, इनके पलंग, चादर, टोपा आदि भी फतहपुर मे इनके थाभाधारियो के पास सुरक्षित हैं। सागानेर मे जिस स्थान पर स्वामीजी का अग्नि-संस्कार हुआ वहाँ पर उनके शिष्यो ने एक छोटा-सा चबूतरा तैयार कर उस पर एक छोटी सी गुमटी बना दी थी जो स० १९६५ तक ठीक दशा मे रही पर बाद मे न मालूम किसी ने उसे तोड-फोड डाला और स्वामीजी के चरण-चिह्नो को भी उखाड कर फेंक दिया। इस छतरी मे यह चौपाई खुदी हुई थी—

रहकर शिक्षा प्राप्त करने के लिए काशी चले गए। लगभग तीस वर्ष की आयु तक काशी मे रहकर इन्होने व्याकरण, साहित्य, वेदान्त, योग और षट्दर्शन के ग्रथो का मनन किया तथा भाषा काव्य के छद, रस, अलकारादि विविध अगो के विषय में भी बहुत से ग्रथ पढे। वहाँ से लौटकर ये अपने गुरु भाई प्रयागदास के साथ फतहपुर मे रहने लगे।

सुन्दरदास बाल ब्रह्मचारी, बडे स्वरूपवान, विनोदप्रिय तथा मधुर-भाषी थे। उनकी प्रकृति अत्यन्त सरल और उन्मुक्त हँसी बालकों की तरह भोली थी। उच्च कोटि के दार्शनिक होते हुए भी दार्शनिको का सा-रूखापन इनके स्वभाव मे न था। सरल, निरभिमान तथा आडम्बर शून्य स्वभाव के साथ-ही-साथ स्वामीजी के व्यक्तित्व मे कुछ ऐसा आकर्षण था कि जिससे प्रत्येक मिलनेवाला प्रभावित हुए बिना नही रहता था। उनकी मनमोहक मुख-श्री और सौम्य मूर्ति के दर्शन मात्र से एक प्रकार की पवित्रता एव शान्ति का अनुभव होता था। स्वामीजी सत्साहित्य के उद्भावक, पोषक तथा उन्नायक थे, और कहा करते थे कि शृगार रसात्मक कविता कला की दृष्टि से चाहे कितनी ही उच्च कोटि की क्यो न हो, लोकहित साधन के विचार से तो विष ही है। केशवकृत रसिकप्रिया हिन्दी साहित्य मे रसो पर एक अद्भुत, अपूर्व एव अनूठा ग्रथ समझा जाता है पर सुन्दरदास की दृष्टि मे उसका कुछ भी मूल्य न था—

रसिकप्रिया रसमजरी और सिंगारहि जानि।
चतुराई करि बहुत विधि विषै बनाई आनि॥
विषै बनाई आनि, लगत विषयिन को प्यारी।
जागै मदन प्रचण्ड, सराहैं नख सिख नारी॥
ज्यो रोगी मिष्टान्न, खाइ रोगहि विस्तारै।
सुन्दर यह गति होइ, जु तौ रसिकप्रिया धारै॥

स्वामी जी को देशाटन का बडा शौक था। बिना किसी खास कारण के एक स्थान पर ये विशेष न रहते थे। प्राय समस्त उत्तरी भारत, गुजरात, मध्यप्रदेश, मालवा आदि का इन्होने कई बार पर्यटन किया था, और दादू पथियो के स्थानो को देखा था। इससे इनके ज्ञान-भडार की अच्छी अभिवृद्धि हुई और अन्य भाषा-भाषियो के सम्पर्क मे आने से अरबी, फारसी, पूर्वी पजाबी, गुजराती आदि भाषाओ का भी इन्हे अच्छा ज्ञान हो गया। इनका नियम था कि जिस स्थान पर जाते वहाँ के साधु-महात्माओ से अवश्य मिलते थे। उनके सत्सग से लाभ उठाते और अपने सदुपदेशो से उन्हें लाभान्वित करते थे। अपनी गुणग्राहिता के कारण दादूपथियो के सिवा इतर धर्मावलम्बी भी इन्हें बडी श्रद्धा की दृष्टि से देखते और इनकी ज्ञान-गरिमा, साधुता तथा रचना-पाटव की बडी सराहना करते थे।

सुन्दरदास कभी फतहपुर मे, कभी मोरा मे, कभी कुरसाने मे, और कभी आमेर मे रहे पर अन्त समय मे ये सागानेर मे थे जहाँ स० १७४६ मे इनका वैकुठवास हुआ।

सुन्दरदास के कई शिष्य थे जिनमे दयालदास, श्यामदास, दामोदरदास, निर्मलदास और नारायणदास मुख्य थे। इन पाँचो के थामो को बडे थामे कहते है। इनमे भी फतहपुर का थामा प्रधान गिना जाता है। इसलिए ये 'सुन्दरदास फतहपुरिया' भी कहलाते है। इनके हाथ की लिखी हुई पुस्तकें, इनके पलग, चादर, टोपा आदि भी फतहपुर मे इनके थामाधारियो के पास सुरक्षित हैं। सागानेर मे जिस स्थान पर स्वामीजी का अग्नि-सस्कार हुआ वहाँ पर उनके शिष्यो ने एक छोटा-सा चबूतरा तैयार कर उस पर एक छोटी सी गुमटी बना दी थी जो स० १९६५ तक ठीक दशा मे रही पर बाद मे न मालूम किसी ने उसे तोड-फोड डाला और स्वामीजी के चरण-चिह्नो को भी उखाड कर फेक दिया। इस छतरी मे यह चौपाई खुदी हुई थी—

सवत सत्रासे छीयाला, कातिक सुदि अष्टमी उजाला।
तीजे पहर भरसपतिवार, सुन्दर मिलिया सुन्दर सार ॥

इनके रचे ग्रन्थो के नाम निम्न है—

ज्ञान-समुद्र, सर्वांगयोग, पचेन्द्रिय चरित्र, सुखसमाधि, स्वप्न-प्रबोध, वेद विचार, उक्त अनूप, अद्भुत उपदेश, पच प्रभाव, गुरु सम्प्रदाय, गुन उतात्ति, सद्गुरु महिमा, बावनी, गुरुदया पटपदी, भ्रमविध्वसाष्टक, गुरु कृपा अष्टक, गुरु उपदेश अष्टक, गुरु महिमा अष्टक, रामजी अष्टक, नाम अष्टक, आत्मा अचल अष्टक, पजाबी भाषा अष्टक, ब्रह्मस्तोत्र अष्टक, पीर मुरीद अष्टक, अजब ख्याल अष्टक, ज्ञान झूलना अष्टक, सहजानद ग्रंथ, गृह वैराग्य बोध ग्रथ, हरिबोल चितावनी, तर्क चितावनी, विवेक चितावनी पवगम छन्द ग्रथ, अडिल्ला छद ग्रथ, मडिल्ला-छद ग्रन्थ, बारहमासो, आयुर्बल भेद आत्मा विचार, त्रिविध अत करण भेद ग्रन्थ, पूर्वीभाषा बरवै ग्रन्थ सवैया (सुन्दर विलास) साखी ग्रन्थ, फुटकर, पद, कवित्त इत्यादि।

हिंदी साहित्य के निर्गुणोपासक भक्त कवियो मे सुन्दरदास का एक विशेष स्थान है। शान्तरस और वेदान्त विषयक कविता इनकी सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इनकी भाषा पिंगल और वर्णन शैली सरस, स्पष्ट एव साहित्यिक है। सत कवियो मे यही एक ऐसे व्यक्ति हुए हैं जो दिग्गज विद्वान् एव साहित्य-मर्मज्ञ थे और पद-साखियो के अतिरिक्त कवित्त-सवैया लिखने मे भी सिद्धहस्त थे। अत रीतिकालीन कवियो की अभिव्यजना पद्धति पर रची हुई इनकी कविताओ का जितना औपदेशिक मूल्य है उतना ही साहित्यिक भी। और यही कारण है कि उन्हें पढकर ज्ञान-पिपासु भक्तजन ही परितृप्त नही होते, बल्कि बडे-बडे काव्यकला-कौशल प्रेमी भी आनदित होते और झूमने लगते हैं। इनकी रचना के नमूने देखिए—

कवित्त

अपने न दोष देखै पर के औगुन पेखै
दुष्ट को सुभाव उठि निंदाई करतु है।
जैसे काहू महल सवार राख्यौ नीके करि
कीरी तहाँ जाइ छिद्र ढूढत फिरतु है॥
भोर ही ते साँझ लग साँझ ही ते भोर लग
सुन्दर कहतु दिन ऐसे ही भरतु है।
पाँव के तरोम की न सूझै आगि मूरख को
और सो कहतु सिर ऊपर बरतु है॥

कामिनी को तन मानो कहिए सघन वन
उहाँ कोउ जाइ सुतो भूलि कै परतु है।
कुञ्जर है गति कटि केहरि को भय जामैं
वेनि काली नागनीऊ फन को धरतु है॥
कुच है पहार जहाँ काम चोर रहे तहाँ
साधि कै कटाक्ष-वान प्रान कों हरतु है।
सुन्दर कहत एक और डर अति ता मैं
राक्षस वदन खाउ खाउ ही करतु है॥

सवैया

घात अनेक रहे उर अन्तर दुष्ट कहै मुख सौं अति मीठी।
लोटत पोटत व्यघ्रहि ज्यों नित ताकत है पुनि तहि की पीठी॥
ऊपर तें छिरकै जल आनि सुहेठ लगावत जारि अगीठी।
या महिं कूर कछू मति जानहु सुन्दर आपुनि आँखिनि दीठी॥

तू ठगि कै धन और को ल्यावत तेरेउ तौ घर औरइ फोरै।
आगि लगै सब ही जरि जाय सु तू दमरी दमरी करि जोरै॥

हाकिम को डर नाहिंन सूझत सुन्दर एकहि वार निचोरै।
तू खरचै नहिं आपुन खाइ सु तेरिहि चातुरि तोहि ले बोरै॥

पद

मन कौन सी लगि भूल्यौ रे।
इन्द्रिनि के सुख देखत नीके जैसे भँवरि फूल्यौ रे ॥टेक॥
दीपक जोति पतग निहारै जरि वरि गयौ समूल्यौ रे॥१॥
झूठी माया हैं कछु नाही मृगतृष्णा मैं झूल्यौ रे॥२॥
जित तित फिरै भटकतौ यौं ही जैसे वायु वघूल्यौ रे॥३॥
सुन्दर कहत समुझि नहिं कोई भवसागर हैं डूल्यौ रे॥४॥

खेमदास

ये दादूजी की शिष्य परपरा मे रज्जवजी के चेले थे। इनका रचना-काल स० १७४० के आसपास है। इन्होंने चार ग्रन्थ वनाए जो इनकी ज्ञानगरिमा के अच्छे परिचायक है। इनकी भाषा प्रौढ और परिमार्जित है। कविता-शैली सयत और गभीर है। ग्रथों के नाम ये है—कर्म-धर्म संवाद, सुख सवाद, चितावणी योग सग्रह और साखी। इनकी कविता का एक उदाहरण निम्न है। इसमे इन्होंने गुरु रज्जवजी का गुणगान किया है—

ग्यानवन्त गभीर सूर सावत सुलच्छन।
पच पचीसी मेलि भरम गुन इद्रिय भच्छन॥
दुरजन द्वै दल मोडि मोह मद मच्छर माया।
खल खवीस सव पीस सीस धरि ईस सजाया॥
मैमन्त मना गुर ज्ञान मैं खेम वुद्धि लै अरि हते।
ध्यान अडिग धर धीर धुर जन रज्जव पूरे मते॥

राघवदास

ये जाति के क्षत्रिय थे। इनके गुरु का नाम प्रहलाददास था। इन्होने

'भक्तमाल' नामक एक ग्रंथ लिखा जो सं० १७७० में समाप्त हुआ था। इसमें दादू-पंथ के प्रधान-प्रधान महन्तों के जीवन-चरित्र वर्णित हैं। भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा और कविता सरल तथा सारगर्भित है। दादूपंथी बहुत से सन्तों का जीवन-इतिहास हमें इस भक्तमाल के द्वारा विदित होता है और इस विचार से यह ग्रंथ बहुत उपयोगी है। एक उदाहरण देखिए—

> द्वैत भाव करि दूर एक अद्वैतहि गायौ।
> जगत भगत पट दरस अवनि कै चाणिक लायौ॥
> अपणों मत मजबूत थप्यौ अरु गुरू पक्ष भारी।
> आन धर्म करि खंड अजा घट में निरवारी॥
> भक्ति ज्ञान हठि सारखौं सर्व सास्त्र पारहि गयौ।
> सकराचारज दूसरौ दादू के सुन्दर भयौ॥

बाजीदजी

ये एक पठान के कुल में पैदा हुए थे। मिश्रबन्धुओं ने इनका जन्म संवत् १७०८ दिया है, जो सन्दिग्ध है। राघवदास कृत भक्तमाल में लिखा है कि एक बार एक हरिणी का शिकार करते समय इनके मन में दया का प्रादुर्भाव हुआ, जिससे हिंसात्मक कार्यों को छोड़कर ये सत्संग में लग गए। इन्होंने दादू पंथ को स्वीकार कर लिया और रात-दिन ईश्वर भजन में व्यतीत करने लगे। इनके रचे ग्रन्थों के नाम ये हैं—

(१) अरिलें (२) गुण कठियारा नामा (३) गुण उत्पत्ति नामा (४) गुण श्री मुख नामा (५) गुण घरिया नामा (६) गुण हरिजन नामा (७) गुण नाव माला (८) गुणगज नामा (९) गुण निरमोही नामा (१०) गुण प्रेम कहानी (११) गुण विरह का अंग (१२) गुण नीसानी (१३)

गुण-छन्द (१४) गुण हित उपदेश ग्रथ (१५) पद (१६) राज कीर्तन।
उदाहरण—

डार छौडि गहि मूल मानि सिख मोर रे।
बिना राम के नाम भलो नहि तोर रे॥
जो हमकू न पत्याय बूझि किहि गाव मे।
परिहाँ वाजीदा जप तप तीरथ वरत सबै एक नाम मे॥

मगलराम

ये जयपुर राज्य की उदयपुर तहसील के जाखल नामक गाँव के पास ढाँणी मे रहते थे। इनका रचना-काल स० १९०० के आसपास है। ये जाति के चारण थे, पर दादूपथ को स्वीकार कर लिया था। कवि होने के सिवा ये वीर और साहसी भी पूरे थे। इन्होंने लगभग १०० ग्रथ बनाए जिनमे 'सुन्दरोदय' इनकी सर्वोच्च रचना है। इसमे नागा जमात का वर्णन है। इनका एक पद्य देखिए—

जै जै जै जग तार, निरजन निज निरकारा।
सदा झिलमिले जोति, पुजि कहुँ बार न पारा॥
नूर तेज भरपूर, सूर सावत हजूरा।
गुण विकार करि छार, लह्यौ निज आतम मूरा॥
सुद्धि सरूप अनूप पद, सद सभा निह्चल मुदा।
मगल जग निस्तार कू, प्रगट रहै पलक न जुदा॥

इसके अतिरिक्त दादूपथियो मे मोहनदास, रामदास, घडसीदास, नारायणदास, प्रयागदास, कान्हडदास, चतरदास, प्रह्लाददास, टीलाजी, कल्याणदास, चैनदास इत्यादि और भी अनेक अच्छे साहित्यकार हुए है।

चरणदासी पंथ

यह पथ चरणदास जी से निकला है और कबीर पथ से बहुत मिलता-जुलता है। इस पथ के अनुयायियो में शब्द मार्ग बहुत प्रचलित है और गुरु चरणों का आश्रय लेना ही सर्वोच्च साधन मानते हैं। चरणदास ने मूर्ति-पूजा का खंडन और निराकारोपासना का समर्थन किया था। पर आजकल उनके अनुयायी मूर्तिपूजा भी करने लग गए हैं। चरणदासी साधु पीले वस्त्र पहिनते हैं, और ललाट पर गोपी चन्दन का पतला तिलक लगाते हैं। ये सिर पर पीले रग की पगड़ी बांधते हैं, जिसके नीचे भी पीले रग की एक नोकदार टोपी होती है।

चरणदास

इनका जन्म मेवात प्रदेश के डहरा नामक ग्राम मे स० १७६० के लगभग हुआ था। कुछ लोग इन्हें ब्राह्मण और कुछ, दूसर बनिया बतलाते हैं। इनके पिता का नाम मुरलीधर और माता का कुंजो था। जब ये सात वर्ष के थे तब इनके पिता घर छोड कर कही चले गए जिससे अपनी माता के साथ ये भी अपने नाना के घर दिल्ली मे जाकर रहने लगे। कहते है कि वही १९ वर्ष की आयु मे शुकदेव मुनि ने इन्हे शब्दमार्ग का उपदेश दिया। बारह वर्ष तक गुरुपदिष्ट मार्ग से साधन-अभ्यास कर बाद मे चरणदास ने लोगो को उपदेश देना प्रारंभ किया। इन्होंने चरणदासी पंथ चलाया और अपने पीछे ५२ शिष्य छोडकर स० १८३८ मे परलोक सिधारे, जिनकी गद्दियाँ आज भी विभिन्न स्थानो मे चल रही हैं। चरणदासजी ने १४ ग्रंथों की रचना की। इनके नाम ये है—

(१) अष्टाग योग (२) नासकेत (३) सन्देह सागर (४) भक्ति सागर (५) हरि प्रकाश टीका (६) अमरलोक खड धाम (७) भक्ति पदारथ (८) शब्द (९) मन विरक्तकरन गुटका (१०) राम माला

(११) ज्ञानस्वरोदय (१२) दान लीला (१३) ब्रह्मज्ञान सागर (१४) कुरुक्षेत्र की लीला।

उदाहरण—

मैं मिरगा गुरु पारधी, शब्द लगायो बान।
चरणदास घायल गिरे, तन मन बीधे प्रान॥
सतगुरु मेरा सूरमा, करै शब्द की चोट।
मारै गोला प्रेम का, ढहै भरम का कोट॥
कड़ुवा वचन न बोलिए, तन सो कष्ट न देय।
अपना सा सब जानि के, बनें तो दुख हरि लेय॥

दयाबाई

ये महात्मा चरणदास की शिष्या थी और उन्ही के गाँव मे पैदा हुई थी। स० १७५० और सं० १७७५ के बीच किसी समय इनका जन्म हुआ था। इन्होंने दयाबोध और विनयमालिका नामक दो ग्रन्थो की रचना की। दयाबोध की रचना स० १८१८ मे हुई थी। इस सबध मे इन्होने स्वय अपने ग्रथ मे लिखा है—

सवत् ठारा सै समैं, पुनि ठारा गये बीति।
चैत सुदी तिथि सातवी, भयो ग्रन्थ सुभ रीति॥

दयाबाई की कविता के विषय है—गुरु महिमा, प्रेम का अग, सूर का अग, सुमिरन का अग इत्यादि। इनकी कविता मे दैन्य और वैराग्य की प्रधानता है और उस पर इनके उच्चादर्श एव स्त्री-सुलभ कोमलता की छाप लगी हुई है। इनके चार दोहे नीचे देते है—

प्रेम पथ है अटपटो, कोई न जानत बीर।
कै मन जानत आपनो, कै लागी जेहि पीर॥

निरपच्छी के पच्छ तुम, निराधार के धार।
मेरे तुम ही नाथ इक, जीवन प्रान अधार॥
नहिं संजम नहिं साधना, नहिं तीरथ व्रत दान।
मात भरोसो रहत है, ज्यों बालक नादान॥
खीस नवै तो तुमहिं कू, तुमहिं सू भाखू दीन।
जो झगरूँ तो तुमहिं सू, तुम चरनन आधीन॥

सहजोबाई

इनका जन्म सं० १८०० के लगभग मेवात प्रदेश के डहरा नामक गाँव में एक दूसर वैश्य के घर मे हुआ था। दयाबाई की तरह ये भी महात्मा चरणदास की शिष्या थीं। इनके पिता का नाम हरिप्रसाद बतलाया जाता है। सहजोबाई ने अपने गुरु चरणदास की बडी महिमा गाई है और उन्हे भगवान से भी ऊँचा माना है। इनकी रचना सरल एव उल्लासपूर्ण है और उसमें प्रेम की प्रधानता है। इनकी कविता का नमूना देखिए—

प्रेम दिवाने जे भये, मन भयो चकनाचूर।
छके रहैं घूमत रहैं, सहजो देख हजूर॥
साहन कू तो भय घना, सहजो निर्भय रंक।
कुजर के पग बेडियाँ, चींटी फिरै निसक॥
अभिमानी नाहर बडो, भरमत फिरत उजारि।
सहजो नन्हीं बाकरी, प्यार करै ससार॥

रामस्नेही पथ

राजस्थान मे राम स्नेहियो के मुख्य केन्द्र तीन हैं शाहपुरा, खैडापा और रैण। शाहपुरे का रामस्नेही पथ रामचरणजी से चला है। इनके अनुयायी निर्गुण परमेश्वर को राम के नाम से मानते हैं और उसी का ध्यान करते हैं।

ये मूर्ति-पूजा मे विश्वास नही रखते। रामस्नेही साधु रामद्वारो मे रहते है और भिक्षा मागकर अपनी उदर-पूर्ति करते है। ये कपडे नही पहनते, सिर्फ लगोट बाँधे रहते है और ऊपर से चादर ओढ लेते हैं। पहले कोई-कोई साधु नगे भी रहते थे, जो परमहस कहलाते थे। ये प्राय तूम्बी, लगोट, चादर, माला और पोथी के सिवा कोई दूसरी वस्तु अपने पास नही रखते और न किसी से रुपया-पैसा लेते है। ये विवाह नही करते। किसी उच्च वर्ण के लडके को अपना चेला मूड लेते है और जो चेला सब से पहले मूडा जाता है उसी का गुरु की गद्दी पर अधिकार होता है। बडे चेले को छोटे चेले नमस्कार करते और गुरुवत् समझते है। ये साधु रामद्वारो मे रहते हैं जहाँ कथा बाँचते तथा भजन गाते हैं। यो तो सभी जातियो के लोग इन्हे पूज्य दृष्टि से देखते हैं, पर अग्रवालो तथा महेश्वरियो की भक्ति इनके प्रति विशेष है। ये रामस्नेही साधु शाहपुरा को अपना गुरुद्वारा समझते है जहाँ प्रति वर्ष फाल्गुन सुदी १ से चैत्र वदी ६ तक मेला भरता है।

खैडापे का रामस्नेही पन्थ हरिरामदास जी से निकला है। हरिरामदास जी का जन्म-स्थान सिहथल (बीकानेर) था और इन्होने स० १८०० मे बीकानेर राज्यान्तर्गत दुलचासर नामक गाँव मे जैमलदास नाम के एक रामानन्दी वैष्णव साधु से दीक्षा ली थी। इनके एक शिष्य रामदासजी हुए। इन्होंने खैडापे में अपनी गद्दी स्थापित की। अतएव खैडापे के रामस्नेही रामदास जी को अपना आदि गुरु, हरिरामदासजी को आदि प्रवर्त्तक और जैमलदास जी को आदि आचार्य मानते हैं। इनके अनुयायियो की सख्या बीकानेर, जोधपुर, गुजरात और मालवे मे अधिक है। रामदासजी स्वय गृहस्थ थे और अपने चेलो को भी उन्होंने गृहस्थ धर्म के पालन का आदेश दिया था। अपने शिष्यो के लिए किसी प्रकार का स्वरूप और बाना भी उन्होंने नियत नही किया। पर बाद मे इनके बेटे दयालदास और पोते पूर्णदास ने रामस्नेहियो के विरक्त, विदेही, परमहस, प्रवृत्ति और घरबारी ये पाँच

भेद कर दिए जो आज तक चले आते है। शाहपुरे के रामस्नेहियो की भाँति ये भी मूर्तिपूजा नहीं करते। रामद्वारो मे अपने गुरु का चित्र अवश्य रखते है। पर यह प्रथा भी हरिरामदासजी से बहुत पीछे से चली है। ये साधु भग, तम्बाखू, गाँजा, मदिरा आदि किसी प्रकार का नशा नहीं करते और भक्षा-भक्ष का पूरा ध्यान रखते हैं। ये रात्रि मे भोजन नही करते और पानी को भी बार-बार छानकर पीते है। खैंडापे का गुरुद्वारा सिंहथल है। इन दोनो स्थानो पर होली के दूसरे दिन भारी मेला लगता है और साधु लोग भजन-कीर्तन तथा 'पचवाणी' की कथा करते है।

रैण (मेडता) के रामस्नेही दरियावजी को अपना आदि गुरु मानते है। इनकी रहन-सहन तथा उपासना पद्धति शाहपुरे तथा खैंडापे के रामस्नेहियो से मिलती है। इनका गुरुद्वारा रैण है जहाँ दरियावजी का एक चित्र रखा हुआ है। वर्ष मे एक भारी मेला यहाँ भी होता है और इनके अनुयायी एक बहुत बडी सख्या मे एकत्र होते है।

रामचरण

ये जयपुर राज्य के सोडा नामक गाँव के रहनेवाले बीजावरगी बनिये थे। इनका जन्म स० १७७६ मे माघ शुक्ला चतुर्दशी शनिवार को हुआ था। इनके गुरु का नाम कृपाराम था जिनसे स० १८०८ मे इन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी। स० १८२६ मे घूमते-घूमते ये भीलवाडे (मेवाड) मे आए और वहाँ से शाहपुरे गए जहाँ के राजाधिराज रणसिंहजी ने इनका अच्छा स्वागत किया और इनकी गद्दी स्थापित करवाई। इनका देहावसान स० १८५५ मे शाहपुरे मे हुआ। इनके २२५ शिष्य थे जिनमे से रामजनजी इनकी गद्दी के उत्तराधिकारी हुए।

रामचरणजी की 'वाणी' प्रकाशित हो चुकी है। इसमे ८००० के लगभग छन्द है। इनकी कविता है तो तथ्यपूर्ण पर उसमे छदोभग बहुत है। उदाहरण—

क्षुधा पिपासा उदर सँग, शीत उष्ण तन साथ।
सो किसके सारे नही, ये कर्त्ता के हाथ॥
ये कर्त्ता के हाथ और मति व्याधि लगावै।
कैक स्वाद शृंगार अजक हैरान करावै॥
रामचरण भज राम कू पाँचो परवल नाथ।
क्षुधा पिपासा उदर सँग शीत उष्ण तन साथ॥

रामहि राम अखडित ध्यावत राम बिना सब लागत खारो।
रामहि राम लियाँ मुख बोलत रामहि ज्ञान रु राम विचारो॥
रामहि राम करै उपदेशहि रामहि जोगरू जिग्य पसारो।
रामचरण्ण इसे कोइ साधु है सो ही सिरोमणी प्राण हमारो॥

हरिरामदास

ये बीकानेर राज्यान्तर्गत सिहथल नामक ग्राम के एक ब्राह्मण कुल मे पैदा हुए थे। इनके पिता का नाम भाग्यचन्द था। ये बडे कुशाग्रबुद्धि तथा मेधावी थे और बहुत थोडी आयु मे वेदान्त, ज्योतिष आदि मे पारगत हो गए थे। इन्होने स० १८०० मे दुलचासर ग्राम, जो सिहथल से सात कोस है, मे जाकर जैमलदास जी से दीक्षा ग्रहण की। इनके योग-चमत्कार की कई कथाएँ प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि इन्होंने स्वरूपसिह नामक एक निर्धन व्यक्ति को धनवान बना दिया था। इनका स्वर्गवास स० १८३५ मे हुआ था। इनके सैकडो शिष्य-प्रशिष्य हुए जिनमे बिहारीदासजी मुख्य थे। यही इनके बाद इनकी गद्दी के अधिकारी हुए। इन्होने बहुत सी फुटकर साखियाँ और पद बनाए तथा छोटे-छोटे ग्रन्थ लिखे जिनमे 'नीसाँणी' इनकी सबसे प्रौढ रचना है। इसमे हठयोग, समाधि, प्राणायाम आदि की प्रक्रियाओ का वर्णन है। इनकी भाषा राजस्थानी और विचार उच्च हैं। उदाहरण देखिए—

रे नर सतगुरु सौदा कीजै।
इन सौदा मे नफा बहुत है एक मना होय लीजै ।।टेर।।
मात पिता सुत भ्रात सनेही चौरासी लख हीजै ।।१।।
जो कोई चाहै रामभक्ति कू गुरु की शरण गहीजै ।।२।।
गुरु बिनु भरम न भाजै भव का कर्म न काल कटीजै ।।३।।
गुरु गोविन्द बिनु मुक्ति न जिव की कहियो वेद सुनीजै ।।४।।
जन हरिराम और सब कूकस राम शब्द सत बीजै ।।५।।

रामदास

इनका जन्म स० १७८३ मे जोधपुर राज्य के बीकोकोर नामक ग्राम मे हुआ था। ये जाति के मेघवाल थे। इनके पिता का नाम शार्दूलजी था। बाल्यावस्था मे इन्होंने थोड़ा सा विद्याभ्यास किया और बाद मे विरक्त होकर किसी योग्य गुरु की खोज मे इधर-उधर घूमने लगे। इन्होंने बारी-बारी से १२ गुरु किये पर किसी से भी सन्तोष न हुआ। अन्त मे एक दिन एक गृहस्थ के मुँह से हरिरामदासजी की वाणी सुनकर ये बहुत प्रभावित हुए और सिंहथल (बीकानेर) मे जाकर उनसे भेंट की। सुयोग्य पात्र समझ कर उक्त स्वामीजी ने इन्हें राम मन्त्र का प्रभाव तथा रामस्नेही पन्थ के नियम बतलाए। इस पर स० १८०९ मे इन्होंने रामस्नेही पथ को अगीकार कर लिया और हरिरामदासजी के पास रह कर राम-नाम का जप करने लगे। स० १८२१ तक ये सिंहथल मे रहे पर बाद मे जोधपुर की ओर चले गए और वहाँ खैडापे मे अपनी गद्दी स्थापित की। यहाँ इनके सैकडो शिष्य हुए, जिन्होंने आगे चलकर रामस्नेही पथ के प्रचारार्थ बहुत काम किया। इनका गोलोकवास स० १८५५ मे ७२ वर्ष की आयु मे खैडापे मे हुआ।

रामदासजी ने गुरु महिमा, भक्तमाल, चेतावनी, जस फारगती आदि ग्रथ तथा अगवद्ध अनुभव वाणी की रचना की जिसके दास, उदास,

सम्भव और खुदवह् ये चार भेद है। इनकी कविता का नमूना देखिए—

निरधन झूरै धन विना, फल विन नागरवेल।
रामा झूरै राम विन, विरही सालै सेल॥
कुजर झूरै वन्न कू, सूवा अम्वा काज।
विरहिन झूरै पीव कू, कवै मिलो महराज॥

दयालदास

ये रामदासजी के पुत्र थे और उनके वाद खेडापे की गद्दी के अधिकारी हुए थे। इनका जन्म स० १८१६ मे और स्वर्गारोहण स० १८८५ मे हुआ था। ये बडे अनुभवी और सच्चरित्र महात्मा थे। इनके शिष्य पूरणदास ने अपनी वनाई हुई 'जन्मलीला' मे इनकी वहुत प्रशसा की है। कविता भी ये वहुत अच्छी करते थे। इनका वनाया हुआ 'करुणासागर' ग्रथ वहुत प्रसिद्ध है। इसके सिवा इनके रचे फुटकर पद भी वहुत से मिले हैं। इनकी कविता देखिए—

रामइया शरण की प्रतिपाल।
अव लगि करी सोई अव कीजै अपने घर की चाल॥
जो सूरज परकासै नाही रात न कज विसाल।
ससि नहिं अमी द्रवै जो माधव तो निपजै केम रसाल॥
विरह कुमोदिनि जीवन सोई सव लालो सिर लाल।
दयाल वाल कै समरथ स्वामी, रामदास किरपाल॥

दरियावजी

ये जोधपुर राज्य के जेतारण नगर के निवासी थे और स० १७३३ मे पैदा हुए थे। कुछ लोगो ने इन्हे जाति का मुसलमान (धुनिया) मान रखा है, जो निराधार है क्योकि न तो दरियावजी ने कही अपने ग्रन्थो मे

इस बात का उल्लेख किया है और न इनके समकालीन शिष्यो में से किसी ने इनका मुसलमान कुलोत्पन्न होना लिखा है। दरियावजी के अनुयायियो मे से आज भी कोई यह नही कहता कि ये मुसलमान थे। अपने आचार्य की जाति का ठीक-ठीक पता बतलाने मे दरियाव पंथी अब असमर्थ है, पर वे मुसलमान नही थे यह कहने मे सभी का मत एक है। हमारे खयाल से दरियावजी को मुसलमान लिखने की गलती सबसे पहले जोधपुर राज्य की सेन्सस रिपोर्ट (सन् १८९० ई०) तैयार करने वालो ने की और उसी को सच मानकर लोगो ने इन्हें मुसलमान लिखना शुरू कर दिया है। इसके सिवा कुछ लोगो ने यह भी लिखा है कि दरियावजी की रुई पीजने की एक हाथली रैंण मे रखी हुई है, जिसके दर्शन करने के लिए साल मे एक बार इनके अनुयायी बहुत बडी सख्या मे वहाँ एकत्र होते है। परन्तु यह भी गलत है। रैंण मे कोई हाथली रखी हुई नही है। दरियावजी का एक चित्र रखा हुआ है जिसके दर्शनार्थ चैत्र सुदी पूर्णिमा को लोग वहाँ इकट्ठे होते है।

दरियावजी के पिता का नाम मानजी और माता का नाम गीगाँबाई था—

पिता मानजी जान गीगाँ महतारी।
त्रिविध मेटण ताप आप लियो अवतारी॥

इनका जन्म-नाम दरियावजी था पर साधु होने के बाद से लोग इन्हे दरियासाजी कहने लग गए जिसका आजकल दरिया साहब हो गया है। दरियावजी के गुरु का नाम पेमदास था जिनसे इन्होंने स० १७६९ मे दीक्षा ली थी। गुरुमत्र ग्रहण करने के कुछ वर्ष पश्चात् दरियावजी जेतारण से रैंण नामक गाँव मे चले गए और वहाँ पर अपनी गद्दी स्थापित की जो अभी तक विद्यमान है। मारवाड के सिवा राजस्थान की दूसरी रियासतो मे भी दरियावजी के रामस्नेहियो की सख्या काफी है। इनका स्वर्गवास सं० १८०५ मे हुआ था।

दरियावजी को हिन्दी, सस्कृत, फारसी आदि भाषाओ का अच्छा ज्ञान था और काव्य-रचना मे भी निपुण थे। कहते हैं कि इन्होंने 'वाणी' नामक एक बहुत बडा ग्रथ लिखा था, जिसमे १०००० के लगभग पद, दोहा आदि थे। पर आजकल तो इनकी बहुत कम कविताएँ मिलती है। राम स्नेहियो मे यही एक ऐसे कवि हुए है जिनकी भाषा सुव्यवस्थित और रचना कवित्वपूर्ण कही जा सकती है। इनकी कविता के नमूने देखिए—

गुरु आए घन गरज करि, सबद किया परकास।
बीज पडा था भूमि मे, भई फूल फल आस॥
जो काया कचन भई, रतनो जडिया चाम।
दरिया कहै किस काम का, जो मुख नाही नाम॥
विरहिन पिउ के कारने, ढूढन वन खँड जाय।
निसि बीती पिउ ना मिला, दरद रहा लिपटाय॥
दरिया बगुला ऊजला, उज्जल ही है हस।
ये सरवर मोती चुगे, वाके मुख मे मस॥
सीखत ज्ञानी ज्ञान गम, करै ब्रह्म की बात।
दरिया बाहर चाँदना, भीतर काली रात॥
कचन कचन ही सदा, काँच काँच सो काँच।
दरिया झूठ सो झूठ है, साँच साँच सो साँच॥
साध पुरुष देखी कहै, सुनी कहै नहिं कोय।
कानो सुनी सो झूठ सब, देखी साँची होय॥

रामस्नेही पथ के कुछ और कवियो के नाम ये हैं जैमलदास (स० १७६०), सतदास (स० १६८६-स० १८०६), नारायणदास (स० १८०६-५३), परशराम (स० १८२४-९६), हरिदेवदास (स० १८३५-६४), पूरणदास (स० १८८५), अर्जुनदास (स० १८९२) और सेवगराम (स० १९००)।

बालकराम

इनका विशेष वृत्त नही मिलता। अपनी रची भक्तमाल की टीका मे इन्होंने अपना थोडा सा व्यक्तिगत परिचय दिया है जिससे मालूम होता है कि ये स्वामी रामानन्द की शिष्य परपरा मे मीठाराम के चेले थे—

नारायण अगधरा इदराय यतिराज
ताकी पद्धति मे रामानुज प्रतिकास है।
तास पद्धति मे रामानन्द ताको पौत्र शिष्य
श्री पैंहारी की प्रनाली मे भयो सतदास है॥
ता ही को बालकदास तास प्रेम जा को खेम
खेम को प्रह्लाददास मिष्टराम तास है।
मिष्टराम जू को शिष्य सो बालकराम रची
टीका भक्तदाम गुण चित्रनी प्रकास है॥

इनका रचनाकाल स० १८००–२० है। ये महात्मा बहुत उत्तम कोटि के विद्वान और कवि थे। इन्होंने नाभाजी के भक्तमाल की टीका बनाई जिसका नाम 'भक्तदाम गुण चित्रनी टीका' है। यह सौ से अधिक पृष्ठो का एक भारी ग्रन्थ है। टीका यह कहने मात्र को है। वास्तव मे यह एक स्वतत्र रचना है। इसमे दोहा, छप्पय आदि कई प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया गया है पर अधिकता चौपाइयाँ छन्द की है। हिंदी के भक्त कवियो के विषय में नाभादास ने अपने भक्तमाल मे जिन-जिन बातो पर प्रकाश डाला है उनके अलावा भी बहुत सी बातें इसमे नई बतलाई गई हैं। इसलिए इसका ऐतिहासिक मूल्य भी यथेष्ट है। इसकी भाषा मे ऐसा प्रवाह और वर्णन मे ऐसी धारावाहिकता है कि ग्रन्थ को हाथ मे लेने पर पूरा पढे बिना छोडने को जी नही चाहता। यदि ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय तो इससे हिन्दी की गौरव-वृद्धि निश्चित है। साथ ही सत-महात्माओ के अनेक

तमाच्छन्न वृत्तों पर भी प्रकाश पडने की पूरी-पूरी आशा है। रचना का नमूना लीजिए—

अब कबीर की गाथा सुनिये आदि हु तें जो होई।
बड आस्ट मता जिम हिनकर पखपात नहिं कोई॥
रामानन्दहिं सेवत एका बनिक तिया चित लाई।
नित दरसन स्वामी पैं आवै सीवा ल्यावै बाई॥
पैं ताकै मन पुत्र कामना प्रगट न मुख सूं गावै॥
स्वामी अंतरजामी जानी सो ताकै मन भावै॥
तब मन हीं मैं कीन्ह विचारा दैहों या कूं पूता।
पैं हरि पास हि आज्ञा लैऊँ यहु नारी अवधूता॥

निरंजनी पंथ

यह पंथ हरिदास जी से चला है। इनके अनुयायी निरंजन निराकार की आराधना करते हैं। इनमें भी कुछ तो घरबारी और कुछ निहंग हैं। घरबारी गृहस्थियों के-से कपडे पहिनते और रामानन्दी तिलक लगाते हैं। निहंग खाकी रंग की गुदडी गले में डाले रहते हैं और मांगकर खाते हैं। कोई-कोई निरंजनी साधु गले में सेली भी बांधते हैं। पहले ये लोग मूर्तिपूजा नहीं करते थे, पर अब करने लग गए हैं। मारवाड राज्य में डीडवाने के पास गाढा नामक एक स्थान है, जहाँ हर साल फाल्गुन सुदी १ से १२ तक मेला भरता है। इस अवसर पर इस पंथ के बहुत से साधु वहाँ इकट्ठे होते हैं जिन्हें हरिदास जी की गुदडी के दर्शन कराये जाते हैं। गाढा निरंजनियों का प्रधान केन्द्र है। यहाँ इनके महंत और साधु रहते हैं। हरिदासजी के ५२ शिष्य थे जिनमें हरिदासोत, पूरणदासोत, अमरदासोत, नारायणदासोत आदि कई थांभे स्थापित हुए। इनमें से बहुत से अभी तक विद्यमान हैं।

हरिदास

इनके जन्म, वश, माता, पिता आदि का विवरण अवकार मे है। इनकी जाति के सबध मे भी मत की विभिन्नता है। कोई इन्हे बीदा राठौड और कोई जाट बतलाते है। परन्तु यह निश्चय है कि ये एक व्यक्तित्व सपन्न महात्मा और सहृदय कवि थे। इनके नीचे लिखे ग्रथो का पता है—

(१) भक्त विरदावली (२) भरथरी सवाद (३) साखी (४) पद (५) नाम माला ग्रथ (६) नाम निरूपण ग्रथ (७) ब्याहलो (८) जोग ग्रथ और (९) टोडरमल जोग ग्रन्थ। इनका देहान्त स० १७०२ के आसपास हुवा था। इनकी कविता का नमूना देखिए—

भूख दूख सकट सहै, सहै बिडाणा भार।
हरीदास मोनी बळद, का सूं करै पुकार॥
घर आई निरभै भई, डाव पड्याँ यूं होय।
हरीदास ता सार कूं, पासा लगै न कोय॥
लोहा जल सूं घोडए, तब लग काटी खाय।
हरीदास पारस मिल्यां, मूंघे मोल विकाय।

छठवाँ प्रकरण

आधुनिक काल (पद्य)

राजस्थानी साहित्य का आधुनिक काल स्थूल रूप से स० १९०० से प्रारभ होता है। इस काल को मोटे ढग से हम दो भागो मे विभक्त कर सकते हैं, (१) परिवर्तन और (२) उत्तर परिवर्तन। प्रारभ के २०—३० वर्षों का समय परिवर्तन और उसके बाद से आज तक का उत्तर परिवर्तन कहा जा सकता है।

परिवर्तन काल में सबसे बडे कवि बूदी के सूरजमल हुए जिनको चारण लोग अपनी जाति का सर्वश्रेष्ठ कवि मानते हैं। नि सदेह सूरजमल एक प्रतिभावान व्यक्ति थे। अपने युग के कवियो पर उनका इतना ही गहरा प्रभाव था जितना बगाल के कवियो पर स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ठाकुर का उनके समय मे रहा। रवीन्द्रनाथ की तरह सूरजमल की प्रखर प्रतिभा ने भी राजस्थान के तत्कालीन कवियो की मौलिकता नष्ट कर दी और उन्हें न पनपने दिया। छोटे-मोटे सैकडो कवियो की मौलिक प्रतिभा इनकी काव्य-धारा के प्रचड प्रवाह मे बह गई। सूरजमल की कविता इतनी भावपूर्ण, इतनी सुन्दर और इतनी उच्च कोटि की होती थी कि कुछ कवियो ने तो इन्ही के भावो को ला-लाकर अपनी रचनाओ मे उतारना शुरू किया और कुछ स्वतन्त्र कविता करना छोड इनकी कविताओ को सुना-सुनाकर कीर्ति-लाभ लेने लगे। छोटे-छोटे कई सूरजमल उस समय पैदा हो गए थे।

कवि-गोष्ठियो मे, राज-दरबारो मे, साहित्य-सभाओ मे जहाँ देखो वहाँ सूरजमल का नाम सुनाई पडता था।

उत्तर परिवर्तन काल मे सूरजमल का प्रभाव कुछ कम हुआ और यहाँ के कवियो ने अपना रग-ढग बदला। हिन्दी ससार मे यह समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का था। भारतेन्दु जितने देशाभिमानी थे उससे कही अधिक ब्रजभाषा-प्रेमी थे। इनके प्रभाव से राजस्थान मे ब्रजभाषा का प्रचार बहुत बढ गया। ब्रजभाषा मे कविता यहाँ के कवि बहुत पहले से करते आ रहे थे, पर तब राजस्थानी और ब्रजभाषा दोनो साथ-साथ चलती थी। कुछ कवि ब्रजभाषा मे और कुछ राजस्थानी मे रचना करते थे और कुछ को इन दोनो मे लिखने का अभ्यास था। परन्तु इस समय से राजस्थान के कवि अपनी मातृभाषा को एक तरह से भूल ही गए। यहाँ तक कि चारण जाति के कवि भी, जो राजस्थानी मे कविता करना अपना एकाधिकार समझते थे, इसे छोड बैठे। परन्तु भारतेन्दु का यह प्रभाव केवल भाषा तक ही सीमित रहा, विषय-वस्तु पर उनका प्रभाव कुछ भी न पडा। उनकी राष्ट्रीय भावनाओ को रियासती वातावरण मे पले हुए यहाँ के कवि ग्रहण न कर सके। अधिकाश प्रेम, विरह, शृगार, वसत, होरी, भक्ति, वैराग्य, छद, अलकार, मदिरा-तम्बाखू की हानियाँ इत्यादि कुछ निश्चित विषयो पर ही अपनी शक्ति खर्च करते रहे। इसलिए कविता बिलकुल निष्प्राण हो गई। उसमे न भाषा की नवीनता रही, न भावो की।

कालान्तर मे जब ब्रजभाषा का जोर कुछ कम हुआ तब खडी बोली ने जोर पकडा। साथ ही राजस्थानी का भी पुनरुत्थान होना शुरू हुआ। फलत राजस्थान के कवि इस समय ब्रजभाषा, खडी बोली और राजस्थानी तीनो मे रचना कर रहे हैं। इनमे से कुछ विशिष्ट कवियो का परिचय यहाँ दिया जाता है।

सूरजमल

राजस्थान के चारण कवियो मे कवि राजा सूरजमल की बहुत प्रसिद्धि है। ये चडीदान के बेटे थे। इनका जन्म स० १८७२ मे बूदी मे हुआ था। इनके छह स्त्रियाँ थी पर किमी से कोई पुत्र पैदा नही हुआ, इसलिए इन्होने मुरारिदान को गोद लिया था। 'वशभास्कर' मे सूरजमल ने अपनी स्त्रियो के नाम बताए है—

दोला सुरजा विजयिका, जसा रु पुष्पा नाम।
पुनि गोविंदा पट प्रिया, अर्कमल्ल कवि वाम ॥

सूरजमल बहुत स्पष्टभाषी एव स्वतत्र प्रकृति के पुरुष थे। स्वभाव इनका इतना रूखा था कि लोग इनसे मिलना भी पसन्द नही करते थे। शराब भी ये बहुत पीते थे। परन्तु नशे मे इतने गाफिल नही हो जाते थे कि शरीर की सुध-बुध ही न रहे। कहते है कि नशे की हालत मे इनकी कल्पना-शक्ति और भी तीव्र हो उठती थी और दो आदमी जो इनके दाएँ बाएँ बैठे रहते बडी कठिनता मे उस समय की कविताओ को लिख पाते थे। इनकी मृत्यु स० १९२५ मे हुई थी ।

ये स्वभाव-सिद्ध कवि एव षट्भाषा-ज्ञानी थे और न्याय, व्याकरण आदि अनेक विषयों मे पारगत थे—

देखो चडीदान रा, सुत रो सुजस सुजाण।
दोहा सुर माहे दुरस, बदियो अवै वखाण ॥
चउदह विद्या चातुरी, चौसठ कळा चवात।
मिमासा माम्मट वळे, पातजल हि पढात ॥

न्याय उदधि खेवट निरख, वैयाकरण विसेस।
पालकाप्य नाकुल प्रभण, साकुन सास्त्र असेस[1]।

इन्होने बहुत सी फुटकर कविताएँ लिखी और चार ग्रन्थ बनाए जिनके नाम ये हैं —

(१) वंशभास्कर
(२) वीर-सतसई (अपूर्ण)
(३) बलवंत-विलास
(४) छंदो-मयूख

इनमे वंशभास्कर इनका सबसे बडा और प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह बूंदी राज्य का पद्यात्मक इतिहास है और दो बार प्रकाशित भी हो चुका है। भाषा इसकी पिंगल है। अपने पांडित्य तथा शब्द-भडार-प्रदर्शन के हेतु सूरजमल ने इनमे कई नये शब्द गढकर रख दिए है और अनेक स्थानो पर संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओ के अप्रचलित एव कर्णकटु शब्दो का प्रयोग किया है जिससे भाषा मे कृत्रिमता और दुरूहता आ गई है। नमूना लीजिए—

कटिल्ल कर्णिकावली भटा हृदावली भये।
अरिष्ठ के अपष्ठ वृन्द लोम कन्द उन्नये॥
वनै अरी पलास कान अन्धु नाग वल्लरी।
कलेज पील पर्णिका कसेरु तोरइ क्करी॥

परन्तु वंशभास्कर का ऐतिहासिक मूल्य यथेष्ट है। इसमे वर्णित घटनाएँ और विवरण बहुत कुछ सत्यता और वास्तविकता लिए हुए हैं।

---

१ मुरारिदान, डिंगल कोश, पृष्ठ १९

(युद्ध मे टक्कर लगने से भूमि मे लचक लगकर भूमि को धारण करने वाले वाराह के झुकने का तोल कढा। पाखरोवाले घोडो के भार से चुभी खुरतालो से शेपनाग के कपाल मे साल वढा। पर्वत हिलकर उनके शिखर डुलने लगे और तरवारो से चमकी हुई आग गिरी। उस हल्ले के वढाव मे खाल के ऊपर तवलें (कुठार विशेप) वजकर भूमि हमल्लो से घूमने लगी ॥३॥

मचि घोरन दोर दुओर समीरन जोर उमीरन घोर जम्यो ॥
अममल्ल उछाहन हड्ड हठी, कछवाहन गाहन चाह क्रम्यो ॥
सुव जैंत इतैं भट देव सही करि स्वामि मही हित सग सज्यो ॥
दुहु ओर कुलाहक तोप दगी लगि भद्द वलाहक नद्द लज्यो ॥४॥

(घोडो की दौड से दोनो ओर का पवन चलकर अमीरो (सरदारो) का भयकर वल जमा। उस समय हठी हाडा अमर्रासिह कछवाहो को मारने की इच्छा से चला। इधर जैंतसिंह का पुत्र देवसिंह निश्चय ही अपने स्वामी (वुधसिंह) की भूमि के अर्थ सज्जित हुआ। दोनो ओर कोलाहल करनेवाली तोपे चली जिनमे भादो के मेघ की गर्जना लज्जित हुई ॥४॥

उतनें कछवाहन उग्र उछाहन वेग सु वाहन वग्ग लई ॥
वनि वुदिय वालम जग सु जाल्मन सग हि सालम दौर दई ॥
परि गिद्दिठ कृपानन चड चुहानन गिद्धि उडानन गूद गहै ॥
गन धीर गुमानन पीर प्रमानन वीर कमानन तीर वहै ॥५॥

(उधर से वडे उत्साहवाले कछवाहो ने शीघ्र घोडो की वागें उठाईं और उनके साथ ही युद्ध मे जुल्म करनेवाला सालमसिह वूदी का पति वनकर दौडा। भयकर चौहाणो के खड्गो के निरन्तर प्रहारो से उडते हुए गीधो ने गूदा ग्रहण किया। धीर पुरुपो के समूह के गुमान की पीडा का प्रमाण करने के लिए वीरो की कमानो मे तीर चलते हैं ॥५॥

बढि वुत्थिन वुत्थि छई वसुधा गलि लुत्थिन लुत्थि परै प्रजरै ।।
घट सेल घमाकन रग रमाकन हड्ड सु हाकन होस हरै ।।
लखि खग्ग उदग्गन मग्ग लगी जुरि अच्छरि जग्ग प्रजापति ज्यो ।।
गल वाँह करै करि वीर वरै गमने गन गैवर की गति ज्यो ।।६।।

(मास के टुकडे बढकर भूमि भर गई और लोथ पर लोथ गिरकर जलने लगी। युद्ध मे क्रीडा करनेवाले वीरो के शरीरो पर भालो के धमाके होकर हाडा क्षत्रियो की हाक उनकी चाहना मिटाती है। उदग्र तलवारो को देखकर अप्सराएँ जिस प्रकार दक्ष प्रजापति के यज्ञ मे गईं उसी प्रकार इस युद्ध के मार्ग मे लगी। वे गलवाँही करके वीरो को वरती हैं और उनका समूह हाथियो की चाल से चलता है ।।६।।)

दोहे

घोडा घर ढालाँ पटळ, भालाँ थभ वणाय।
जो ठाकर भोगै जमी, और किसू अपणाय ।।

(जो ठाकुर घोडो को अपना घर, ढालो को छत और भालो को खभे बनाता है, वह जमीन का उपभोग करता है। उसे दूसरा कौन अपना सकता है?)

भाभी देवर नींद वस, वोली जै न उताळ।
चवताँ घावाँ चूँकसी, जै सुणसी त्रवाळ ।।

(हे भाभी! तुम्हारा देवर सोया हुआ है। जोर से मत वोलो। यदि वह नगाडो की आवाज सुन लेगा तो चूते हुए घावो से भी चौंक पडेगा।)

लीला मौ पहली पडै, कीध उतावळ काय।
वाल्हा कवळा पाळियौ, पडतौ मूझ पुगाय ।।

(हे अश्व! मेरे गिरने के पहले ही तूने जल्दी क्यो की? मैंने तुझे प्रेम भरे ग्राम खिलाकर पाला था। मुझे पहुँचा कर तो मरता!)

इनका दूसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ वीर-सतसई है जो अपूर्ण है। यह डिंगल भाषा मे है जब गोठडा के महाराज भीमसिंह बूंदी से युद्ध करने पर उतारू हो गए और बहुत समझाने-बुझाने पर भी न माने तो सूरजमल ने उनसे कहा कि खूब लडना, भागना मत। यदि बहादुर की तरह लडते हुए काम आए तो तुम्हारा नाम अमर कर दूंगा। फिर वीर-सतसई बनाना प्रारम्भ किया कोई ३०० दोहे बना पाए थे कि भीमसिंह युद्ध-स्थली को छोड भागे। इस पर सूरजमल ने वीर-सतसई बनाना छोड दिया। कवि के नाते सूरजमल की कीर्ति को अक्षुण्ण रखनेवाली यह एक अपूर्व रचना है। वशभास्कर से सूरजमल के ऐतिहासिक ज्ञान, उनके पाडित्य और उनकी अद्भुत वर्णन-शक्ति का पता लगता है। परन्तु उनकी असाधारण काव्य-शक्ति के अमर स्मारक वीर-सतसई के दोहे है। इन दोहो मे किसी व्यक्ति विशेष का वर्णन नही है। वीरभाव की उपासना और उसकी पुष्टि इनका मुख्य मतव्य है। इनमे सूरजमल का हृदय बोलता-सा प्रतीत होता है। इनकी भाषा भी सहज और प्राणवान है। दोहो का राजस्थान मे बहुत प्रचार है। विशेषकर चारण कवियो पर इनका बहुत गहरा प्रभाव देखने मे आता है।

इनके तीसरे ग्रन्थ 'बलवत-विलास' मे रतलाम के महाराजा बलवत सिंह का चरित्र-वर्णन है और चौथा 'छदोमयूख' छद-शास्त्र की एक बहुत सामान्य कोटि की रचना है।

सूरजमल वीररस के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। डिंगल भाषा के वीर रस के कवियो मे इनकी टक्कर का दूसरा कवि कोई नही हुआ। इनकी कविता की लोकप्रियता का कारण इनकी अनुभूति की सत्यता और भाव की गभीरता है। युद्ध का, रणभूमि का, सतियो का, वीरोन्माद का, वीर-वीरागनाओ के हृदयस्थ भावो का इन्होने ऐसा सजीव, मार्मिक और नैसर्गिक वर्णन किया है कि पढकर दिल दहल जाता है। वस्तुत सूरजमल उस कोटि के कवियो मे

मे है जो शताब्दियो मे पैदा होते है। इनकी वीर रस की कविता के कुछ नमूने हम यहाँ उद्धृत करते है —

दुव सेन उदग्गन खग्ग समग्गन अग्ग तुरग्गन वग्ग लई॥
मचि रंग उतंगन दग्ग मतंगन सज्जि रनंगन जग्ग अई॥
लगि कप लजाकन भीरु भजाकन वाक कजाकन हाक वढी॥
जिम मेह ससबर यो लगि अवर चड अडवर खेह चढी॥१॥

(उदग्र खड्ग लेकर दोनो सेनाओ के सब लोगो ने घोडो की वागें उठाईं। उस युद्ध मे युद्ध जीतने वाले सजे हुए ऊँचे हाथियो का युद्ध हुआ। लज्जित होनेवाले और भागनेवाले कायरो को कँपकँपी लग गई। युद्ध करनेवाले वीरो के वचनो की हाक वढी और सजलमेघ के समान भयकर आडवर से आकाश मे धूल चढी॥१॥

फहरक्कि दिसान दिसान वडे वहरक्कि निसान उडे विथरे॥
रसना अहिनायक की निकसे कि पराझल होरिय की प्रसरे॥
गजघट ठनंकिय भेरि भनंकिय रंग रनंकिय कोच करी॥
पखरान झनंकिय वान सनंकिय चाप तनंकिय ताप परी॥२॥

(वडी और छोटी ध्वजाएँ फरककर दिशा-दिशा मे उडकर फैल गईं मानो शेष नाग की जिह्वा निकली है अथवा होली की ज्वाला फैलती है। हाथियो की घटा, रणभेरी और कवचो की कडियाँ वजी। घोडो की पाखरो की झकार, वाणो की झकार और धनुषो के खिंचने से भय हुआ॥२॥

धमचक्क रचक्कन लग्गि लचक्कन कोल मचक्कन तोल वढ्यो॥
पखरालन भार खुभी खुरतालन व्याल कपालन साल वढ्यो॥
डगमग्गि विलोच्चय शृग डुले झगमग्गि कृपानन अग्गि झरी॥
वजि खल्ल तवल्लन हल्ल उझल्लन भुम्मि हमल्लन घुम्मि भरी॥३॥

(युद्ध मे टक्कर लगने से भूमि मे लचक लगकर भूमि को धारण करने वाले वाराह के झुकने का तोल कढा। पाखरोवाले घोडो के भार से चुभी खुरतालो से शेषनाग के कपाल मे साल वढा। पर्वत हिलकर उनके शिखर डुलने लगे और तरवारो से चमकी हुई आग गिरी। उस हल्ले के वढाव मे खाल के ऊपर तवलें (कुठार विशेष) वजकर भूमि हमल्लो से घूमने लगी ॥३॥

मचि घोरन दोर दुओर समीरन जोर उमीरन घोर जम्यो ॥
अभमल्ल उछाहन हड्ड हठी कछवाहन गाहन चाह क्रम्यो ॥
सुव जैत इतै भट देव सही करि-स्वामि मही हित सग सज्यो ॥
दुहु ओर कुलाहक तोप दगी लगि भद्द वलाहक नद्द लज्यो ॥४॥

(घोडो की दौड से दोनो ओर का पवन चलकर अमीरो (सरदारो) का भयकर वल जमा। उस समय हठी हाडा अभयसिंह कछवाहो को मारने की इच्छा से चला। इधर जैतसिंह का पुत्र देवसिंह निश्चय ही अपने स्वामी (बुधसिंह) की भूमि के अर्थ सज्जित हुआ। दोनो ओर कोलाहल करनेवाली तोपें चली जिनसे भादो के मेघ की गर्जना लज्जित हुई ॥४॥

उततै कछवाहन उग्र उछाहन वेग सु वाहन वग्ग लई ॥
वनि वुदिय वालम जग सु जालन सग हि सालम दौर दई ॥
परि रिट्ठि कृपानन चड चुहानन गिद्धि उडानन गूद गहै ॥
गन धीर गुमानन पीर प्रमानन वीर कमानन तीर वहै ॥५॥

(उधर से वडे उत्साहवाले कछवाहो ने शीघ्र घोडो की वागें उठाई और उनके साथ ही युद्ध मे जुल्म करनेवाला सालमसिंह वूदी का पति वनकर दौडा। भयंकर चौहाणो के खड्गो के निरन्तर प्रहारो से उडते हुए गीधो ने गूदा ग्रहण किया। धीर पुरुषो के समूह के गुमान की पीडा का प्रमाण करने के लिए वीरो की कमानो से तीर चलते हैं ॥५॥

वढि वुत्थिन वुत्थि छई वमुवा गलि लुत्थिन लुत्थि परै प्रजरै ॥
घट सेल घमाकन रग रमाकन हड्ड सु हाकन होस हरै ॥
लखि खग्ग उदग्गन मग्ग लगी जुरि अच्छरि जग्ग प्रजापति ज्यो ॥
गल बाँह करै करि वीर वरै गमने गन गैवर की गति ज्यो ॥६॥

(मास के टुकडे बढकर भूमि भर गई और लोथ पर लोथ गिरकर जलने लगी। युद्ध मे क्रीडा करनेवाले वीरो के शरीरो पर भालो के धमाके होकर हाडा क्षत्रियो की हाक उनकी चाहना मिटाती है। उदग्र तलवारो को देखकर अप्सराएँ जिस प्रकार दक्ष प्रजापति के यज्ञ मे गई उसी प्रकार इस युद्ध के मार्ग मे लगी। वे गलबाँही करके वीरो को वरती हैं और उनका समूह हाथियो की चाल से चलता है॥६॥)

दोहे

घोडा घर ढालाँ पटळ, भालाँ थम वणाय।
जो ठाकर भोगै जमी, और किसू अपणाय ॥

(जो ठाकुर घोडो को अपना घर, ढालो को छत और भालो को खभे बनाता है, वह जमीन का उपभोग करता है। उसे दूसरा कौन अपना सकता है ?)

भाभी देवर नीद वस, बोली जै न उताळ।
चवतां घावां चूंकसी, जै सुणसी त्रबाळ ॥

(हे भाभी ! तुम्हारा देवर सोया हुआ है। जोर से मत बोलो। यदि वह नगाडो की आवाज सुन लेगा तो चूते हुए घावो से भी चौक पडेगा।)

लीला मौ पहली पडै, कीध उतावळ काय।
वाल्हा कवळा पाळियौ, पडतौ मूझ पुगाय ॥

(हे अश्व ! मेरे गिरने के पहले ही तूने जल्दी क्यो की ? मैंने तुझे प्रेम भरे ग्रास खिलाकर पाला था। मुझे पहुँचा कर तो मरता !)

भाभी हूँ डोढी खडी, लीधा खेटक रूक।
थे मनुहारौ पावणा मेडी झाल वँदूक ॥

(हे भाभी! मैं ढाल-तलवार लेकर ड्योढी पर खडी हूँ। तुम वँदूक लेकर मेडी पर जाओ और मेहमानो (शत्रुओं) का स्वागत करो।)

सुत धारा रज-रज थियौ, वहू वळेवा जाय।
लखिया डूंगर लाज रा, सासू उर न समाय॥

(वेटा तलवारों से कटकर रज-रज हो गया और वहू सती होने को जा रही है। लज्जारूपी पहाड सासू के हृदय मे नही समाता है। अर्थात् उसे इस वात पर लज्जा हो रही है कि उसका वेटा और वहू तो वीर गति को प्राप्त हो गये और वह अभी तक वैठी है।)

होवै घर घर हाय रे, रोवै वरवर नार।
भाभी देवर नू कहौ, अव तो रोस उतार॥

(हे भाभी! घर-घर मे हायतोवा मची हुई है, स्त्रियाँ धाड मारकर रो रही हैं। देवर से कह दो कि वह अपने क्रोध को अव शान्त कर दे।)

ठकुराणी सतियाँ भणं, चून समप्पौ सेर।
चूडौ जिण दिन चाहती, उण दिन केथ अवेर॥

(सती नारियाँ कहती हैं कि हे ठकुरानी! सेर भर आटा दे दो। जिस दिन सुहाग की (युद्ध मे लडने के लिए उनके पतियो की) आवश्यकता होगी देरी नही लगेगी।)

पहर चउत्थै पोढियौ, गिणतौ फौज गरीव।
दोय घडी जक जीभ नू, वैरी आण नकीव॥

(हे ढोली! मेरा पति फौज को काटते-काटते अव इस चौथे पहर मे थोडा सा आराम ले रहा है। हे वैरी! दो घडी तो अपनी जीभ को रोक।)

दिन दिन भोळी दीसतो, सदा गरीबी सूत।
काकी कुजर काटता, जाणवियौ जेठूत॥

(हे काकी ! जेठ दिन-दिन भोले और हमेशा गरीब दिखाई देते थे। आज जब हाथियो को काट रहे थे तब उनके असली रूप को पहचाना।)

ओर मुवा सुण ओहडै, बरखाँ पाँच विचाळ।
घर मे मायड घातियौ, वटकै पूचा वाळ॥

(दूसरो की मृत्यु की सूचना पाकर माँ ने अपने एक पचवर्षीय वालक को युद्ध मे जाने से रोक दिया। इस पर उसने अपने दाँतो से पहुँचो को काट-काट कर घर ही पर आत्म-हत्या कर ली।)

स्वरूपदास

ये देथा चारण मिश्रीदान के पुत्र थे। इनके जन्म-समय का ठीक ठीक पता नही है। मृत्यु-सवत् १९२० है। इनके पूर्वज ऊमरकोट के रहनेवाले थे जहाँ से आकर इनके पिता अजमेर इलाके के वडली गाँव मे वस गये थे। इनका बचपन का नाम शंकरदान था। इनको शिक्षा इनके चचा परमानन्द से मिली थी। परन्तु शिक्षा ग्रहण करते ही ये दादूपथी साधु वन गये। इससे इनके चचा को बडी निराशा हुई क्योकि अच्छा विद्वान बनाकर वे इनके जरिये कही से अच्छी जीविका प्राप्त करना चाहते थे। इस बात पर दुख प्रकट करते हुए उन्होने एक पत्र मे लिखा—

कीधी थो कुण कौल, कह पाछौ कासू कियो।
बेटा थारो बोल, सालै निसदिन सकरा॥

ये सस्कृत, पिंगल, डिंगल आदि भापाओ के अच्छे विद्वान और हिंदू धर्म-सिद्धान्तो के ज्ञाता थे। रतलाम, सीतामऊ आदि के राजदरबारो मे इनका बडा मान-सम्मान था। सीतामऊ के तत्कालीन नरेश राजसिंह के पुत्र

महाराज कुमार रत्नसिंह की तो इनके प्रति इतनी गहरी भक्ति थी कि उन्होंने अपने ग्रथ 'नटनागर-विनोद' के प्रारभ मे ईश्वर की वदना न कर पहले इन्ही की वदना की है।

इन्होंने हृदयनाजन, उक्तिचद्रिका, वृत्तिबोध इत्यादि छै ग्रथ बनाए जिनमे पाडव-यशेन्दु-चद्रिका इनका सर्वश्रेष्ठ ग्रथ माना जाता है। इसमे महाभारत की कथा का साराश है और सोलह अध्यायो मे समाप्त हुआ है। ग्रथारभ मे रस, अलकार, छद आदि काव्यागो पर भी सक्षेप मे प्रकाश डाला गया है। भाषा पिंगल है। राजस्थान मे इस ग्रथ का पहले बहुत प्रचार था, पर अब उतना नही है। इसकी कविता बहुत सरल एव परिमार्जित है और हृदयस्पर्शी भाव-सौष्ठव तथा विषयगत लालित्य का इसमे अच्छा सयोग हुआ है। उदाहरण—

भीम को दियौ ही विष ता दिन बयौ हौ बीज
लाखा-गृह भए ताको अकुर लखायो है।
द्यूत-क्रीडा आदि विस्तार पाइ बडो भयौ
द्रौपदी-हरन भए मजरि सौं छायौ है॥
मत्स्य गाय घेरी जब पुष्प-फल-भार भर्यौ
तैनैं ही कुमन्त्र-जल सीचि के बढायौ है।
विदुर के वचन-कुठार तै न कट्यौ वृच्छ
वाकौ फल पाको भूप! तेरी भेट आयौ है॥१॥

काली को सो चक्र कै कराली को सो फूनकार
लोयन कपाली को सो भय कैसो है उदोति।
आयुध सुरेस को सो मानहु प्रलै को भानु
कोप को कृसानु किधौं सोचहू को मानो मोति॥
सुयोधन दुसासन दुर्मुख दुहृदगन
दाहिबो प्रमानि दीप्ति दूनौ हूनै दूनी होति।

जैत-जाल-जाल है कि जिह्वा जमराज की सी
जंग रंगदार कै भीम की गदा की जोति॥२॥

नटनागर

ये सीतामऊ-नरेश राजसिंह के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १८६५ में हुआ था। बड़े उदार प्रकृति के और चित्र-कला, काव्य-कला एवं संगीत-कला के प्रेमी थे। कवि कोविदों का इनके यहाँ तांता लगा रहता था। स्वयं भी अच्छी कविता करते थे और कविता में अपना नाम 'नट-नागर' लिखते थे। इनकी कविताओं के एक संग्रह, नट-नागर-विनोद के तीन संस्करण निकल चुके हैं। अन्तिम संस्करण का संपादन प० कृष्णविहारी मिश्र द्वारा हुआ है। यह सबसे अच्छा है। नटनागर का देहान्त सं० १९२० में अपने पिता के जीवन-काल ही में हुआ। उस समय इनकी अवस्था ५५ वर्ष की थी।

ये डिंगल और पिंगल दोनों में कविता करते थे। नट-नागर-विनोद में इनकी दोनों भाषाओं की कविताएँ संगृहीत हैं। परन्तु डिंगल की अपेक्षा इन्होंने पिंगल में अधिक लिखा है। इनकी रचना में भक्ति-शृंगार का प्राधान्य है। कवि के भावुक हृदय का भाव उसमें उज्ज्वल रूप से प्रस्फुटित हो उठा है। भाषा भी सरस और स्वाभाविक है। उदाहरण—

पहले तो प्रीति के पयोधि मे पगाय दीन्ही,
अब तो चुराये नैन हाय यो दहा करौ।
ता पै जो सुनावत हौ एते मुख ऐसी बात,
सुन जो चाहो तो नेक दुख हू सहा करौ॥
या ब्रज बुराई देन देर न लगेगी देखो,
नीति यौ सुनाओ नेह गैळ की गहा करौ।
हमको न भाई नटनागर जगाई आप,
प्यारे जो कहाये तो न्यारे न रहा करौ॥

जीवनलाल

ये बूंदी-निवासी नागर ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १८७० मे हुआ था। इनके पिता का नाम तुलाराम था। जीवनलाल बूंदी के महाराव राजा रामसिंह के प्रीति-पात्र थे। कई वर्षों तक बूंदी के प्रधान मंत्री रहे और अपनी कार्य-कुशलता तथा ईमानदारी से राज्य को बहुत लाभ पहुँचाया। सं० १९१४ के गदर मे इन्होने, बूंदी राज्य का बहुत ही चतुराई से प्रबंध किया जिससे प्रसन्न होकर उक्त महाराज राजा ने इन्हें ताजीम, कटार, हाथी आदि प्रदान कर गौरवान्वित किया। इनका देहान्त सं० १९२६ मे हुआ।

ये संस्कृत, हिंदी तथा फारसी के प्रौढ विद्वान थे। सोलह वर्ष की अवस्था मे इन्होंने बारह हजार श्लोको का 'कृष्ण-खंड' नामक एक ग्रंथ बनाया था। इसके बाद इन्होंने संस्कृत-हिंदी के सात ग्रंथ और भी रचे थे ऊषा-हरण, दुर्गा चरित्र, भागवत-भाषा, रामायण, गंगा-शतक, अवतार-माला, और संहिता-भाष्य।

इनकी रचना मे भक्ति तथा शृंगार की प्रधानता है। भाषा सरल एवं कविता रोचक और मधुर है। उदाहरण—

> निरखि निरखि नैन सुनि सुनि गान बैन
> हरखि हरखि मैन सैन रचिबौ करै।
> फिरि फिरि फेरि लै लै इत उत आतु जातु
> उठि उठि बैठि बैठि अति पचिबौ करै॥
> सुनहु सुजान प्यारी आँखें अनियारी बारी
> रोकैं हू कहाँ लगि यो ता पै बचिबौ करै।
> उमगि अनंग रंग-रंग मधु भृंग भयो
> तेरे संग-संग मन मेरो नचिबौ करै॥

वख्तावरजी

ये टाक शाखा के राव थे। इनका जन्म स० १८७० मे मेवाड राज्य के वनी नामक गाँव मे हुआ था। इनके पिता का नाम सुखराम था। जब ये बहुत छोटे थे तब सुखराम की मृत्यु हो गई जिसमे वसी के ठाकुर अर्जुनसिंह ने इनकी देख-रेख की और पढा-लिखा कर होशियार किया। स० १९०९ मे किसी घरेलू झगडे के सिलसिले मे ये उदयपुर आए। उस अवसर पर इनकी महाराणा स्वरूपसिंह से भेंट हुई। प्रतिभावान देखकर उन्होंने इन्हें अपने पास रख लिया और कालान्तर मे सिहारी तथा डागरी नामक दो गाँव, बैठक, पाँव मे सोना और रहने के लिए मकान देकर इनका मान बढाया। महाराणा स्वरूपसिंह के बाद के तीन महाराणो के समय मे भी इनकी प्रतिष्ठा पूर्ववत् बनी रही। इनका देहात स० १९५१ मे हुआ। उदयपुर के राजकीय दग्ध-स्थान, महासतियो मे, महाराणा अमरसिंह (प्रथम) की छतरी के सामने इनकी भी छतरी बनी हुई है।

बख्तावरजी व्रजभाषा और राजस्थानी दोनो मे कविता करते थे और काव्य-कला मे निपुण थे। इन्होंने ग्यारह ग्रथ बनाए जिनके नाम ये हैं—

केहर-प्रकाश, रसोत्पत्ति, स्वरूप-यश-प्रकाश, शम्भु-यश-प्रकाश, सज्जन-यश-प्रकाश, फतह-यश-प्रकाश, सज्जन-चित्र-चद्रिका, सचार्णव, अन्योक्ति-प्रकाश, सामत-यश-प्रकाश और रागिनियो की पुस्तक।

इनमे 'केहर-प्रकाश' इनका सबसे बडा और सर्वश्रेष्ठ ग्रथ है जो प्रकाशित भी हो चुका है। यह स० १९३६ मे लिखा गया था। इसमे कमल प्रसन्न नामक एक वेश्या और उसके प्रेमी केसरीसिंह की प्रेम-कथा का वर्णन है। इसमे दस प्रकरण है और १४८६ छद। भाषा राजस्थानी है। कहानी रोचक और कलहपूर्ण है। इसकी प्रशसा मे कही हुई किसी सहृदय पाठक की यह उक्ति उल्लेखनीय है—

श्रवणा नाहिं सुणीह, निज नैणा दीठी नही।
वातां मुकुट वणीह, राव वखत रचना सरस॥

वख्तावरजी का एक फुटकर कवित्त हम यहाँ देते हैं—

जुरेई जँजीरन में द्वार को उदारता दे,
हूले निज दल के सिगार व्हीजियतु है।
विकट जु वाटन पैं महानद्द घाटन पैं,
भुरज कपाटन पैं हूल दीजियतु है॥
'वखत' भनत भूमि पालन की रीति ये ही,
रौद्रता प्रचण्ड सो सदा ही रीझियतु है।
यक मतवारो होय अंकुश न मानें तो का,
द्विर्द दरवार दूजे दूर कीजियतु हैं॥

प्रतापकुँवरि बाई

इनका जन्म स० १८७३ के लगभग जोधपुर राज्य के जाखण ग्राम के एक सुप्रसिद्ध भाट परिवार मे हुआ था। इनके पिता का नाम गोयददास था। सोलह वर्ष की उम्र मे इनका विवाह जोधपुर के महाराजा मानसिंह के साथ हुआ। वैसे ईश्वर-भक्ति की ओर इनका झुकाव बाल्यावस्था ही से था, पर पति की मृत्यु (स० १९००) के वाद से इनका मन सासारिक कार्यों से बिलकुल उचट गया और अपना अधिक समय भगवद् भजन और पूजा-पाठ मे व्यतीत करने लगी। इनकी रहन-सहन सादी और प्रकृति सरल थी। राज्य की ओर से इन्हें कई गाँव मिले हुए थे जिनकी आय का अधिकाश ये दान-पुण्य तथा साधु-सेवा मे खर्च किया करती थी। कवियो, विद्वानो और चारण-भाटो को भी इन्होंने प्रचुर धन-दान दिया। इनका देहान्त स० १९४९ मे हुआ था।

प्रतापकुँवरि बाई ने कुल मिलाकर चौदह ग्रथो का निर्माण किया जिनके नाम ये है—

(१) ज्ञान सागर (२) ज्ञान प्रकाश (३) प्रताप पच्चीसी (४) प्रेम सागर (५) रामचद्र नाम महिमा (६) राम गुण सागर (७) रघुवर स्नेह लीला (८) राम प्रेम सुख सागर (९) राम सुजस पच्चीसी (१०) रघुनाथ जी के कवित्त (११) भजन पद हरजस (१२) प्रताप विनय (१३) श्री रामचद्र विनय (१४) हरिजस, गायन आदि।

इनकी भाषा पिंगल है जिसमे मँजे हुए और प्रति दिन उपयोग मे आने वाले उर्दू-फारसी के शब्द स्वतत्रता के साथ प्रयुक्त हुए है। कविता इनकी राम-भक्ति-पूर्ण और प्रसाद गुण से ओत-प्रोत है। उदाहरण—

अवधपुर घुमडि घटा रहि छाय ॥टेक॥
चलत सुमद पवन पुरवाई नभ घनघोर मचाय ॥१॥
दादुर मोर पपीहा बोलत दामिनि दमकि दुराय ॥२॥
भूमि निकुज सघन तरुवर मे लता रही लिपटाय ॥३॥
सरजू उमगत लेत हिलोरैं निरखत सिय रघुराय ॥४॥
कहत प्रताप कुवरि हरि ऊपर वार वार बलि जाय ॥५॥

गणेशपुरी

ये पदमजी चारण के पुत्र स० १८८३ मे जोधपुर राज्य के चारवास गाँव मे पैदा हुए थे। इनका जन्म-नाम गुप्ताजी था। ऐसी प्रसिद्धि है कि 'वशभास्कर' के रचयिता कविराजा सूरजमल का नाम सुनकर ये उनसे मिलने के लिए एक बार बूदी गये। जिस समय ये उनके घर पहुँचे उस समय उनका एक नौकर द्वार पर बैठा हुआ था। उसने जाकर सूरजमल को सूचना दी कि एक चारण दरवाजे पर खडा है और आप से मिलना चाहता है। सूरजमल अपढ व्यक्तियो से प्राय कम मिलते थे। उन्होने नौकर से कहा—

'जाकर पूछो कि वह पढा हुआ है या नही'। नौकर लपका हुआ वाहर आया और वही प्रश्न गुप्तजी से किया। सुनकर वे सुन्न रह गए, कुछ क्षण तक प्रस्तर-मूर्ति की तरह खडे रहे। फिर गर्दन हिला कर बोले—'नहीं'। इस 'नहीं' की ध्वनि अदर बैठे हुए कविराजा के कानो मे पडी। वहीं से चिल्ला कर उन्होंने कहा—'सूरजमल अपढ चारण का मुह देखना नही चाहता। तुम यहाँ से चले जाओ'। ये शब्द गुप्तजी को घाव कर गये। उन्हें लज्जा भी आई। फौरन वहाँ से लौट पडे। यह घटना उस समय की है जब इनकी उम्र २७ वर्ष की थी। यही से इनके जीवन का नया अध्याय शुरू हुआ। ये साधु हो गए और अपना नाम वदलकर गणेशपुरी रख लिया। फिर काशी पहुँचे और लगभग दस वर्ष तक वहाँ रह कर हिन्दी-सस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया।

काशी से लौटने के पश्चात् गणेशपुरी कुछ वर्षों तक राजस्थान मे इधर-उधर घूमते रहे और अत मे मेवाड के गुण-ग्राही महाराणा सज्जनसिंह के आग्रह से मेवाड को स्थायी रूप से अपना निवास-स्थान वना लिया। गणेश-पुरी एक सुयोग्य साहित्य-सेवी और काव्य-कुशल व्यक्ति थे। इनके सपर्क से महाराणा सज्जनसिंह भी अच्छी कविता करने लग गए थे। सस्कृत, व्रजभाषा एव डिंगल का उच्चारण गणेशपुरी का वहुत शुद्ध तथा स्पष्ट होता था और कविता पढने का ढग भी ऐसा प्रभावशाली होता था कि सुननेवाले झूमने लग जाते थे। साधारण कोटि की कविता भी जब इनकी जवान से निकलती तव उच्च कोटि की प्रतीत होती थी।

इनके रचे फुटकर कवित्त-सवैये और 'वीर विनोद' नामक एक ग्रथ राज-स्थान मे वहुत प्रसिद्ध हैं। वीर विनोद की भाषा पिंगल है। यह महाभारत के कर्ण-पर्व का पद्यानुवाद है। अनुवाद मे मौलिकता, भावो की स्पष्टता और शव्द-योजना के सौष्ठव का अच्छा आनद मिलता है। पर क्लिष्ट शब्दो की वहुलता के कारण प्रसाद गुण को कही-कही वडा आघात पहुँचा है। इनकी

फुटकर कविताएँ भी बडी जोरदार, चमत्कारपूर्ण एव मार्मिक बन पडी है पर प्रसाद की कमी इनमे भी है। और शायद यही कारण है कि काव्य-कला-कलित होते हुए भी इनका इतना प्रचार नही है जितना होना चाहिए। वास्तविक बात यह है कि गणेशपुरी की कविता के पीछे चेष्टा है, वह उनके हृदय की अनुभूति नही, मस्तिक की उपज है। अत उनके भाव तक पहुँचने के लिए पाठक को भी काफी मानसिक श्रम करना पडता है। उदाहरण—

चाली नृप भीम पैं कराली नृप-भीम चमू,
नक्रमुखी तोपन के चक्र-चरराटे व्हाँ।
आपनी रु औरन को सोर न सुनात, दौर,
घोरन की पौरन के घोर घरराटे व्हाँ॥
मीर हमगीरन के तीर-तरराटे वर
वीरन-वपुच्छद के बाज वरराटे व्हाँ।
हूर-हरराटे धर-धूज धरराटे सेस
सीस-सरराटे कोल कच-करराटे व्हाँ॥
वाढी वीर हाक हर डाक भुव चाक चढी,
ताक ताक रही दूर छाक चहुँ कोद में।
बौलि कैं कुबोल हय तोल बहलोल खाँ पैं,
वागो आन कत्ता राण पत्ता को विनोद मैं॥
टोप कटि टोपी लाल टोपा कटि पीत पट,
सीस कटि अग मिली उपमा सुमोद मैं।
राहु गोद मगल की मगल गुरु की गोद,
गुरु गोद चन्द की रु चन्द रवि गोद मैं॥

गुलाबजी

ये बूदी के दरबारी कवि थे। इनका जन्म स० १८८७ मे अलवर

राज्यान्तर्गत राजगढ़ में हुआ था। जाति के राव थे। जब ये ४१ वर्ष के थे तब अलवर से बूंदी चले गए और आजीवन वहीं रहे। बूंदी के महाराव राजा रामसिंह ने इन्हें दो गाँव प्रदान किए थे और दुशाला, हाथी, ताजीम इत्यादि देकर इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई थी। ये बूंदी स्टेट कौंसिल तथा वाल्टर कृत राजपूत-हितकारिणी सभा के सदस्य थे और महकमा रजिस्टरी के भी हाकिम थे। इनका देहान्त स० १९५८ में हुआ था।

गुलाबजी सिद्धहस्त कवि और काव्य-मर्मज्ञ थे। इनके संसर्ग में कई लोग अच्छी कविता करना सीख गए थे, जिनमें ब्रिटर्दामिट और चंद्रकला बाई के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनकी कविताएँ, सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में छपा करती थीं जिससे राजस्थान के बाहर के लोग भी इन्हें जानते थे। कानपुर की 'रसिक-सभा' ने तो इन्हें 'साहित्य-भूषण' की उपाधि से विभूषित किया था।

इनका ब्रजभाषा और डिंगल दोनों भाषाओं पर समतुल्य अधिकार था। परन्तु अधिकतर ब्रजभाषा में लिखा करते थे। इनके रचे ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) रुद्राष्टक (२) रामाष्टक (३) गंगाष्टक (४) बालाष्टक (५) बापस पच्चीसी (६) प्रन पच्चीसी (७) रस पच्चीसी (८) समस्या पच्चीसी (९) गुलाब-कोष (१०) नाम चंद्रिका (११) नामसिंधु कोष (१२) व्यंग्यार्थ चंद्रिका (१३) बृहद् व्यंग्यार्थ चंद्रिका (१४) भूषण चंद्रिका (१५) ललित कौमुदी (१६) नीति-सिंधु (१७) नीति-मंजरी (१८) नीति-चंद्र (१९) काव्य-नियम (२०) वनिता-भूषण (२१) बृहद् वनिता-भूषण (२२) चिंता-तंत्र (२३) मूर्ख-शतक (२४) ध्यान रूप सवतिका-वद्ध कृष्णचरित्र (२५) आदित्य हृदय (२६) कृष्णलीला (२७) रामलीला (२८) सुलोचना लीला (२९) विभीषण लीला (३०) दुर्गास्तुति (३१) लक्षण कौमुदी (३२) कृष्ण-चरित्र (३३) शारदाष्टक और (३४) कृष्ण चरित्र सूची।

गुलाबजी की रचना भाषा और कविता दोनों ही दृष्टियों से प्रशंसनीय है। इनकी भाषा बहुत सरल कोमल और विशुद्ध ब्रजभाषा है। कविता कर्णप्रिय, सुरनिपूर्ण और प्रभावोत्पादक है और कला उसमें अपने प्रकृत सौन्दर्य के साथ विहार कर रही है। दो नमूने यहां दिये जाते हैं—

मृग से सरोरुदार खजन सें दौरदार
चचल चकोरन से चित्त चोर पाके है।
मीनन मलीनकार जलजन दीनकार
भवरन गौनकार अमित प्रभा के है॥
सुकवि गुलाब सेत चिक्कन विशाल लाल
स्याम के सनेह सने अति मद छाके है।
बरुनी विशेष वारे तिरछी चितौनी वारे
मैंन बानहू तें पैने नैन राधिका के हैं॥

छैहे व्रज मटकी उमडि नभ मडल मे
जुगनू चमक व्रजनाग्नि जरै हैं री।
दादुर मयूर थोने झींगुर मचै है सोर,
दौरि दौरि दामिनी दिमान दुखदै है री॥
सुकवि गुलाब ह्वै है किरचैं करेजन की
चौंकि चौंकि चोपन सी चातक चिचै है री।
हसन लै हम उडि जै है ऋतु पावस मे
ऐ है घनश्याम घनश्याम जो न ऐ है री॥

मुरारिदान

ये बूंदी के सुप्रसिद्ध कवि सूरजमल के दत्तक पुत्र थे। इनका जन्म स० १८९५ मे और देहान्त स० १९६४ मे हुआ था। अपने पिता सूरजमल की तरह ये भी षट्भाषा-प्रवीण और प्रतिभावान कवि थे "वंशभास्कर"

लिखते समय जब सूरजमल ने रावराजा रामसिंह के गुण-दोषो का विवेचन करना प्रारम्भ किया तब रावराजा उनसे सहमत न हुए और विवश होकर उन्हें अपना ग्रथ अधूरा छोडना पडा। इसे सूरजमल की मृत्यु के बाद मुरारिदान ने पूरा किया। इसके अतिरिक्त इन्होने दो ग्रथ और भी बनाए थे--डिंगल-कोष और वश समुच्चय। ये डिंगल और पिंगल दोनो मे रचना करते थे। कविता इनकी गभीर और सानुप्रास होती थी। उदाहरण---

मोहतम प्रबल निकदन प्रकास रूप
 बिघन बिदारन को अतक स्वरूप जोउ।
पालन मे तत्पर कृपालु बिनु कारन ही
 आसुतोस बरद अनादि काल ही तें दोउ ॥
जा की कृपा वाक्य द्वारा मन को प्रकासै भेद
 सेवक मुरारि के हिये मे पग धारो सोउ।
गुरु को गनाधिप को पितु रविमल्ल जू को
 सिव को सिवा को बानी रानी को प्रनाम होउ ॥

बिडदसिंह

ये चौहाण राजपूत अलवर राज्य के किशनपुर गाँव के जागीरदार थे। इनका जन्म स० १८९७ मे हुआ था। कविता करना इन्होने बूंदी के राव गुलाबजी से सीखा था। ये बहुत अच्छे कवि एव गुणग्राही पुरुष थे। इनके यहाँ कवि-कोविदो का जमघट लगा रहता था। ग्रन्थ तो इन्होने कोई नही लिखा पर फुटकर कवित्त-सवैये सैकडो की सख्या मे रचे हैं। कविता मे ये अपना नाम 'माधव' लिखा करते थे। इनकी कविता शृगाररस-प्रधान है। और उसमे कला-पक्ष का निर्वाह खूब हुआ है। उदाहरण---

नहिं गाजत बाजत दुदुभि है चपला न कढी तरवारि अली।
घुरवा न तुरग ये माधव चातक मोरन बोलन बीर बली॥

जलधार न और गिरीशमुख को घन है न मतगन की अवली ।
बगुला न पिनाकि भट शिव पै सजि साज मनोज की फौज चली ॥

चंद्रकला

चद्रकला बाई उपर्युक्त राव गुलाबजी के घर की दासी थी। इनका जन्म स० १९२३ मे और देहावसान स० १९६५ के लगभग हुआ था। यह विशेष पढी-लिखी नही थी, पर कविता के मर्म को खूब समझती थी। इनकी स्मरण-शक्ति बहुत तीव्र थी जिससे इन्होने सैकडो कवित्त-सवैये मुखाग्र कर लिए थे। राव गुलाबजी की तो प्राय सभी अच्छी-अच्छी कविताएँ इन्हें कठस्थ थी। इन्होने गुलाबजी से कविता करना भी सीख लिया था। समस्या-पूर्ति का इन्हें विशेष शौक था और इस कला मे थी भी बहुत निपुण। एक समस्या की पूर्ति कई तरह से, कई रसो मे कर सकती थी और काव्य चमत्कार सभी मे एक-सा पाया जाता था। हिंदी के 'रसिक मित्र', 'काव्य सुधाकर' इत्यादि पत्रो मे इनकी कविताएँ प्राय छपा करती थी। इनकी रचनाओ से मुग्ध होकर सीतापुर जिले के बिसवाँ ग्राम के कवि-मडल ने इन्हे 'वसुन्धरा-रत्न' की उपाधि प्रदान की थी।

इन्होने करुणाशतक, पदवी-प्रकाश, रामचरित्र, महोत्सव प्रकाश इत्यादि पाँच-सात ग्रथ बनाए थे, परन्तु इनकी कीर्ति शृगार रसात्मक फुटकर कवित्त-सवैयो के कारण विशेष है। इनकी भाषा सालकार, सरस तथा व्यवस्थित है। वस्तुत हिंदी की कवयित्रियो मे कला की दृष्टि से इतनी अधिक श्रेष्ठता किसी ने प्रदर्शित नही की जितनी इन्होने की है। यह करुण रस के लिखने मे भी सिद्धहस्त थी। विषाद की एक हृदय-वेधक रेखा इनके करुणा-शतक मे चित्रित देख पडती है। इनके दो सवैये यहाँ उद्धृत किये जाते है —

नख से सिख लौ सब साजि सिंगार छटा छवि की कहि जात नही।
मग लाय अली न लली ललचाय चली पिय पास महा उमही॥
कहि 'चन्द्रकला' मग आवत ही लखि दौरि तिया पिय बाह गही।
नहि बोल सकी सरमाय लली हरपाय हिये मुसकाय चली॥
बाजत ताल मृदग उमग उमग भरी सखियाँ रँग बोरी।
साथ लिए पिचकी कर माहि फिरै चहुँधा भरि केसर घोरी॥
'चन्द्रकला' छिरकै रग अगन आपस माहि करै चित चोरी।
श्री वृषभानु महीपति-मदिर लाल-लली मिलि खेलत होरी॥

मुरारिदान

ये आशिया शाखा के चारण जोधपुर-नरेश महाराजा जसवन्तसिंह (द्वितीय) के आश्रित थे। इनका रचना-काल स० १९४० है। इनके पिता का नाम भारतीदान था। डिंगल भाषा के सुप्रसिद्ध कवि बाकीदास इनके पितामह थे। इन्होने 'जसवन्त जसोभूपण' बनाया जो हिन्दी के अलकार-ग्रन्थो मे सबसे बडा है। इस पर इन्हे 'कविराजा' की पदवी के साथ लाखपसाव मिला था।

'जसवन्त जसोभूपण' ८५२ पृष्ठो का एक भारी ग्रन्थ है। इसका लघु रूप 'जसवन्त भूषण' है जो ३५१ पृष्ठो मे समाप्त हुआ है। ये दोनो ग्रथ मारवाड स्टेट प्रेस, जोधपुर की ओर से प्रकाशित हुए है। 'जसवन्त जसो-भूपण' मे मुरारिदान ने अलकारो के नामो को ही उनका लक्षण माना है और उदाहरण मे अपने आश्रयदाता महाराजा जसवन्तसिंह का यशोगान किया है। इसमे सन्देह नही कि इसके लिखने मे इन्होंने हिन्दी-सस्कृत के बहुत से प्राचीन ग्रथो से सहायता ली है, परन्तु नाम मे ही लक्षण की कल्पना करने मे अनेक स्थानो पर खीचातानी का आश्रय लेना पडा है और ऐसे उद्योग मे सर्वत्र सफलता भी नही हुई है। इन्होने अतुल्य योगिता अनवसर

तथा अपूर्वरूप ये तीन नये अलकार बनाए हैं और प्रमाण को अलकार ही नही माना है।

ग्रन्थ की रचना-शैली और विषय-विवेचन कलापूर्ण एव हृदयग्राही है और इसमे मुरारिदान के साहित्य विषयक ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है। उदाहरण—

गोकुल जनम लीन्हौ, जल जमुना को पीन्हौ,
सुबल सुमित्र कीन्हौ, ऐसो जस-जाप है।
भनत 'मुरार' जाके जननी जसोदा जैसी,
उद्धव ! निहार नन्द तैसो तिह बाप है॥
काम-वाम तै अनूप तज वृज-चन्द-मुखी,
रीजे वह कूबरी कुरूप मौ अमाप है।
पचनीर-भय को न बीर नेह-नय को न
वय को न, पूतना के पय को प्रताप है॥
सुर-धुनि-धार घनसार पारबती-पति,
या विधि अपार उपमा को थौभियतु है।
भनत 'मुरारि' ते विचार मौं विहीन कवि,
आपने गँवारपन मौं न छौभियतु है॥
भूप-अवतस, जसवत ! जस रावरो तौ,
अमल अनत तीनो लोक लौभियतु है।
सरद पून्यौ-निसि जाए हस को है वधु,
छीर-सिधु-मुकता समान सौभियतु है॥

ऊमरदान

ये जोधपुर राज्य के ढाढरवाडा ग्राम मे स० १९०९ मे पैदा हुए थे और जाति के चारण थे। इनके पिता का नाम बख्शीराम और दादा का मेघराज

था। ये तीन भाई थे नवलदान, ऊमरदान और शोभादान। बाल्यावस्था मे माता-पिता का देहान्त हो जाने से घर पर इनकी ठीक तरह से देख-रेख करनेवाला कोई नही रह गया था। जिससे ये बहुत उद्दड हो गए और मौजीराम नामक एक रामसनेही साधु के बहकाने मे आकर रामसनेही पथ को अगीकार कर लिया। कोई १९ वर्ष की उम्र तक ये राम सनेहियो की मडली मे रहे। बाद मे उनका साथ छोडकर वापस गृहस्थ बन गए और रामसनेही पथ का छिद्रोद्घाटन करने लगे।

ऊमरदान बहुत सरल प्रकृति के पुरुष थे और वेश-भूषा से पूरे किसान दिखाई पडते थे। ये खूब प्रसन्न रहते और सबसे हँसकर मिलते-जुलते थे। यदि कोई इन्हें पूछता कि तुम्हारा मकान कहाँ है तो ये कहते—

दुकान है दुकान मा, मकान ना मकान मा।
उठाय लट्ठ अट्ठ जाम, मैं फिरा घमा-घमा।।

ऊमरदान अच्छे कवि थे। इसलिए जोधपुर, उदयपुर आदि राज्यो के राज-दरबारो मे इनका अच्छा आदर होता था। इनका देहान्त स० १९६० मे हुआ था।

इनकी रचनाओ का सग्रह 'ऊमर-काव्य' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। इसमे 'भजन की महिमा' 'अमल रा ओगण' 'दारू रा दोस' इत्यादि ४० से अधिक फुटकर प्रसग हैं। भाषा बोलचाल की राजस्थानी है। बाल्यावस्था मे जब कि मनुष्य के सस्कार बनते और दृढ होते है ऊमरदान रामसनेहियो के साथ रहे। इसलिए क्या इनकी भाषा, क्या रचना-शैली और क्या विषय-सामग्री सभी पर राममसनेही पथ का रग है। रचना इनकी बुरी तो नही है, पर थोडी-सी फूहडता उसमे है। और यही कारण है कि शिक्षित समुदाय की अपेक्षा निम्न वर्ग के लोगो मे उसका प्रचार अधिक है। उदाहरण—

पद

वणियो नहीं आछो काम, वीर युहीं वीती वेहडली॥
फन्दा मे मोडा रे फँसगो, रुळगो रेहडली।
भेक धारता कीदी भूँडी, कुवधा केहडली॥१॥
मात पिता की छोडी मोवत मोजाँ मेहडली।
मात जात मोडा मूँ सावी, नाहक नेहडली॥२॥
दूध दही खाया दूजा रा, दीपी देहडली।
मरिया सूँ मूनी मिल जासी, सूनी खेहडली॥३॥
ग्यान विना यें युहीं गमाई, ऊमर ऐहडली।
छठ मूँ वाजी हारगी छी छी, छेला छेहडली[२]॥४॥

कुडलिया

भेख विगाड़ें जगत नें, जगत विगाडे भेख।
ओ लें वावा अमलडो, दुनिया मे मुख देख॥
दुनिया मे सुख देख तार आवेला तीखी।
सतगुरु को परसाद सुधामद घुटन सीखी॥
सोफी सवद सुणाय चोर रग देत विगाडै।
वैरागी नें जगत जगत नें भेख विगाडै[३]॥

---

२ वेहडली=आयु। मोडारे=रामस्नेही साधुओ के। भेक=भेष, साधु होना। कुवधा=वदमाशियाँ। केहडली=वुरी। मेहडली=भोगी। देहडली=काया। खेहडली=धूल। ऐहडली=व्यर्थ। छेहडली=अंतिम।

३ भेख=भेष; साधु होना। अमलडो=अभी। तार=नशा।

किशनजी

ये सिढायच कुशलसिंह जाति के चारण थे। इनके जन्म-मृत्यु संवत का ठीक-ठीक पता नहीं है। रचना काल सं० १९६५ है। ये डूंगरपुर के महारावळ उदयसिंह के आश्रित थे। उनके कहने से इन्होंने एक ग्रंथ बनाया जिसका नाम 'उदय-प्रकाश' है—

किये तीन बेरा हुकम, उदयसिंह नृप एह।
कविता छन्द प्रबंध क्रम, किसना ग्रंथ करेह ॥७॥
सुधा रूप यह बचन सुन, हिय धरि हृदय हुलास।
करयौ ग्रंथ भाषा किसन, प्रगट सु उदय प्रकास ॥८॥

उदय-प्रकाश ऐतिहासिक काव्य है जो चारण-भाटों की प्रथा-बद्ध रीति पर लिखा गया है। दोहा, कवित्त, पद्धरी, त्रोटक आदि सब मिलाकर ४५५ छन्दों में यह समाप्त हुआ है। इसमें महारावळ उदयसिंह का जीवनचरित वर्णित है। इसकी भाषा पिंगल है। ग्रंथ इतिहास का है और इतिहास ही की दृष्टि से लिखा गया है, पर साहित्यिक छटा भी इसमें स्थान-स्थान पर अच्छी दिखाई, देती है। उदाहरण—

चंपक कदंब अंब जंबु वो गुलाब वृन्द
केतकी रु केवरे चमेली पुष्प छावे हैं।
दाडिम अनार दाख सेवती जसूल केते
मोगरे नरंगी नीबू ग्राम कूं निसावे हैं।
संकुलित नाना ब्रछ कोकिल मयूर पुंज
ब्रम्मर सुगंधी तें भौर छक जावे है।
अष्टोत्तर तीरथ को प्रगट प्रभाव लिये
अरबुद की शोभा कैलाश सी दिखावे है॥

चतुरसिंह –

मेवाड के महाराणा सग्रामसिंह (द्वितीय) के चार पुत्र थे–जगतसिंह, नाथसिंह, वाघसिंह और अर्जुनसिंह। ज्येष्ठ पुत्र होने से सग्रामसिंह के बाद जगतसिंह मेवाड की गद्दी पर बैठे और शेष तीन भाइयो को क्रमश वागोर, करजाली तथा शिवरती की जागीर और 'महाराज' की उपाधि मिली। महाराज चतुरसिंह करजाली के स्वामी महाराज वाघसिंह के वशज थे और उनसे छठवी पीढी मे हुए थे। इनका जन्म स० १९३३ मे हुआ था। इनके पिता का नाम सूरतसिंह और दादा का अनूपसिंह था। अपने पिता के चार पुत्रो मे ये सब से छोटे थे।

इनका विवाह अठारह वर्ष की आयु मे हुआ था जिससे इनके दो कन्याएँ हुई। परन्तु दस वर्ष वाद इनकी धर्मपत्नी का देहान्त हो गया। इससे इन्हें विरक्ति हो गई और दूसरा विवाह करने का विचार छोड अपना अधिक समय योगाभ्यास, ईश-भजन, शास्त्राध्ययन इत्यादि मे व्यतीत करने लगे। घर मे रहने से स्वाध्याय के कार्य मे विक्षेप होता था इसलिए इन्होंने घर भी छोड दिया और उदयपुर शहर के वाहर सुकेर नामक गाँव के पास एक टेकरी पर कुटिया वनाकर रहने लगे।

इस कुटिया मे महाराज साहव कई वर्षो तक रहे। प्रकृति के दीर्घकालीन मनन ने इनके जीवन को भी प्रकृतिमय वना रखा था। ये वहुत सरल हृदय एव साधु प्रकृति के पुरुप थे। इनके अग-प्रत्यग से, इनकी वेश-भूषा से, इनके वार्तालाप और व्यवहार से जहाँ देखो वहाँ से सादगी प्रस्फुटित होती थी। वातचीत करते समय ये ऐसी सरल और मधुर भाषा का प्रयोग करते थे कि देखते ही वनता था। कैसा भी कठिन विपय क्यो न होता महाराज साहव की प्रतिभा-खराद पर चढकर नवीन रूप धारण कर लेता था और उसकी दुरूहता हवा हो जाती थी।

स० १९८६ मे महाराज साहब को सोजिश की तकलीफ हुई और करीब दस दिन की बीमारी के बाद इनके जीवन का अंतिम अभिनय हो गया।

महाराज चतुरसिंह बहुभाषा-ज्ञानी और सहृदय कवि थे। इनकी कविताओ का मेवाड के घर-घर मे प्रचार है। मीरा के बाद मेवाड मे यही इतने लोकप्रिय कवि हुए है। इनके रचे ग्रथो के नाम ये हैं—

(१) भगवद्गीता की गगाजली टीका (२) परमार्थ विचार (३) योग सूत्र की टीका (४) सांख्य तत्व समाज की टीका (५) साख्य कारिका की टीका (६) मानवमित्र रामचरित्र (७) शेष चरित्र (८) अलख पचीसी (९) तुही अष्टक (१०) अनुभव प्रकाश (११) चतुर चिंतामणि (१२) महिम्नस्तोत्र (१३) चन्द्र शेखराष्टक (१४) हनुमान पचक (१५) समान बत्तीसी और (१६) चतुरप्रकाश।

महाराज साहब ने राजस्थानी और ब्रजभाषा दोनों मे कविता की है। इनकी भाषा बहुत सरल, मधुर और भावोपयोगी है। इन्होंने जो कुछ लिखा है वह दूसरो से लेकर नही, बल्कि अपने अनुभव के आधार पर लिखा है। इसलिए इनके काव्य मे सच्चाई और स्वाभाविकता है। एक बहुत बडी विशेषता जो महाराज साहब की कविता मे हमे दीख पडती है वह यह है कि अत्यन्त भावमयी एव मौलिकतापूर्ण होने के साथ-ही साथ वह सदुपदेशो से ओतप्रोत है और मनुष्यो को उच्चादर्शों के दर्शन कराती है। ऐसे सत्य, शिव और सुन्दर साहित्य के रचयिता बहुत कम पैदा होते है। कविता का नमूना देखिए—

पद

रे मन, छन ही मे उठ जाणो
ई रो नी है ठोड ठिकाणो, अरे मन छन ही मे उठ जाणो॥
साथै कई न लायौ पेली, नी साथै अब आणो।
वी वी आय भलेगा आगे, जी जी करम कमाणो॥१॥

मो मो जतन गरे ई तन रा, आखर नी आपाणो।
करणो वै मो झटपट कर लै, पछै पणै पछताणो॥२॥
दो दन रा जीवा रे खातर, क्यू अतरो ऐंठाणो।
हाथा में तो कई न आयाँ, वाता मे वेकाणो॥३॥
कणी मीम पै गाम वमावै, कणी नीम कमठाणो।
ई तो पवन पुरुप रा मेळा, "चातुर" भेद पछाणो॥४॥

दोहे

रहँट फरै चरख्यो फरै, पण फरवा मे फेर।
हेक वाड हर्‌यो करै, हिक छूंता रा ढेर॥
वान्हा विचै विरोध जो, करै फूकर्‌यां चाड।
वा मूं तो भाटा भला, रूप नै मेटे राड॥
भावै जी भुगताय, दूजा दुख दीजै मर्मी।
खोळा मूं खिमकाय, मत दीजै मातेमरी॥
कारड तो कहतो फरै, हर कीनै हकनाक।
जा री ह्वीनै कहै, हियै लिफाफो राख॥

(रहँट फिरता है और कोल्हू भी। लेकिन दोनो के फिरने मे अन्तर है। एक (रहँट) तो गन्ने के खेत को हरा-भरा करता है और एक (कोल्हू) छोई का ढेर लगाता है) ॥१॥ उन लोगो से, जो दो प्रेमियो को उकसाकर आपस मे मनोमालिन्य पैदा कर देते है, तो वे पत्थर अच्छे है जो दो सीमाओ के वीच मे गडकर झगडे का निपटारा कर देते है ॥२॥ हे मातेश्वरी! तेरी इच्छा हो वे दुख तू मुझे देना। पर तेरी गोद मे मुझे मत खिमकाना ॥३॥ पोस्टकार्ड व्यर्थ ही अपनी वात हर किसी से कहता फिरता है। पर लिफाफा वात को अपने हृदय मे रखता है और जो वात जिसे कहने को होती है उसी से कहता है ॥४॥

बालावख्श

बारहठ बालावख्श जयपुर राज्य के हगूतिया ग्राम के निवासी थे। इनका जन्म स० १९१२ मे हुआ था। ये पालावत शाखा के चारण थे। इनके पिता का नाम निरञ्जनदास और दादा का हुकमराज था। बारहठजी बहुत मिलनसार एव गभीर प्रकृति के पुरुष थे और सभा-चतुर भी पूरे थे। इतिहास का इन्हें विशेष शौक था। इन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा, काशी को ७०००) का दान दिया था जिसके सूद से "बालावख्श-राजपूत-चारण-पुस्तक माला" मे राजपूत चारणो के रचे हुए इतिहास व कविता विषयक ग्रथो का प्रकाशन होता है। इनकी मृत्यु स० १९८८ मे हुई थी।

बारहठजी को डिंगल और पिंगल दोनो मे कविता करने का अभ्यास था। इनके रचे ग्रथों के नाम निम्न हैं। एक दो को छोडकर ये सभी अप्रकाशित हैं—

(१) अश्व विधान सूचना, (२) भूपाल-सुजस-वर्णन, (३) आसीन-विगतावली, (४) आसीस-अष्टक, (५) आसीस-पच्चीसी, (६) षट् शास्त्र-साराश, (७) खडेला पाना खुर्द की वशावली, (८) शास्त्र विधान सूचना, (९) शास्त्र-प्रकाश, (१०) शास्त्र-सार, (११) सध्योपासना उत्थानिका, (१२) क्षत्रिय-शिक्षा-पचाशिका, (१३) छंद देवियो के, (१४) छद राजाओ के, (१५) रावराजा माधवसिंह सीकरवालो का स्मारक काव्य, (१६) मान महोत्सव महिमा, (१७) मरसिया ठाकुर जोरावर सिंह का, (१८) शोक शतक (१९) कछावो की खाँपें और ठिकाने।

बालावख्श ने वडी सरस और भावपूर्ण रचना की है। इनकी रचना को देखने से ज्ञात होता है कि भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था। उक्ति-चमत्कार भी उसमे खासा दिखाई देता है। इनका एक कमाल यहाँ दिया जाता है—

आछौ बोल्यौ कूकडा, विरह फजर की वार।
चेत अचेती मानव्याँ, कोय मुमर करतार॥
कोय मुमर करतार, विहूणी रत्तडी।
पल-पल वीती जाय, वजन्दी ज्यूं घडी॥
कालि चलै कै आज, पयाणौ ढूकडौ।
'केहरि' हरि चीतारि, कहै इम कूकडौ॥

केसरीसिंह

इनका जन्म स० १९२७ में मेवाड राज्य मे मोन्याणा नामक गाँव मे हुआ। ये सोदा वारहठ कुलोत्पन्न जाति के चारण थे। इनके पिता का नाम खेमराज था। आदि मे इनके पूर्वज गुजरात के रहनेवाले थे। कोई ६०० वर्ष हुए तब वे वहाँ से मेवाड मे आकर बस गये थे। वारहठ जी की मृत्यु स० २०१४ मे हुई।

केसरीसिंह बहुतश्रुत विद्वान्, इतिहास-प्रेमी एव आशुकवि थे। इन्होंने *प्रताप-चरित्र, राजसिंह-चरित्र, दुर्गादास-चरित्र, जसवतसिंह-चरित्र अमरसिंह राठौड* और *रुठी राणी* नामक छह ग्रथो की रचना की जो प्रकाशित हो चुकी हैं।

वारहठजी पिंगल भाषा के कवि थे और वीररस की कविता करने मे निपुण थे। छदो मे घनाक्षरी इनको प्रिय था। इनकी भाषा भावो के साथ चलती है और अभिव्यजना-शैली भी अनूठी होती है। भाव की सच्चाई, कल्पना की मौलिकता और पुरुषोचित शक्ति इनकी कविता के प्रधान गुण है। ये करुण रस की कविता भी अच्छी लिखते है। उदाहरण—

बोली वीर भगिनी मैं तो पै वलिहारी वीर
जग्गावत शूर और जरी मम जी की है।

जननी हमारी जन्म-भूमि हेत जावत तू
 कीरति अपार कहीं केती या धरी की है॥
कै तो जीत ऐहु, के पयान कर देहु प्रान
 सुनत अथाह चतुरंगिनी अरी की है।
मो कौं सरमावै मत, सासरे समाज वीच
 तेरे भुज भाई आज लाज चूंदरी की है॥
मैं तो अधीन सब भाँति सो तुम्हारे सदा
 ता पै कहा फेर जय मत्त ह्वै नगारो दे।
करनो तू चाहे कछु और नुकसान कर
 धर्मराज मेरे घर एतो मत धारो दे।
दीन होइ बोलत हूँ पीछो जियदान देहु,
 करुना निधान नाथ अब के तो टाडो दे।
बार बार कहत प्रताप मेरे चेटक को
 ऐ रे करतार! एक बार तो उधारो दे॥

रामसिंह

सीतामऊ के वर्तमान वयोवृद्ध नरेश राजा रामसिंहजी का जन्म सं० १९३८ में हुआ था। इनके पिता का नाम दलेलसिंह था जो बड़े धार्मिक और सत्यप्रिय क्षत्रिय थे। राजा साहब बड़े विद्या-प्रेमी एवं सात्विक वृत्तियो के पुरुष हैं। इन्होने तत्त्वज्ञान, प्राकृतिक विज्ञान, वेदान्त, न्याय, ज्योतिष तथा काव्य-शास्त्र पर बहुत परिश्रम किया है और इनमे इनकी अच्छी गति है। सस्कृत भाषा का इन्हे भारी ज्ञान है। इसके सिवा काव्य-रचना मे भी ये परम प्रवीण हैं। इनकी कविताओ का एक सग्रह, 'मोहन-विनोद' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। इसमे लगभग चार सौ छन्द हैं। इनकी भाषा ब्रजभाषा है। कविता कलापूर्ण

और मार्मिक है। वर्णन-सौन्दर्य भी उसमे खासा दिखाई देता है। उदाहरण—

ना उत बौरत अब कहा, कहा मजुल गान विहग न गावत ?
मोहन सीतल मद सुगधित, पौन कहा न तहाँ सरसावत ?
का मदमाते मिलिन्द उते वन-बागन मे रव नाहिं सुनावत ?
आयो न कत-सदेस अजौ सखि का उहि देस बसत न छावत ?

गिरधर शर्मा

प० गिरधर शर्मा का जन्म स० १९३८ मे झालवाड मे हुआ। ये जाति के प्रश्नोरा नागर है। गोत्र भारद्वाज है। सस्कृत-हिन्दी के उत्कृष्ट विद्वान्, उत्तम वक्ता और साहित्यकार है। प्राकृत, वगला, गुजराती, मराठी आदि भाषाओ का भी इन्हें अच्छा ज्ञान है। इनकी योग्यता और प्रतिभा पर मुग्ध होकर इनको काशी के विद्वत्समाज ने "नवरत्न" की, भारतधर्म महामडल ने 'महोपदेशक' की, चतु सप्रदाय श्री वैष्णव महासभा ने 'व्याख्यान-भास्कर' की उपाधियाँ प्रदान की है।

इन्होंने तीस ग्रथ लिखे है जिनमे १४ सस्कृत के, १२ हिन्दी के और ३ गुजराती के है। इनके हिन्दी-ग्रन्थो के नाम ये हैं—

(१) जया जयन्त, (२) राई का पर्वत, (३) प्रेम-कुज, (४) युग पलटा, (५) महा सुदर्शन, (६) हिन्दी-माघ-उपा, (७) चित्रागद, (८) भीष्म प्रतिज्ञा, (९) बागवान, (१०) गीताजली (११) फल सचय और (१२) गुरु-महिमा।

पडित जी हिन्दी के बहुत पुराने हिमायती और अधिकारी लेखक हैं। ये गद्य और पद्य दोनों लिखते है और बहुत उत्तम लिखते हैं। रस, अल-कार, छद आदि काव्यागो का इन्हें पुख्ता ज्ञान है। इसलिए इनकी कविता

साहित्यिक दृष्टि से निर्दोष होती है। इनकी भाषा ललित और कविता प्राणवान् होती है। उदाहरण—

गिरता नभस्थल की उच्चता से स्वाति बिन्दु
चुपचाप चातक की प्यास को शमाता है।
दुर्गम, गहन गिरि कन्दरा का सोता स्वच्छ
हारे थके पथिकों के श्रम को मिटाता है॥
हेय है न किसी भाँति छोटापन नवरत्न
लोक मे निजार्पण के भाव को जगाता है।
विश्व को समर्पता स्वजीवन, सुरभि देना
स्वल्प सा सुमन महादर्श छोड़ जाता है॥
छन्द का मुछन्दरो को कुछ भी न ज्ञान स्वच्छ
मात्रा, वर्ण, गण, लय का न तत्व भाता है।
अनुभूति होती क्या है नाम को भी पता नहीं
छाया के ग्रहण का भी बोध न लखाता है॥
"नवरत्न" रमणीय अर्थ की क्या बात कहे ?
काव्य रीति का न जहाँ कक्का तक आता है।
देख के कवित्त वित्त आज के कवीश्वरो का
कला छाती पीटती है भाव रोता जाता है।

नाथूदान

ठाकुर नाथूदान म्हैयारिया गोत्र के चारण केसरीसिंह के पुत्र हैं। इनका जन्म स० १९४८ मे हुआ। ये डिंगल भाषा के सुज्ञाता है। इन्होंने डिंगल भाषा मे अनेक फुटकर कविताएँ तथा 'वीर सतसई' नामक एक ग्रथ लिखा है। इनकी रचना प्राचीन चारण काव्य-परपरा से प्रभावित है। इन्होंने अधिकतर ईसरदास, बाँकीदास, सूरजमल आदि अपने पूर्व-

वर्ती चारण कवियो के भावो को उठाया है। अत भाव की मौलिकता इनके काव्य मे नही है। ये बहुत सीधी-साधी एव कर्णमधुर भाषा लिखते हैं। इनकी देशभक्ति विषयक कविता भी बहुत सुन्दर बन पडी है। इनके कुछ दोहे यहाँ दिये जाते है—

जो करमी उण री हुसी आसी विण नूतीह[1]।
या नहँ किण रा बाप री भगती रजपूतीह॥
पिव केसरियाँ पटकिया हूँ केसरियाँ चीर।
नाहक लायो चूंदरी बळती वेळा वीर॥
बाप मुओ जिण ठौड हूँ बेटा नहँ हटियाह।
पेच कसूमल पाग रा सिर माथे कटियाह॥
ओपद जाणै मोकळा पीड न जाणै लोग।
पिउ केसरियाँ नहँ कियाँ हूँ पीळी उण रोग॥
सुत मरियो हित देसरे हरख्यो बधु समाज।
माँ नहँ हरपी जनम दे जतरी हरपी आज॥
हिरण हुवै वे सीग रा सीह हुवै वेसीग।
मदझर टोळाँ मावणो हाथळ वाळो धीग॥

अमृतलाल

श्री अमृतलाल माथुर का जन्म जोधपुर राज्य के कुचेरा ग्राम मे स०

---

१. विण नूतीह=विना बुलाए। पिय . किया=पति ने केसरिया बाना पहन लिया है। वलती वेलाँ=जलते समय, सती होने के वक्त। कसूमल=लाल। पाग=पगडी। सीग रा=दो सीगवाला। वेसीग=विना सीग का। मदझर=हाथी। टोला=झुड। हायल=पजा। धीग=जबरदस्ती।

१९५१ मे हुआ। इनके पिता का नाम गोपाललाल था जो भक्त और कवि थे। ये ब्रजभाषा राजस्थानी और खडी बोली, तीनो मे कविता करते थे। इनका देहान्त स० २०१० मे हुआ। इनके रचे ग्रथो के नाम ये हैं—

(१) राघव-यश, (२) अमृत-सतसई, (३) गीत रामायण, (४) यमक रामायण (५) श्रीरामासव, (६) गगालहरी, (७) राम प्रेमामृत, (८) श्री राम सुधारस, (९) श्री शकर शतक और (१०) श्री प्रेम रामायण।

माथुरजी की रचना का मुख्य विषय रामभक्ति है और उसमे भाषा और भाव का सौन्दर्य है। इनके शब्द-चयन मे शक्ति और शैली में सच्चाई निहित है। इनको यमक अलकार बहुत प्रिय था जिसकी बडी सुन्दर छटा इनकी कविता मे स्थान-स्थान पर देख पडती है। छन्दो मे 'दोहा' का प्रयोग इन्होंने विशेष किया है। इनकी कविता मे इनके भक्त-हृदय की, विह्वल भावनाओ की बहुत ही सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। काव्य-चमत्कार से भी अधिक महत्त्वपूर्ण उसमे की वह अटल श्रद्धा है जिससे उसकी प्रत्येक पक्ति ओत-प्रोत है। उदाहरण—

प्रेम-वर्णन

राम सनेही सजन की, यह गति जानि परै न।
उर मे भरै आनन्द-रस, नैन झरै दिन रैन॥
प्रति दिन मे प्रति पहर मे, प्रति पल रामहि चाहि।
लगी रहे मेरी लगन, रगी प्रेम-रग माहिं॥
राम-विरह-रस दृग बहै, हे नर! अँसुआ है न।
निरखि नेह-करि नैन भरि, नेह-त्रिवेनी नैन॥

मुकता-मनि अँसुआ अमल, कत ढरकत दिन रैन।
हरि-उर-पहरावन अहो! हार बनावत नैन ॥
हरि-सनेह-हित सब तजे, अजन रजन चैन ॥
अँसुआ-कन मुकतान को, दान करत नित नैन ॥
भजन-सुभूधर विरह अहि, मिलन-अमरता लैन।
मन-पयोधि मथि राम-रस, सुधा निकारत नैन।

(बाल-चरित)

हर विरंचि हु पावत पार ना।
जननि ताहि झुलावत पारना ॥

सुख किए तुम हो पलनान मे।
लखत नैनन पै पल ना नमे ॥

छवि कही कछु बैनन जात ना।
हरत हेरत ही मन-जातना ॥

जिन लिए हित सो गहि वारना।
तुम उधारत की तिहि वार ना ॥

सिसु चरित्र किए भुवि सार है।
सुन भुसडि हु सम्भु विसार है ॥

छवि छके पुर के नर ती रहे।
धन लही भव सागर-तीर है ॥

रमत औध-तरंगनि-तीर हो।
धरत चाप निखगनि तीर हो ॥

गवर साँवर दो वर जोर है।
मन लगै हठि ना वरजो रहै ॥

वीर जयमल रन ठेलि कै दुरग काज,
ऐसो खग-खेल खेल सुरग सिधायो है।।

पतराम गौड

गौडजी का जन्म स० १९७० मे पिलाणी मे हुआ। ये हिन्दी-सस्कृत दोनो के एम० ए० है। इन्होने अग्रेजी भी एम० ए० की प्रीविअस परीक्षा पास की है।

हिन्दी राजस्थानी के सुयोग्य लेखक और कवि होने के साथ-साथ गौडजी गुजराती, वगला आदि अन्य भाषाओं के भी अच्छे जानकार है। इन्होने रेगिस्तान, मानव और प्रकृति समर्थ गुरु रामदास (नाटक) और राजस्थानी मुहावरे चार ग्रथो का प्रणयन किया है। ये इनकी स्वतत्र रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त 'चौवोली' और 'हरजस वावनी' का सपादन इन्होने अपने मित्र श्री कन्हैयालाल सहल के साथ किया है।

गौडजी वहुत सरल प्रकृति के व्यक्ति है। जिसकी छाप इनकी रचनाओ पर भी स्पष्टतया परिलक्षित होती है। इनकी अनुभूति सच्ची है और भावनाएँ स्थिर। 'रेगिस्तान' इनका एक वहुत छोटा-सा खड काव्य है। परन्तु इसकी वर्णन शैली मे मार्मिकता और मौलिकता है। राजस्थान के प्रत्येक रज-कण, ककड-पत्थर और टीले को इन्होंने आत्मीयता के भाव से देखा है। इसलिए सारी की सारी रचना सप्राण हो उठी है और चारण-भाटो की रूढिगत कविताओ से ऊबी हुई जनता को इससे वडी राहत मिलती है। देश को इस समय ऐसे ही साहित्यिको की जरूरत है। गौडजी से राजस्थान को वहुत आशा है। इनकी राजस्थानी कविता का एक नमना यहाँ दिया जाता है—

धरती री रगत-पिपासा में
जीवण रो आज अनेसडलो ।
रै हिरदा, रै आतमा भूल्यो रह्यो गिंवार ।
भेद भाव नै भूल कर, जाणज माणस-सार ॥
दादूजी रो देसडलो
थानै भेजै प्रेम-सनेसडलो ।
धरती री रगत पिपासा में
जीवण रो आज अनेसडलो ॥
वळदा पूछ मरोडइ, जीम्या टिचकारथाह
ना झल चिणगारचा झडै चारण वयणाह ॥
सूरजमल रो देसडलो
थानै भेजै दुख सनेसडलो ।
धरती री रगत-पिपासा मैं
जीवण रो आज अनेसडलो ॥
ग्वाडै राभै वाछडा गोझारा खेदै गाय ।
भुरज्याळो राठौड नही, इत बापू कवण उपाय ॥
मा देवळ रो देसडलो
थानै भेजै करुण-सनेसडलो ।
धरती री रगत-पिपासा मैं
जीवण री आज अनेसडलो[1] ॥

---

१ सत=सत्य, सौ । आसू-माल=अश्रुमाला । रगत=रक्त । अनेसडलो=अदेशा । खेती=सहन किये । लीलै=श्वेत घोडे का । पीसो=पैसा । भामो=भामाशाह । झल=जीभ । ग्वाडै=गुवाड मे । गोझारा=गो-हत्यारे । खेदै=खदेडते है । भुरज्याळो=दुर्गपति ।

उनके पिता श्री श्यामसुन्दरलाल नागपुर विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्रोफेसर हैं। इनका विवाह प्रसिद्ध उद्योगपति सेठ श्री रामकृष्ण डालमिया के साथ हुआ है।

श्रीमती दिनेशनंदिनी हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों में से एक हैं। इनके गद्य काव्यों के पाँच-सात संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।—शबनम, मौक्तिकमाल वंशी-रव, दुपहरिया के फूल, शारदीय सारंग, स्पन्दन आदि। इनमें से 'शबनम' पर इनको हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग की ओर से 'सेकसरिया पुरस्कार' भी मिला है।

इन्होंने प्रेम का मार्मिक विश्लेषण किया है जो सार्वभौम है। इनके गद्य काव्यों में एक विशेष तल्लीनता, स्त्रियोचित कोमलता और गहन अनुभूति पाई जाती है जो इन्हें हिन्दी के अन्यान्य गद्य-काव्य रचयिताओं से बहुत ऊँचा उठा देती है। इनकी भाषा सुघड़ और शैली प्रांजल होती है। इनका एक गद्य काव्य यहाँ उद्धृत किया जाता है—

ऐ मेरे चित्रित शयन मन्दिर की खिड़की को स्पर्श करनेवाले स्वप्निल श्यामल वृक्ष! तेरे मेरे बीच कोई राज का पर्दा नहीं है!

कोयल के मंजुल संगीत को सुनकर मैंने तेरे अंग-अंग में कामाग्नि प्रज्वलित होते देखी है,

मेरी-तेरी दिव्य आत्मा के देवता पवन को तेरे कोमल हृदय को स्पर्श करते, और तेरे चिरपिपासित ओष्ठाधरों पर अपने अतृप्त अधरों को रख कर तुझमें राग का ज्वार लाते देखा है!

तूने भी मुझे प्रेम-पेंग में झूलती देखा है, संयोग और वियोग में हँसते और कलपते देखा है, और प्रीतम-प्यारे के साथ दान-लीला और मान-लीला करते देखा है।

ऐ शीतल, स्वप्निल श्यामल वृक्ष! तेरे मेरे बीच कोई राज का पर्दा नहीं है!

चंद्रसिंह

राजस्थानी भाषा के उदीयमान कवि चन्द्रसिंह बी० ए० बिरकाली (बीकानेर) के प्रसिद्ध ऐतिहासिक भूगोत बीको के घराने के हैं। ये ठाकुर खूमसिंह के पुत्र और ठाकुर हरिसिंह के दत्तक पुत्र हैं। ये हिन्दी-राजस्थानी के कवि और गद्य-लेखक हैं। इन्होंने बादळी, कह-मुकरणी, लू, साँझ, बालसाद आदि पुस्तकें लिखी हैं। इनमें बादळी सर्वश्रेष्ठ है। यह राजस्थानी में है। इस पुस्तक पर इन्हें नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की ओर से 'रत्नाकर-पुरस्कार' तथा 'बलदेवदास-रजत पदक' भी मिले हैं। यह संस्कृत कवि कालिदास कृत मेघदूत के ढंग का एक छोटा-सा खंड काव्य है। इसकी भाषा सीधी-सादी और मधुर है। भावों में स्वाभाविकता और संयम है। वर्णन में गति है। उदाहरण—

भूरी काळी बादळी, बीजळ रेख खिंचाय ।
जाण कसौटी ऊपरां, सुवरण रेख सुहाय ॥
सूरज-साजन आवसी, बैठी पेई खोल ।
बदल बदल घन बादल्या, पैरे वेस अमोल ॥
(काले काले जलदों पर यों, खिंची तड़ित की रेखा ।
चतुर पारखी ने पत्थर पर, घिस क्या सोना देखा ?
शुभ प्रभात सजनी आएँगी, चीर गुलाबी पहने ।
इसीलिए घन ने बनवाये, सभी गुलाबी गहने ।)

अलवर के ईश्वरसिंह पिंगल भाषा के उत्कृष्ट कवि थे। ग्रंथ इन्होंने कोई नहीं लिखा, पर फुटकर कवित्त-सवैये सैकड़ों रचे हैं। फतहकरण रचित 'पत्र प्रभाकर' पिंगल भाषा की एक अत्युत्तम रचना है। स्वर्गीय झालावाड़-नरेश राजेन्द्रसिंह देव प्रतिभावान् कवि थे। रावत सुजानसिंह (भगवानपुरा) ने 'गजेन्द्र-मोक्ष' नाम का एक ग्रंथ और बहुत-सी फुटकर कविताएँ रची हैं।

अच्छे कवि और काव्य-मर्मज्ञ थे। पंडित उमाशंकर द्विवेदी वीर रस की कविता करते थे। ठाकुर रेवतसिंह ने पांच-सात ग्रन्थ लिखे हैं। इनकी कविता बहुत प्रौढ़ और परिमार्जित होती है वर्णन-चमत्कार भी उसमें खासा पाया जाता है। ठाकुर रणवीरसिंह बहुत प्रशंसनीय रचना करते हैं। इन्होंने 'नरसी-चरित्र' नाम का एक छोटा-सा ग्रंथ और अनेक फुटकर कवित्त आदि लिखे हैं। इनके कवित्त-सवैयों में बड़ी गति और प्रवाह पाया जाता है। पढ़ते वक्त देव-पद्माकर याद आते हैं। जयपुर के प्रतापनारायण मँजे हुए कवि हैं और बड़ी भावपूर्ण कविता करते हैं।

मोडजी म्हयारिया डिंगल भाषा के अच्छे कवि थे। इन्होंने, वीर-सतसई की रचना की जो अप्रकाशित है। बारहठ हिंगलाजदान का देहान्त अभी कुछ दिन पहले में हुआ है। ये डिंगल के उद्भट विद्वान और सुकवि थे। उदयराज जोधपुर के रहने वाले हैं। राजस्थानी के कवि हैं। 'अरावली की आत्मा' और 'मूधा मोती' नामक ग्रन्थ हाल में छपे हैं। राजस्थानी की उत्तम रचनाएँ हैं। इनके रचयिता क्रमशः मनोहर शर्मा और भीमराज वीरूभ हैं। मेघराज 'मुकुल' राजस्थानी में सरस कविता करते हैं। 'सैनाणी' इनकी एक बहुत लोकप्रिय कविता है। इसका 'रिकार्डिंग' भी हाल में हुआ है। भरत व्यास भी राजस्थानी के अच्छे कवि हैं। इनकी फुटकर कविताएँ बहुत प्रचलित हैं।

खड़ी बोली के कवि राजस्थान में सैकड़ो हैं। इनमें सर्वश्री जयनारायण व्यास, सुमनेश, गणपतिचंद्र भंडारी, देवीलाल सामर, कन्हैयालाल ओझा, उदयसिंह भटनागर, हरिनारायण शर्मा 'किंकर', शकुन्तला कुमारी इत्यादि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

सातवाँ प्रकरण

प्राचीन और अर्वाचीन गद्य

गद्य-निर्माण की परिपाटी राजस्थान मे वहुत प्राचीन काल से चली आती है। चौदहवी शताब्दी की कुछ गद्य रचनाएँ प्राप्त हुई है जिनकी भाषा वहुत साफ-सुथरी, प्रवाहपूर्ण एव व्यवस्थित है और वर्णन-शैली भी सयत है इससे मालूम पडता है कि राजस्थानी गद्य का जो रूप इन रचनाओ मे दृष्टिगत होता है वह इस शताब्दी से पूर्व गद्य का विकसित रूप है। अनुमानत राजस्थानी गद्य का प्रारभ तेरहवी शताब्दी के मध्य से हुआ है।

राजस्थानी पद्य की तरह राजस्थानी गद्य के भी प्रारभिक विकास मे जैन विद्वानो का हाथ विशेप रहा है। इनकी अनेक छोटी-छोटी रचनाएँ मिलती है। जिनमे परोक्ष या अपरोक्ष में जैन धर्म के सिद्धान्तो का निरूपण किया गया है। भाषा इनकी वहुत सहज और स्पष्ट है। वर्णन-प्रणाली सरस और रोचक है।

अनेक जैनेतर रचनाओ का भी पता है। इनमे कुछ तो पूरी गद्य मे है और कुछ मे गद्य और पद्य दोनो है। ख्यात, वात इत्यादि गद्यात्मक रचनाओ का उल्लेख पहले भूमिका मे हो चुका है। इनके अतिरिक्त वहुत से प्राचीन ताम्रपत्र, पट्टे, परवाने आदि मिले हैं जिनके द्वारा भी प्राचीन राजस्थानी गद्य के स्वरूप पर अच्छा प्रकाश पडता है।

प्रारभ से लेकर आज तक के राजस्थानी गद्य के कुछ नमूने यहाँ दिए जाते है जिनसे विदित होगा कि किस तरह राजस्थानी गद्य का उत्तरोत्तर विकास हुआ है तथा उसका स्वरूप वदला है—

"ज्ञानाचारि पुस्तक पुस्तिका सपुट सपुटिका टीपणा कवली उतरी ठवणी पाठा दोरी प्रभृति ज्ञानोपकरण अवज्ञा, अकालि पठन अतिचार विपरीत कथनु उत्सूत्रप्ररूपणु अश्रद्धान प्रभृतिकु आलोयहु। दर्शनाचारि देव द्रव्यु भीक्षितु उपेक्षितु प्रज्ञाहीनत्वु जिनभुवन आसातना अवीयति देवपूजा गुरुद्रव्यग्रहणु गुर्णनिदा द्रव्यलिंगिएमउ ममर्गु विवआशातना स्थापनाचार्य-आशातना शका आकाक्षा विचिकित्सा मिथ्यादृष्टि प्रसमा मिथ्यादृष्टिप-रिचउ ए पाच अतिचार आलोयउ"।

—आराधना (स० १३३०)

"ग्रामि एक अति दरिद्रताकरी दुक्खित डोकरी एक हूँती। हसउ इनइ नामि तेहनउ दीकिरउ एकु हूँतउ। मु आजीविका कारणि ग्रामलोक तणा वाछरू चारतउ। अनेरइ दिनि मध्या समइ उद्यान-वन हूँतउ वाछरू ले आवतउ हूँतउ मु सर्पि डसिउ, मूर्च्छा आवी, तिहाईजि महाविषवेग नगनु हूँतउ हेठउ ढलिउ। जिम काष्ठु निश्चेष्टु हुयइ तिम थाई महीपीठि पडिउ किणिहिं एकि ग्राम माहि आयकरी डोकरी आगइ कहिउ—ताहरउ दीकिरउ सर्पि डसिउ। बाहिरि अचेतनु थाई पडिउ छइ। तउ पाछइस डोकरी नेतीही जि वार मत्र तत्र यत्र पडित मेली करी रोयती हूती दीकिरा कन्हइ आवी"।[1]

—तरुणप्रभ (स० १४११)

"इसी नही हो ठाकुरै। इसी कीजै। गळै। सत माँ सालगराम तुलसी की माला घातीजै। राजा अचळेसर का आवासा माँ लीहडी करता जाईजै। जितरा जितरा पग दीजै तितरा अस्वमेध ज्याग का फळ लीजै। इणि विधि जै जीव निवेदीजै तौ सूरिजमण्डल भेदीजै। तितरै बात कहता वार लागै। अस्सी जण सहस चाळीस को संघाट आइ सप्रापति हुवौ छै। किसी एक

---

१ डोकरी=बुढिया। वाछरू=पशु। दीकिरउ=बेटा।

बाळी-भोळी अवळा प्रौढ। षोडस वरस की राणी-राउताणी। आप आपका देवर-जेठ-भरतार कौ पुरषारथ देखती फिरे छै[२]।"

—शिवदास (स० १४८५)

"धरती वीघा तीन मै सुर प्रव मे उदक आघाट श्री रामार अर्पण कर देवाणी सो अणी जमी रो हांसल भोग डड वराड लागत वलगत कुडा नवाण रुख वरख आंवा महुडा मेर को खडम सरव सुदी थारा वेटा पोता सपुत कपुत खायाँ पायाँ जायेला[३]।"

—ताम्रपत्र (स० १५३२)

"पछै सुलतान री फोजाँ नै दिली री फोजाँ ले नै राउ चूडे 'उपर नागोर आयो। राउ चूडो नागोर मारीया पछै केल्हण अपूठो गयो।"

—राठोडाँ री वसावळी (स० १६००)

"वलि को बधणहार। सवही वात सामर्थ। श्री कृष्ण रुपमणीजी वाँह पकडि रथ उपरि वैसाणी। तवै वाहर वाहर हुई। कहण लागा जु कोई होय सु दौडिज्यौ। हरणाषी कहता रुकमणीजो हरि कहता कृष्ण हरि ले गयो[४]"।

—वेलि क्रिसनरुपमणी री टीका (स० १६८३)

---

२ घानीजै=पहनो। लोहडो=युद्ध। निवेदीजै=छोडिए। सघाट=समूह। सप्रापति=एकत्र।

३ सूर=सूर्य्य। प्रव=पर्व। उदक देवाणी=सकल्प कर दान मे दी। डड=दड। वराड=कर। लागत=महसूल। वलगत=दातव्य। कुडा=कुएँ। नवाण=जलाशय रुखु=रुक्ष। वरख=वृक्ष। आँवा=आम्र। महुडा=महुआ। मेर=पहाड, आस पास। खडम=स्वामिगत अधिकार।

४ वैसाणी=विठाई। वाहर=आवाज। हरणाषी=हरिणाक्षि

"कोई नमद माहे साह गयो थो। तिकँ एक मृतक देह दीठी थी। तिण री वात राणा कुभा नु कही। तद राणो कुभो चित भरमीको हुयो क्यू ही री क्युं ही बोलै। तद कुम्भल्मेर रहता। सु गढ ऊपर ऐक ठो मामा कुड छै। मामा वड छै। तठै राणो वेठो थो। कुम्भा रै वेटो मुदायत उदो थो। तिण मार कटारी याँ नै आप पाट बैठो।"

—मुहणोत नणसी (स० १७१९)

"पछै ब्रामण मीदो ले नै तळाव उपर रोटी करवा वैठो। जठै तळाव री तीर एक मीडक आयो। आवे न वामण थी कही। देवता तोहे तो मे अठे कदी नही देख्यां। तु कठे जाअ है। जदी वामण कहै। हूँ उजीण रहो छूं नै गया जी जाऊ छूं।"

—प्राचीन वार्ता (स० १८००)

"यण रीति उदियापुर महर गणगोर रा हुगाम मडिया। सागर री तीर पागडा छाडिया। ऊँचै ढाळ तपत निवास कियो। सो जाण जै क सत-सुक्रत रो सिघासण प्रगट थियो। तिकण रै सीस श्री दीवाण आप विराजिया। भाई भगा मोळा ही उमराव आप-आप री बैठक हाजिर थिया।"[7]

—रामदान (स० १८६०)

"इण वात रै अनतर ही एक समय चीतोड मे कमठाणाँ रो काम चालताँ कोई धातू री एक मूर्ति च्यारि हाथ धारण कीधाँ भूतल माँहि थी नीसरी।

---

५. तिकँ=उसने। दीठी=देखी। तिण=उस। चित भरमीको=चित-भ्रम।

६ मीदो=आटा। मीडक=मेढक। उजीण=उज्जैन।

७ हुगाम=आनद। पागडा छाडिया=घोटे से उतरे। ढाल=उतार। ठो=जगह। मुदायत=मतलवी, महत्वाकाक्षी।

जिकण रो भाव विचारण रै काज राणै हम्मीर आप री सभा मे मगाई परिकर रा लोका नू प्रत्येक पूछि परीक्षा करी। जिकण मूर्ति रै एक हाथ नीचे दूजो हाथ ऊँचो तीजो वीच मे तिरछो रहिये। अर चौथो हाथ कठ रै लागो देखि आप आप री उपल्वधि रै अनुसार सारां ही जुदो-जुदो भाव कहियों।"

—कविराजा सूरजमल (स० १९००)

"परन्तु मारवाडी भाषा री न तो कोई व्याकरण है, न कोई पढण री किताबा है, और न कोई इण भाषा री खूबिया नै जाणै है। भाषा री मुख्य खूबी आ है, कै भाषा मावरा वाळी हुवणी, सो जिसी मावरादार भाषा मारवाड री है इसी दूसरी एक पण नही है, परन्तु इण भाषा री व्याकरण और किताबा न हुवणा सूं इण री खूबिया री राख में ओटियोडा अगारवाळी दशा है। अतएव लोग इण भाषा नै कुछ माल नही समझै है, और कठेई भाषा सवधी वात चालै है तो मारवाडी भाषा री वडी निंदा करै है।"

—रामकर्ण (स० १९५३)

"आ सही है कै राजस्थानी सम्मेलन प्रात री अेक आवश्यकता ही और है। उण जैडो सजीव साहित्यिक सस्था द्वारा प्रात री नीव मजवूत वण सकै है। आज भाषा और सस्कृति रे आधार माथे जद नुवे प्रात निर्माण रो सवाल उठ रयो है उण टेम समझदारी तो आ है कै राजस्थानी सम्मेलन रा पदाधिकारी आप रो सगठन कर जल्दी सूं जल्दी घडी-घडाई योजनावा माथै चालणो शुरु कर देवे। या प्रात री नई पीढी ने सम्मेलन री जिम्मेवारी सूंप कर आन्दोलन रो गति अवरोध दूर करै।"

—श्रीमन्त कुमार व्यास (स० २००४)

---

८ कमठाणा रो=भवन-निर्माण का। जिकण रो=जिसका। परिकर=परिग्रह। उपलब्धि=ज्ञान।

लगभग सं० १९०० तक राजस्थानी मे गद्य निर्माण की परपरा बनी रही। परन्तु इसके अनतर जब से भारत मे राष्ट्रीयता की लहर उठी और हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने की चर्चा होने लगी तब से प्रान्तीय भाषा के मोह को छोड कर राजस्थान के साहित्यकारो ने हिन्दी गद्य लिखना प्रारभ कर दिया और शुद्ध साहित्यिक राजस्थानी गद्य का विकास प्राय रुक गया। अतएव उस समय से राजस्थानी गद्य का इतिहास एक तरह से राजस्थान मे हिंदी गद्य ही का इतिहास है।

परन्तु इधर पाँच-सात वर्षो से राजस्थान के साहित्यकारो का ध्यान पुन राजस्थानी गद्य की ओर गया है और कुछ ने राजस्थानी गद्य की बहुत प्रौढ और सुन्दर कृतियाँ प्रस्तुत की हैं। दो-एक पत्र-पत्रिकाएँ भी राजस्थानी मे निकलने लगी है और राजपूतना विश्वविद्यालय के पाठयक्रम मे राजस्थानी को स्थान दिलाने के भी प्रयत्न हो रहे है। विभिन्न रियासतो मे लोकप्रिय सरकारो के स्थापित हो जाने से आशा की जाती है कि राजस्थानी के प्रचार को अब अधिक बल मिलेगा।

राजस्थान के पुराने गद्य लेखको का विवरण पिछले पृष्ठो में यथास्थान दिया गया है। आधुनिक काल के कुछ वद्द सम्मानित गद्यकारो का परिचय यहाँ दिया जाता है।

श्यामलदास

ये दधिवाडिया गोत्र के चारण मेवाड राज्य के ढोकलिया ग्राम के निवासी थे। इनके पूर्वज मारवाड राज्यान्तर्गत मेडते परगने के गाँव दधि-वाडा मे रहते थे और रूँण के साँखले राजाओं के 'पोलपात' थे। जब राठौरो ने साँखलो से उनका राज्य छीन लिया तब वे मेवाड मे चले आए। उनके साथ श्यामलदास के पूर्वज भी यहाँ आकर बसे। दधिवाडा गाँव से आने के कारण ये दधिवाडिया कहलाये।

इनका जन्म स० १८९३ मे हुआ था। इनके दादा का नाम रामदीन और पिता का नाम कमजो था। ये चार भाई थे—ओनाड़सिंह, श्यामलदास ब्रजलाल और गोपालसिंह। इन्होंने दस वर्ष की आयु मे सारस्वत पढना प्रारम किया और उसके बाद वृत्तरत्नाकर, साहित्य दर्पण, रसमजरी, कुवलयानद इत्यादि ग्रन्थो का अध्ययन किया जिससे सस्कृत-काव्य के प्राय सभी अगो का इन्हे अच्छा बोध हो गया। स० १९१२ तक विद्याभ्यास चलता रहा। इस अर्से मे इन्होंने सस्कृत के सिवा उर्दू-फारसी और डिंगल मे भी अच्छी दक्षता प्राप्त कर ली। इन्होंने दो-एक ग्रथ ज्योतिष तथा वैद्यक के भी पढे थे।

इनका पहला विवाह स० १९०७ मे शाकरड़ा के भादकलाजी की बेटी से हुआ। स० १९१९ मे इनके एक पुत्र हुआ जो तीन वर्ष बाद मर गया। फिर तीन कन्याएँ और दो पुत्र हुए, जो बहुत छोटी अवस्था मे परलोक सिधार गये। इन्होंने दूसरा विवाह स० १९१६ मे किया था। इनके एक भी पुत्र जीवित नही रहा जिससे इन्होंने अपने छोटे भाई के पुत्र जसकरण को गोद ले लिया था। श्यामलदासजी का देहान्त स० १९५१ मे हुआ।

श्यामलदास एक सभा-चतुर, नीति-निपुण एव स्पष्टभाषी पुरुष थे और महाराणा सज्जनसिंह के इतने कृपा-पात्र थे कि उनके दाहिने हाथ समझे जाते थे। इसलिए लोग इनसे प्राय बहुत जलते थे। इनका एक कारण यह भी था कि ये हाँ-हुजूरी नापसद करते थे और कितना ही प्रतिष्ठित व्यक्ति क्यो न होता उसे खरी-खरी सुनाये बिना नही रहते थे। ये कहा करते थे कि अपने मतलब के लिए मीठी-मीठी बातें तो सभी कह देते हैं। पर हितकारक कटु बात कहनेवाले कम मिलते हैं। अत कटु सत्य कहने का काम मेरा है। ये महद्राज सभा (State Council) के मेम्बर थे और इतिहास-कार्यालय, पुस्तकालय, म्यूजियम आदि की देख-रेख भी करते थे। इसके सिवा राजकाज सम्बन्धी प्राय सभी महत्वपूर्ण विषयो पर इनकी सलाह ली जाती थी।

मेवाड राज्य के प्रति की हुई सेवाओ के कारण कविराज का सम्मान भी खूब हुआ। महाराणा सज्जनसिंह ने इन्हे 'कविराज' की पदवी जुहार, ताजीम, छडी, बाँह्-पसाव, चरण-शरण की मुहर, पैरो मे सर्व प्रकार का सुवर्ण भूषण और पगडी मे माँझा आदि देकर इनकी प्रतिष्ठा बढाई जिसका वर्णन इन्होने स्वय ही निम्नलिखित छप्पय मे किया है—

> जिम जुहार ताजीम, पाय लगर हिम पटके॥
> पूरण बाँह पसाव खळा अदवा मन खतके॥
> जाहिर छडी जळेव, थरु बीडो जस थापण।
> माँझो पाव मँझार, छाप कागळ वड छापण॥
> कविदास तेण कविराज कर, कठिन अक विधि कापिया।
> करि शुभ निगाह श्यामल कुरव, सज्जन राण समापिया॥

अग्रेजी सरकार ने भी इनकी योग्यता की कदर कर इनको महामहोपाध्याय का खिताव दिया था। महाराणा साहव के प्रसन्न होने से मेवाड के पोलिटिकल एजेंट कर्नल इम्पी ने अपनी कोठी पर दरवार किया और कविराजा को 'कैसरे. हिन्द' का तगमग्ग देकर कहा कि आपने महाराणा साहव को समय-समय पर वहुत उत्तम सलाहें दी है, जिससे खुश होकर अँग्रेज सरकार आपको यह तगमा देती है।

श्यामलदास कवि और इतिहासकार दोनो थे। पर राजस्थान मे इनकी कीर्ति का आधार इनकी कविताएँ नही वल्कि इनका लिखा 'वीरविनोद' नामक इतिहास ग्रन्थ है। यह वृहद् इतिहास दो भागो मे विभक्त है और रायल चौपेजी साइज के २७०० पृष्ठो मे समाप्त हुआ है। महाराणा शम्भुसिंह की आज्ञा और कर्नल इम्पी के आग्रह से स० १९२८ मे इसका लिखना आरभ हुआ और महाराणा फतहसिंह के राजत्व-काल मे स० १९४९ मे इसकी समाप्ति हुई। इसके लिए सामग्री जुटाने आदि मे मेवाड राज्य का

१०००००) रु० व्यय हुआ था। ग्रथ छप तो गया पर महाराणा फतहसिंह ने कुछ विशेष कारणो से इसका प्रकाशित होना मुनासिब न समझा और इसका प्रचार रोक दिया। इसलिए छप जाने पर भी वह सर्व साधरण के काम मे न आ सका। कई वर्षों तक बद कोठरियो मे पडा रहा। वर्तमान महाराणा साहब ने अब इसको बेचने की आज्ञा देकर इतिहास-प्रेमियो का बडा उपकार किया है। 'वीरविनोद' इतिहास का एक स्टैण्डर्ड ग्रथ है और मेवाड के इतिहास पर प्रमाण समझा जाता है। इसमे मुख्यत मेवाड का इतिहास वर्णित है पर प्रसगवश जयपुर, जोधपुर, जैसलमेर आदि राजस्थान की दूसरी रियासतो तक बहुत से मुसलमान बादशाओ का विवरण भी इसमे आ गया है, जिससे इसकी उपादेयता और भी बढ गई है। प्राचीन शिलालेखो, दानपत्रो, सिक्को, बादशाही फरमानो इत्यादि का इसमे अपूर्व सग्रह हुआ है।

भाषा पर श्यामलदास का असाधारण अधिकार था। ये बहुत चुस्त, चलती हुई और मुहावरेदार भाषा लिखते थे। इनकी भाषा मे अरबी फारसी के शब्द अधिक प्रयुक्त हुए हैं। इतने अधिक कि वह हिन्दी न रह कर एक तरह से उर्दू हो गई, है सिर्फ लिपि नागरी है। उदाहरण लीजिए—

"बादशाह ने उन लोगो की सालह पर बिलकुल खयाल न किया और यही जवाब दिया कि राणा के आये बगैर इस लडाई से हाथ उठाने मे मुझे शर्म आती है, और उन दोनो सरदारो से फर्माया कि राणा के हाज़िर हुए बिना यह अर्ज मजूर नही हो सकती। तब डोडिया सांडा ने अर्ज की कि हमारे मालिक तो पहाडी मुल्क के राजा हैं और पहाडी लोगो मे जहालत (असभ्यता) ज्यादा होती है, वे इस वक्त मौजूद नही है। इसलिए उनके हाजिर होने का इकरार हम लोग नही कर सकते। हम लोगो को, जो पेशकश देकर लाचारी करते है, जबरदस्ती मारना बादशाही कायदे के खिलाफ है, इस पर जयपुर के राजा भगवानदास ने बादशाह के कान मे झुककर अर्ज की

देखिए यह कैसा गुस्ताख आदमी है कि शहनशाही दरबार मे गस्ल कळामी से पेश आता है। अकबर शाह तो बडा कदरदान था। उसने फरमाया, कि यह शख्स जो अपने मालिक की नमकख्वारी पर मुस्तैद होकर सवालों के जवाब बेधडक दे रहा है इनाम के लायक है। इससे राजा भगवानदास को, जिसने अदावत से चुगली खाई थी, शर्मिन्दा होना पडा।"

शिवचंद्र

शिवचन्द्र भरतिया जाति के अग्रवाल वैश्य थे। इनके पूर्वज जोधपुर राज्य के डिडवाणा गाव के निवासी थे, जहाँ से वे हैदराबाद राज्यान्तर्गत कन्नड ग्राम मे जाकर बस गये थे। वहीं स० १९१० मे इनका जन्म हुआ था। इनके दादा का नाम गगाराम और पिता का बल्देव था। अपने पिता के चार पुत्रो मे ये सबसे बडे थे। परन्तु पिता की मृत्यु के बाद उनकी समस्त धन-सम्पत्ति तीनो छोटे भाइयो ने आपस मे बाँट ली और इनके कुछ भी हाथ न लगा। इसलिए इन्होंने व्यापार करना छोड वकालत करना शुरू किया। परन्तु वकालत में इनका जी न लगा और जाकर इन्दौर मे सरकारी नौकरी कर ली। इनका देहान्त १९७५ मे हुआ।

भरतियाजी संस्कृत , हिन्दी, मराठी और राजस्थानी भाषा के सुज्ञाता और दर्शन-शास्त्र के प्रकृष्ट विद्वान् थे। इन्होंने १७ ग्रन्थ हिंदी मे, १३ मराठी मे, ९ राजस्थानी मे और तीन सस्कृत भाषा मे लिखे जिनसे इनकी विद्वत्ता, गहरे अनुशीलन, दीर्घकालिक अनुभव, विस्तृत पठन तथा कठोर परिश्रम का पता लगता है। राजस्थानी भाषा के ग्रथो के नाम ये है —

(१) केसर विलास नाटक, (२) फाटका जजाल नाटक, (३) बुढापा की सगाई नाटक, (४) कनक सुन्दर, (५) मोतियाँ की कठी, (६) वैश्य प्रबोध, (७) विश्रान्त प्रवासी, (८) सगीत मानकुवर नाटक और (९) बोध दर्पण।

शिवचन्द्र आदर्श चेता साहित्यकार और सहृदय समाजसेवी थे। इनके ग्रन्थो मे प्रखर पाडित्य और सूक्ष्मतम दार्शनिकता का गाभीर्य है। अपनी प्रतिभा एव कल्पना के बल से इन्होने हिंदू समाज, विशेषत मारवाडी समाज, की दुर्बलताओ तथा कुरीतियो का यथार्थ चित्रण किया है। भाषा की सफाई भी खूब है। विचार सुलझे हुए, मर्मस्पर्शी और बोधगम्य है। इनकी राजस्थानी भाषा का नमूना देखिए —

"वाह पडितजी महाराज ! खूब आछो उपदेश दीनो। आप म्हाँ लोगो को भलो करवा वाळा साँचा पुरोहित छो। आपको एक-एक अक्षर मोत्याँ सू भी महगो छे। म्हे तो म्हाँकी जाण माहे कोई बुरो काम कीनो छे नाही पचा को कोई अपराध कीनो छे नाही तथा जात की कोई कार भी उलाघी छे नाही। बुरो काम नाही कर कर भी पचा म्हाको न्यूतो बन्द कीनो छे तिकारो जित्तो अफसोस नही उत्तो हाल आपके सामने आछा आछा आवरूदारा का घरा माहे—म्हे आगे कह्या परवाणे—चोडे-चोडे अनरथ हो रह्या छै तिका कानी पचा को लक्ष्य नही ओर बीकी पचायत भी नही ! तिकारो घणो-घणो अफसोस छे ! ! जाणा हा, म्हाका घर को न्यूतो बन्द होवेलो नही। दस-पाच पच म्हाका भी साथी हो जावेला। आ पचायत ओर इन्साफ कायका छे-जात माहे फूट मचणी छे, ओर कुछ भी नही।"

देवीप्रसाद

मुशी देवीप्रसाद जाति के कायस्थ थे। इनका जन्म अपने नाना के घर जयपुर मे स० १९०४ मे हुआ था। इनके पिता का नाम नन्थनलाल था। मुशीजी पहले टोक राज्य मे नौकर थे, फिर महाराजा जसवतसिह के समय मे स० १९३६ के आस-पास जोधपुर चले आये। जोधपुर मे इन्होने मुसिफ का काम किया और मर्दुमशुमारी के महकमे पर भी रहे। ये एक परिश्रमी, बहुपठित तथा ज्ञान-पिपासु व्यक्ति थे और अपनी धुन के बडे पक्के थे।

जिस काम को अपने हाथ मे लेते उसे पूरा कर ही के छोडते थे। सरकारी नौकरी के अलावा जितना भी समय शेष रहता उसे ऐतिहासिक खोज के काम मे लगाते थे। ये अरबी-फारसी तो खूब जानते थे, पर सस्कृत का यथेष्ट ज्ञान न था। इसलिए प्राचीन शिलालेखो के पढने मे सस्कृत के पडितो की सहायता लेते थे। सस्कृत न जानने का पछतावा भी इन्हे आयु पर्य्यन्त रहा। फारसी ग्रन्थो के आधार पर इन्होने बहुत से ग्रथ लिखे जिनसे मुसलमान कालीन इतिहास पर अच्छा प्रकाश पडता है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी को इन्होंने १००००J का दान दिया था, जिसके व्याज से ऐतिहासिक पुस्तकें छापी जाती है। इनका देहावसान स० १९८० मे हुआ।

मुशी जी ने छोटे-मोटे कुल मिलाकर सख्या मे पचास से ऊपर ग्रथ लिखे जिनके नाम ये है —

(१) अकबर (२) शाहजहाँ (३) हुमायू (४) तुहमास्य (५) बाबर (६) शेरशाह (७) रत्नसिंह (८) विक्रमादित्य (चित्तौड) (९) बणवीर (१०) उदयसिंह (११) प्रतापसिंह (१२) पृथ्वीराज (जयपुर) (१३) पूरणमल (१४) रतनसिंह (१५) आसकरण (१६) राजसिंह (जयपुर) (१७) भारमल (१८) भगवानदास (१९) मानसिंह (२०) बीकाजी (२१) नराजी (२२) लूणकरण (२३) जैतसी (२४) कल्याणमल (२५) मालदेव (२६) बीरबल (२७) मीराबाई (२८) जसवन्तसिंह (२९) खानखाना (३०) औरगजेब (३१) जसवन्त स्वर्गवास (३२) सरदार सुख समाचार (३३) विद्यार्थी विनोद (३४) स्वप्न राजस्थान (३५) मारवाड का भूगोल (३६) प्राचीन कवि (३७) बीकानेर राज्य पुस्तकालय (३८) इसाफ सग्रह (३९) नारी नवरत्न (४०) महिला मृदुवाणी (४१) मारवाड के प्राचीन शिलालेखो का सग्रह (४२) सिंध का प्राचीन इतिहास (४३) यवन राज वशावली (४४) मुगल वशावली (४५) युवती योग्यता (४६) कविरत्नमाला (४७) अरबी भाषा मे सस्कृत ग्रन्थ (४८) रूठी

रानी (४९) परिहारवंश प्रकाश (५०) परिहारो का इतिहास (५१) राज रसनामृत और (५२) सागा।

मुशी देवीप्रसाद ने कोई बहुत बडा तथा क्रमबद्ध इतिहास कहीं का भी नहीं लिखा। परन्तु अकबर, प्रताप, मीरांबाई आदि की जीवनियाँ बडे अनुसधान के बाद लिखी गई है और इनमे उनकी शोध-बुद्धि, विद्वत्ता और ऐतिहासिक ज्ञान का परिचय मिलता है। ये बहुत सरल, व्यावहारिक एव चलती हुई भाषा लिखते थे और शब्दाडम्बर तथा किसी बात को घुमा-फिरा कर कहने के विरुद्ध थे। इनकी भाषा-शैली मे उर्दू-हिन्दी का अपूर्व सम्मेलन हुआ है। विषय प्रतिपादन-प्रणाली सादी तथा वाक्यावली सुलझी हुई होने से इनके ऐतिहासिक ग्रन्थों के पढने मे उपन्यासो के पढने का-सा आनद आता है। इनकी स्वतन्त्र भाषा का थोडा-सा नमूना देखिए—

"हे राजन् ! जो मैं कहता हूँ उसे आप अभिमान छोडकर सुनें। जब न तो मैं ही कुत्ते से कम हूँ और न आप राजा युधिष्ठर से बढकर है, तो फिर मेरी और आपकी बातचीत होने से दरबारी लोग क्यो बुरा मान रहे और खफा हो रहे हैं। सुनिए इस असार ससार मे मनुष्य का नाशवान शरीर ममता मे ठहरा हुआ है, जो यह न हो तो किसी का काम ही न चले। देखिए, जैसे आपको अपने अलकारो से सजे हुए शरीर का अहकार है वैसे ही हम गरीबो को भी अपने नगे-बडगे शरीरो का है। आपको बडे-बडे महलोवाली अपनी राजधानी जैसी प्यारी है वैसे ही मुझे भी अपनी यह बुरी-सुरी झोपडी अच्छी लगती है जिसकी खिडकी घडे के घेरे से सजाई गई है और जो जन्म दिन से माता के समान मेरे दुख-सुख की साथिनी रही है।"

प० लज्जाराम

प० लज्जाराम मेहता हिन्दी साहित्य के अमर जीवो मे से एक हैं। इनका जन्म स० १९२० चैत्र कृष्णा २ को बूदी मे हुआ था। ये नागर ब्राह्मण

थे। इनके पूर्वज बडनगर के रहनेवाले थे जहाँ से वे राजस्थान मे आ बसे थे। इनके पिता का नाम गोपालराम और पितामह का गणेशराम था। पडितजी १८ माह तक गर्भवास मे रहे थे। इसलिए माँ के उदर से ही बहुत सी बीमारियाँ अपने साथ लेकर आये थे। इनकी ६८ वर्ष की आयु मे एक दिन भी ऐसा नही निकला जब इन्हे कोई न कोई शारीरिक कष्ट न रहा हो। खाँसी इनकी चिरसगिनी रही। बवासीर, हृद्रोग आदि व्याधियो के कारण इनको अपना जीवन एक भार-सा मालूम देता था। रात को नीद नही आती थी। इसलिए इन्होने दिन मे दो बार अफीम का सेवन करना शुरू कर दिया था। आँखो की कमजोरी को दूर करने के लिए तमाखू भी खूब सूघते थे।

मेहताजी को स्कूली शिक्षा बहुत कम मिली थी। पर बाद मे अपने निजी परिश्रम द्वारा इन्होने अग्रेजी, सस्कृत, हिन्दी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओ का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। सवत् १९३८ मे जब इनके पिता की मृत्यु हो गई तब इनको 'कपडा की दूकान' पर उनकी जगह १२) मासिक की नौकरी मिली। वहाँ से इनका तबादला सरकारी स्कूल मे हुआ। पर ये एक ईमानदार, निष्पक्ष और अपने विचारो पर दृढ रहनेवाले व्यक्ति थे इसलिए यहाँ भी इनका टिकाव अधिक दिनो तक न हो सका। राज-कर्मचारियो की धीगा-धीगी तथा अपने जातीय भाइयो के षडयन्त्रो से तग आकर इन्होने सरकारी नौकरी छोड दी और जीविकार्थ बबई चले गए। बबई मे ये पहले 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' के सहकारी सपादक और बाद मे प्रधान सपादक बनाए गए। सुयोग्य और बहुभाषा ज्ञानी तो ये थे ही। इस क्षेत्र मे बहुत जल्दी चमक गये। स० १९६० तक ये 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' के सपादक रहे। बाद मे वापस बूदी चले गए। इस बार बूदी का वातावरण इनके लिए अधिक अनुकूल रहा। बूदी नरेश महाराव राजा रघुवीरसिहजी ने इन्हे अपने यहाँ नौकर रख लिया और स्पष्टभाषी, निष्पक्ष

एव विश्वसनीय समझकर कई तरह से इनकी प्रतिष्ठा बढाई। इनका देहान्त स० १९८८ मे बूदी मे हुआ।

पडित जी के कोई सतान नही हुई। उनके भानजे श्रीयुत रामजीवनजी आजकल उनकी धन-सपत्ति के मालिक है। ये भी हिन्दी के बहुत अच्छे लेखक और बहुपठित विद्वान् है। इनकी 'देशी बटन' 'कौतुक-माला', 'मुक्ता', इत्यादि दस के लगभग पुस्तकें छप चुकी हैं।

प० लज्जाराम जी सनातन धर्म के कट्टर अनुयायी और हिन्दू आदर्शों के पूर्ण पक्षपाती थे। हिन्दी की सेवा भी इन्होंने खूब की। स० १९८६ मे होनेवाले हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के सभापति चुने जाने के लिए मेहताजी का नाम समाचार-पत्रो मे निकला था। पर कुछ तो शारीरिक अस्वस्थता के कारण और कुछ यह समझकर कि देशी राज्य मे रहकर इस तरह के उत्सवो मे सम्मिलित होना ठीक नही होगा, इन्होंने उक्त पद को स्वीकार नही किया। इन्होंने २३ ग्रन्थ लिखे जिनमे मे १३ उपन्यास और शेष ऐतिहासिक तथा सग्रह ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थो के नाम ये है —

(१) कपटी मित्र, (२) धूर्त चरित्र (३) शरावी की खरावी (४) विचित्र स्त्री चरित्र (५) बीरबल विनोद (६) हिन्दू-गृहस्थ (७) धूर्त रसिकलाल (८) स्वतन्त्र रमा और परतन्त्र लक्ष्मी, (९) विक्टोरिया चरित्र, (१०) अमीर अबदुर्रहमान, (११) आदर्श दपति (१२) भारत की कारीगरी (१३) सुशीला विधवा (१४) बिगडे का सुधार (१५) विपत्ति की कसौटी (१६) उम्मेदसिंह चरित्र (१७) पराक्रमी हाडाराव (१८) जुझार तेजा (१९) आदर्श हिन्दू (२०) ० गगादास का चरित्र, (२१) ओक्षणस गोत्र का वशवृक्ष (२२) आप बीती (२३) पन्द्रह लाख पर पानी।

मेहताजी ने उपन्यास अधिक सख्या मे लिखे हैं। हिन्दी उपन्यास वस्तु, चरित्र, टैकनीक आदि की दृष्टि से आज बहुत उन्नत है। अत बीस-तीस

वर्षों पहले के लिखे इनके उपन्यास आजकल के उपन्यासो के साथ नही खडे किये जा सकते। परन्तु इनकी भी उपयोगिता है। इनमें उस समय के हिन्दू समाज का सही खाका खीचा गया है जो अव आगे आनेवाली पीढी के लिए इतिहास का काम देगा।

पडितजी हिन्दी के मँजे-मँजाये लेखक थे। ये वहुत जल्दी लिखते थे और वहुत अच्छा लिखते थे। इनकी भाषा वडी सरल, मुहावरेदार और प्रवाह युक्त है। ओज और व्यग भी उसमे पर्याप्त पाया जाता है। उदाहरण—

"वूदी के उपलब्ध पडितो और डिंगल तथा पिंगल के नामी नामी कवियो मे से चुने हुए व्यक्ति इसमे नियत किये गये थे। मैं भी उनमे पाँचवाँ सवार था। मैंने एक काम किया और वह समस्त सभ्यो के पसन्द आया। करता यह था कि जिस पद्य के अर्थ मे कुछ उलझन दिखाई देती और सव लोग अपनी अपनी राय पर उसका अर्थ खेंचते थे फौरन ही पेन्सिल कागज लेकर उसका अर्थ अपनी वुद्धि के अनुसार लिखता और उस पर वहस होकर तुरन्त एक मार्ग निकल आता था। प्रयोजन यह कि जो कुछ मेरे ध्यान मे आया कच्चा-पक्का अर्थ मैंने पत्रारूढ कर दिया। इससे इधर मेरी झझट ओछी हो गई और उधर लोगो को वहस कर निर्णय करने के लिए भूमि मिल गई। इस तरह से कई मास तक काम अच्छी तरह से चलता रहने के अनतर अकस्मात् कई अनिवार्य कारणो से काम अधूरा छूट गया।"

रामकर्ण

प० रामकर्ण का जन्म स० १९१४ मे जोधपुर राज्य के वडलू नामक गाँव मे अपने नाना के घर हुआ था। ये दाहिमा ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम वलदेवजी और माता का शृगार देवी था। पडित जी का आदि

स्थान मेडता था जहाँ इनके पूर्वज ज्योतिष का काम किया करते थे। स० १९०१ मे इनके पिता मेडता छोडकर जोधपुर मे जा बसे थे।

पाँच वर्ष की अवस्था मे पडितजी की शिक्षा प्रारंभ हुई। हिन्दी तथा गणित का थोडा-सा ज्ञान हो जाने पर आपने सारस्वत पढना शुरू किया, जिसके साथ-साथ श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध का पाठ भी चलता रहा। तदनतर रघुवश आदि काव्य एव ज्योतिष-वैद्यक के ग्रन्थ भी पढे। फिर अपने पिता के साथ बबई चले गए, जहाँ प्रज्ञाचक्षु, प० गट्टूलाल के पास रह-कर सिद्धातकौमुदी, महाभाष्य, वेदान्त, न्याय, साहित्य आदि अनेक विषयो का गभीर अध्ययन किया। बबई से आने पर ये जोधपुर के दरबार हाई स्कूल मे अध्यापक नियुक्त हुए, जहाँ पूरे १८ वर्ष तक बडी सच्चाई और लगन के साथ काम किया। बाद मे इनका तबादला राजकीय इतिहास विभाग मे हो गया। तब से २८ वर्ष तक ये जोधपुर के इतिहास विभाग मे रहे। यहाँ पर इनका मुख्य कार्य प्राचीन शिलालेखो, ताम्रपत्रो आदि को पढना था। इन्होने सैकडो पुराने शिलालेख, ताम्रपत्र, पट्टे, परवाने इत्यादि पढे और पुरातत्व शोधक कई यूरोपीय विद्वानो के पढे हुए लेखो का सशोधन कर उन्हे इण्डियन एण्टिक्वेरी और एपिग्राफिया इडिका मे छपवाया। भारतीय पुरातत्व-विभाग के तत्कालीन डाइरेक्टर सर जान मार्शल पडितजी की प्रतिभा पर मुग्ध थे। अपनी अनेक रिपोर्टों मे उन्होने इनकी विद्वत्ता की बडी प्रशसा की है। एक बार उन्होने इनके विषय मे लिखा था—"पडित रामकर्ण असाधारण गुणी मालूम होते है और प्राचीन लिपि पढने के परिज्ञान के कारण भारत भर के प्रथम स्थानीय आधे दर्जन विद्वानो की गणना मे आते है।

सस्कृत, हिन्दी, डिंगल आदि भाषाओ के सुज्ञाता होने के साथ ही साथ पडित जी इतिहास के भी बहुत बडे खोजी और विद्वान् थे। ये दो साल तक कलकत्ता विश्वविद्यालय मे राजपूत इतिहास के लेक्चरार भी रहे थे।

डिंगल भाषा के तो ये अद्वितीय अधिकारी माने जाते थे। स० १९७१ में बंगाल की रायल एशियाटिक सोसायटी के तत्वावधान में जिस समय प्रसिद्ध इटालियन विद्वान् डा० टैसीटरी ने राजस्थान में डिंगल-भाषा के ग्रंथों की खोज का कार्य प्रारम्भ किया, उस समय रामकर्ण जी उनके प्रधान सहकारी थे। सच तो यह है कि अधिकतर इनके उद्योग और अध्यवसाय के कारण डा० टैसीटरी को अपने शोधकार्य में इतनी सफलता मिली थी। इसके अतिरिक्त डा० टैसीटरी को डिंगल-भाषा का प्रारंभिक ज्ञान भी इन्होंने करवाया था। बाद में जब डा० टैसीटरी ने डिंगल-ग्रन्थों के संपादन का काम शुरू किया, तो उसमें भी इनका पूरा-पूरा हाथ था। ये उन ग्रंथों के कठिन शब्दों एवं स्थलों के अर्थ करते जाते थे और डा० टैसीटरी उनके नोट आदि अंग्रेजी में लिख लेते थे।

वृद्धावस्था में पंडितजी डिंगल भाषा का एक बृहत् कोष तैयार करने में लगे हुए थे जिसके लिए कठोर परिश्रम करके उन्होंने ६०००० शब्दों एवं हजारों कहावत-मुहावरों का संग्रह किया था। परन्तु दुःख है कि यह कोष प्रकाशित भी नहीं हो पाया था कि स० २००२ आश्विन सुदी ११ शनिवार को उनका स्वर्गवास हो गया।

हिन्दी, संस्कृत एवं राजस्थानी के सब मिलाकर पंडितजी ने कोई ७५ ग्रन्थों का प्रणयन, संपादन व अनुवाद किया। इनमें नीचे लिखे पाँच ग्रंथ, जो प्रकाशित भी हो चुके हैं, विशेष उल्लेखनीय हैं—

(१) राजरूपक, (२) सूरज प्रकास (३) नैणसी की ख्यात, (४) मारवाड़ का मूल इतिहास, (५) मारवाड़ी व्याकरण और (६) बाँकीदास ग्रन्थावली (प्रथम भाग)।

पंडितजी हिन्दी के उत्कृष्ट लेखक थे। इनकी भाषा उस भाषा का अच्छा नमूना है जिसे आज कुछ लोग विशुद्ध हिन्दी बतलाते हैं। ये बहुत प्रौढ़, परिमार्जित एवं सजीव भाषा लिखते थे जिसमें संस्कृत शब्दों की

बहुलता रहती थी। इनके लेखो मे व्यर्थ का पिष्टपेषण नही मिलता। कुछ न कुछ नई बात अवश्य कहते थे और जो भी कहते उसे प्रमाण द्वारा पुष्ट भी करते जाते थे। इनकी भाषा का नमूना देखिए—

"डिंगल भाषा अपभ्रश भाषा का ही स्वरूप है। उसकी जन्मदात्री सस्कृत और प्राकृत भाषा है। मुसलमानो के आगमन से पूर्व प्राय भारत के समस्त प्रदेशो मे सस्कृत और प्राकृत का प्रचार अधिक होने से समस्त साहित्य और धर्म ग्रन्थ सस्कृत और प्राकृत मे निर्माण किये जाते थे। वैदिक और बौद्ध ग्रन्थ बहुधा सस्कृत मे लिखे जाते थे, और जैन ग्रन्थो की रचना प्राय प्राकृत मे और उनकी टीका, विवृत्ति आदि की रचना सस्कृत मे होती थी। परन्तु साहित्य के अगभूत नाटक ग्रन्थो मे दोनो भाषाएँ समान रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। इन दोनो भाषाओ के अतिरिक्त तीसरी प्राचीन देशी भाषा थी, जो सदा बोलचाल मे आती थी। वह भाषा मथुरा आदि के प्राचीन शिलालेखो मे देखने मे आती है। सस्कृत और प्राकृत के शब्द बिगडने और प्राचीन देशी भाषा के शब्द मिश्रित होने से जो भाषा बनी, वही अपभ्रश भाषा कही जाने लगी। उस अपभ्रश भाषा का उदाहरण हेमचन्द्राचार्य ने, जो अणहिलवाडा के चालुक्य राजा सिद्धराज जयसिहदेव और कुमारपाल के समय मे थे, अपने व्याकरण मे यह दिया है—

ढोला मइ तुहुँ वारिया, मा कुरु दीहा माणु।
निदरा गमिही रत्तडी, दडवड होइ विहाणु" ॥

हरिनारायण

पुरोहित हरिनारायण का जन्म जयपुर राज्य के एक उच्च पारीक कुल मे स० १९२१ मे हुआ था। इनके पिता का नाम मन्नालाल, पितामह का नानूलाल और प्रपितामह का अभयराम था। ये सभी बडे परोपकारी,

स्वामिभक्त तथा धर्मात्मा पुरुष हुए हैं। इनके बनवाये हुए कई मन्दिर आदि आज भी जयपुर मे विद्यमान हैं।

पुरोहित जी की शिक्षा का आरंभ पहले पहल घर ही पर हुआ और जब हिन्दी अच्छी तरह से पढ़ना-लिखना सीख गये तब उन दिनो की पद्धति के अनुसार इन्हें अमरकोष और सारस्वत का अध्ययन कराया गया। इनकी दादी ने इन्हे गीता, सहस्रनाम, रामस्तवराज इत्यादि का अभ्यास कराया तथा बडी बहिन योगिनी मोतीबाई ने धर्म, योगाभ्यास इत्यादि विषयो की ओर प्रवृत्ति कराई। साथ-साथ उर्दू-फारसी का अध्ययन भी चलता रहा। बारह वर्ष की आयु मे ये महाराजा कालेज जयपुर मे भरती हुए और सं० १९४३ मे इन्ट्रेंस की परीक्षा पास की। पुरोहित जी का विद्यार्थी जीवन बहुत ही उज्ज्वल रहा। अपनी कक्षा मे ये हमेशा प्रथम रहे जिससे राज्य की ओर से इन्हें बराबर छात्रवृत्ति मिलती रही। एफ० ए० और बी० ए० की परीक्षाओं मे सर्वप्रथम रहने से इनको दो बार 'लॉर्ड नॉर्थब्रुक मेडिल' तथा सारे मदरसे मे सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी सिद्ध होने से लॉर्ड लेन्सडाउन मैडल' मिला।

कालिज छोड़ने के बाद सं० १९४८ मे सबसे पहले ये जयपुर मे मर्दुमशुमारी के काम की देख-रेख करने के लिए रूम इन्स्पैक्टर नियुक्त हुए। तत्पश्चात इन्होने राज वकील, नाज़िम, स्पेशल सी० आई० डी० आफीसर आदि की हैसियत से कई बडे बड़े ओहदो पर रहकर लगभग ४० वर्ष तक काम किया और अपनी सच्चाई, ईमानदारी एव कार्य कुशलता से राजा और प्रजा दोनो को बडा लाभ पहुँचाया। लोकोपयोगी कार्य भी इनके द्वारा बहुत से हुए। इन्होंने निजामत शेखावाटी तथा तोरावाटी मे राज्य की ओर से कई गोशालाएँ, पाठशालाएँ एव धर्मशालाएँ स्थापित करवाई और अपनी तरफ से जयपुर के पारीक हाईस्कूल को ७०००) से अधिक दान दिया। इनका देहान्त सं० २००२ मे हुआ।

पुरोहितजी बडे विद्याव्यसनी, साहित्य-रसिक तथा कर्मण्य पुरुष थे और दिन रात साहित्याध्ययन मे लगे रहते थे। विशेपकर सत साहित्य का इन्हे बहुत शौक था। इन्होने कोई ३०-३२ ग्रन्थो का प्रणयन सकलन किया जिनमे से नीचे लिखे १२ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं—

(१) विशूचिका निवारण, (२) तारागण सूर्य है, (३) महामति ग्लैडस्टन, (४) सतलडी, (५) सुन्दरसार, (६) महाराजा मिर्जा राजा जयसिंह, (७) महाराजा मिर्जा राजा मानसिंह, (८) ब्रजनिधि ग्रन्थावली, (९) गुरु गोविन्दसिंह के पुत्रो की धर्म-वली, (१०) सुन्दर ग्रन्थावली, (११) शिखर वशोत्पत्ति, (१२) महाकवि गग के कवित्त।

भाषा के विषय मे पुरोहित जी बडे उदार विचारो के लेखक थे। अपने विचारो को ठीक तरह से व्यक्त करने के लिए जो शब्द इनको उपयुक्त प्रतीत होता उसका नि शक होकर प्रयोग करते थे। शब्द चाहे हिन्दी का होता चाहे अरबी-फारसी का और चाहे राजस्थानी का। फिर भी सस्कृत शब्दो की ओर इनका झुकाव विशेप रहता था यह कहना अयथार्थ न होगा। इनकी भाषा बहुत आलकारिक, वर्णन-शैली सरस तथा विचार-व्यजना साहित्यिक होती थी और बडी भावुकता एव स्पष्टता के साथ अपने विषय का प्रतिपादन करते थे। देखिए—

"इसमे सदेह नही कि नागरीदासजी की कविता मे कुछ प्रौढता और शब्दो तथा भावो की जडाई सी प्रतीत होती है। यह ब्रजनिधिजी की कविता उक्त सब गुणो को अपने ढग पर धारण करती हुई स्फीत, निरामय और शुद्ध स्नात भावों को रसीले चटकीले-नुकीलेपन से सीधा-सादा रूप प्रदान करती है। परन्तु ब्रजनिधि जी के भावो का अनूठापन हमे कुछ बढकर जँचता है। दोनो कवियो मे बहुत दृढमूल भावुकता, भक्ति की अनन्यता, मनोभावो की सत्यता और गभीरता अलौकिक है। दोनो के समान

रूप्ट श्री राधा-कृष्ण, या और निकट जाने पर श्री नागरी गुण-आगरी राधिकाजी की है।"

गौरीशंकर

पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का जन्म सिरोही राज्यान्तर्गत रोहेड़ा नामक गाँव में सं० १९२० में हुआ था। ये सहस्र औदिच्य ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम हीराचन्द और दादा का पीताम्बर था। इनके पूर्वज मेवाड़ के रहने वाले थे। किन्तु लगभग ३०० वर्ष से वे सिरोही मे जाकर बस गये थे। पंडितजी के पिता एक विद्यानुरागी तथा कर्मनिष्ठ व्यक्ति थे और अपने तीनों पुत्रों मे इन्हे सब से होनहार एवं चतुर समझते थे। इसलिए अपनी आर्थिक स्थिति खराब होते हुए भी उन्होंने इन्हे ऊँची शिक्षा दिलाने का दृढ निश्चय कर लिया और हिन्दी, संस्कृत, गणित आदि की, जितनी भी शिक्षा उनके गाँव मे मिल सकती थी उतनी प्राप्त कर लेने पर इनके बड़े भाई नन्दराम के साथ इन्हे बम्बई भेज दिया। अर्थ-संकट और नाना प्रकार की कठिनाइयों का सामना करते हुए सं० १९८२ मे पंडितजी ने मैट्रिकुलेशन की परीक्षा पास की और बाद मे विल्सन कालेज मे भर्ती हुए। पर शारीरिक अस्वस्थता के कारण इंटरमीडिएट की परीक्षा मे न बैठ सके और अपने गाँव रोहेड़ा मे चले आए।

बम्बई मे पंडित जी को अपनी मानसिक शक्तियों को विकसित करने का अच्छा अवसर मिला। स्कूल तथा कालेज मे जो पाठ्य पुस्तकें नियत थी, उनके सिवा इन्होंने ग्रीस तथा रोम के इतिहास और पुरातत्व संबंधी बहुत से ग्रंथों का मनन किया। राजस्थान के इतिहास की ओर इनका झुकाव कर्नल टॉड के अमर ग्रंथ 'एनल्स ऐण्ड एण्टिक्विटीज आव् राजस्थान' के पढ़ने से हुआ। अपना ऐतिहासिक ज्ञान बढ़ाने के लिए इन्होंने राजस्थान मे भ्रमण करना निश्चित किया और सबसे पहले उदयपुर आये। जिस समय

ये उदयपुर पहुँचे उस समय वहाँ कविराजा श्यामलदास की अध्यक्षता मे 'वीरविनोद' नामक एक बहुत बडा इतिहास ग्रन्थ लिखा जा रहा था। पडितजी जब कवि राजा से मिले तब वे इनकी इतिहास विषयक जानकारी एव धारणाशक्ति से बहुत प्रभावित हुए और इन्हे पहले अपना सहायक मत्री तथा बाद मे प्रधान मत्री नियुक्त किया। तदनन्तर ये उदयपुर म्यूजियम के अध्यक्ष नियुक्त हुए। स० १९६५ मे ये राजपूताना म्यूजियम, अजमेर, के क्यूरेटर बनाए गए। अजमेर मे रहकर इन्होने इतिहास के शोध का बहुत काम किया जिससे स० १९७१ मे इनको अग्रेज सरकार की ओर से 'रायबहादुर' की और स० १९८५ मे 'महामहोपाध्याय' की उपाधि मिली। स० १९६५ मे जब इनकी लिखी 'प्राचीन लिपिमाला' का दूसरा सस्करण निकला तब इनको हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की ओर से 'मगलाप्रसाद पारितोषिक' दिया गया। हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग के तत्वावधान मे 'मध्यकालीन भारतीय सस्कृति' पर तीन व्याख्यान भी इन्होंने दिये थे जो प्रकाशित हो चुके है। इसके सिवा हिन्दू विश्वविद्यालय ने इनको 'डी० लिट्०' की उपाधि से और हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 'साहित्य-वाचस्पति' की उपाधि से विभूषित किया था। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इनके सम्मानार्थ 'ओझा अभिनन्दन-ग्रथ' भी निकाला था। ये नागरी प्रचारिणी सभा के सपादक और साहित्य सम्मेलन के प्रधान भी रहे थे। इनका देहान्त स० २००४ मे हुआ।

पडितजी इतिहास के धुरधर विद्वान् थे। विशेषकर राजस्थान के इतिहास का इन्हें असाधारण ज्ञान था और उस पर अथॉरिटी समझे जाते थे। हमारे देश मे ऐसे विद्वानो की बहुत कमी है जो इतिहासकार होने के साथ-साथ पुरातत्वज्ञ और मुद्रा-विज्ञानवेत्ता भी हो। परन्तु पडितजी मे ये तीनो बातें एक साथ पाई जाती थी। इसलिए इनके इतिहास ग्रन्थ छिछले नही, बल्कि प्रामाणिकता और गभीरता लिए हुए है। ये प्राचीन लिपि-

ज्ञान विशेषज्ञ भी थे। इनका 'प्राचीन लिपिमाला' नामक ग्रंथ अन्तर-राष्ट्रीय ख्याति की वस्तु है।

ओझाजी को हिन्दी, संस्कृत, पाली आदि बहुत-सी भारतीय भाषाओं का असाधारण ज्ञान था और अंग्रेजी भी बहुत अच्छी लिखते थे। परन्तु हिन्दी के प्रति प्रेम विशेष होने से इन्होंने अपने सब ग्रंथ हिन्दी ही में लिखे हैं। यह हिन्दी भाषा-भाषियों के लिए बड़े गौरव की बात है। इनके द्वारा रचित तथा संपादित ग्रंथों के नाम ये हैं—

मौलिक ग्रंथ

(१) प्राचीन लिपिमाला (२) भारतीय प्राचीन लिपिमाला (३) सोलंकियों का इतिहास (४) सिरोही राज्य का इतिहास (५) बापा रावल का सोने का सिक्का (६) वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप (७) मध्य-कालीन भारतीय संस्कृति (८) राजपूताने का इतिहास (चार खंड) (९) उदयपुर राज्य का इतिहास (दो भाग) (१०) भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की सामग्री (११) कर्नल जेम्स टॉड का जीवनचरित्र (१२) राजस्थान की ऐतिहासिक दंतकथाएँ (प्रथम भाग) (१३) नागरी अंक और अक्षर।

संपादित ग्रंथ

(१) अशोक की धर्म लिपियाँ (२) सुलेमान सौदागर (३) प्राचीन मुद्रा (४) नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १-१२ (५) कोशोत्सव-स्मारक संग्रह (६) हिन्दी टॉड राजस्थान (पहला और दूसरा खंड) (७) जयानक प्रणीत पृथ्वीराज विजय महाकाव्य सटीक (८) जयसोम रचित कर्मचन्द्र वंशोत्कीर्तनक काव्यम् (९) मुहणोत नैणसी की ख्यात (दूसरा भाग) (१०) गद्य रत्नमाला (११) पद्य रत्नमाला।

ओझाजी के ग्रंथों का अध्ययन करते समय सबसे पहली बात जो स्पष्ट रूप से सामने आती है वह इनकी विशुद्ध भाषा। ये बहुत संयत, व्यव-हारिक एवं प्रौढ भाषा लिखते थे और सरल तो वह इतनी होती थी कि

जिस किसी को हिन्दी भाषा का थोडा सा भी ज्ञान होता वह बहुत सुगमता से उसे समझ लेता था। जहा तक हो सकता पडितजी शुद्ध संस्कृत शब्दो से ही काम लेते थे, पर अरबी, फारसी आदि के शब्दो का प्रयोग भी इन्होने न्यूनाधिक किया है। लेकिन सिर्फ ऐसे ही शब्दो का जो कई शताब्दियो से हिन्दी मे प्रयुक्त होते आ रहे हैं और हिन्दी के माने जा चुके हैं, जैसे मजूर अर्ज, कैद, खूब, किला, गरीब, फतह खाली इत्यादि। शब्द किसी भी भाषा का होता पडितजी उसे ठीक तत्सम रूप मे प्रयुक्त करने के पक्षपाती थे। यही बात राजस्थानी भाषा के शब्दो के प्रयोग मे भी देखी जाती है। वैसे यदि देखा जाय तो प्रान्तीयता का प्रभाव इनकी भाषा पर बिल्कुल नही है। पर जहाँ कही प्रान्तीय शब्दो का व्यवहार करना पडा है, उन्हे इन्होने ठीक उसी रूप मे लिखा है, जिस रूप मे वे वास्तव मे बोले जाते हैं, जैसे चित्तौड, राणा, मेवाड, रावळ, मीरावाई, खुँमाण, इत्यादि। राजस्थान के बहुत से तथा राजस्थान के बाहर के प्राय सभी हिन्दी-लेखक इनके स्थान पर क्रमश राठौर, चित्तौर, राना, मेवार, रावल, मीरा, खुमान आदि शब्दो का प्रयोग करते हैं, जो वस्तुत अशुद्ध है। ये शब्द राजस्थान मे इस तरह से कभी बोले ही नही जाते।

पडितजी की सभी रचनाओ मे धारावाहिकता का आनन्द खूब मिलता है। सामान्यत ये बहुत छोटे छोटे वाक्य लिखते थे और प्रत्येक वाक्य जजीर की कडी की तरह एक दूसरे से जुडा हुआ रहता था। पडित्याभिमान, अस्वाभाविकता तथा व्यर्थ का वागाडवर इनके ग्रथो मे नही मिलता। इनकी दृष्टि सदैव तथ्य निरूपण की ओर रहती थी। इसलिए ये ऐसे शब्दो का प्रयोग करते थे जो बहुत सरल तथा प्रसगानुसार उपयुक्त होते थे। ऐतिहासिक सत्य को कायम रखते हुए यदि कही अवसर मिलता तो आलकारिक भाषा मे साहित्यक छटा भी थोडी-बहुत दरसा देते थे। ऐसे स्थलो पर इनके वाक्य कुछ लम्बे अवश्य हो जाते थे पर इससे वर्णन मे सजीवता

आ जाती थी और विचार-सामग्री मे लदे हुए पाठक के मस्तिष्क को बडा सहारा मिलता था जिससे ग्रथ को आगे पढने का चाव बराबर बना रहता था। उदाहरण देखिये—

"राजपूत जाति के इतिहास मे यह दुर्ग एक अत्यन्त प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ असख्य राजपूत वीरो ने अपने धर्म और देश की रक्षा के लिए अनेक बार असिधारारूपी तीर्थ मे स्नान किया, और जहाँ कई राजपूत वीरागनाओ ने सतीत्व रक्षा के निमित्त धधकती हुई जौहर की अग्नि मे कई अवसरो पर अपने प्रिय बाल-बच्चो सहित प्रवेश कर जो उच्च आदर्श उपस्थित किया वह चिरस्मरणीय रहेगा। राजपूतो के लिए नही, किन्तु प्रत्येक स्वदेश-प्रेमी हिन्दू सतान के लिए क्षत्रिय रुधिर से सिंची हुई यहाँ की भूमि के रजकण भी तीर्थरेणु के तुल्य पवित्र है।"

और भी—

"ऐसे ही चित्तौड का महाराणा कुभा का कीर्तिस्तम्भ एव जैनस्तम्भ, आबू के नीचे की चन्द्रावती और झालरापाटन के मन्दिरो के भग्नावशेष भी अपने बनानेवालो का अनुपम शिल्पज्ञान, कौशल, प्राकृतिक सौन्दर्य तथा दृश्यो का पूर्ण परिचय और अपने काम मे विचित्रता एव कोमलता लाने की असाधारण योग्यता प्रकट करते है। इतना ही नहीं, किन्तु ये भव्य प्रासाद परम तपस्वी की भाति खडे रहकर सूर्य्य का तीक्ष्ण ताप, पवन का प्रचण्ड वेग और पावस की मूसलाधार वृष्टियो को सहते हुए आज भी अपना मस्तक ऊँचा किये, अटल रूप मे ध्यानावस्थित खडे, दर्शको की बुद्धि को चकित और थकित कर देते है।"

सूर्य्यकरण

ये पारीक ब्राह्मण थे। उनका जन्म स० १९६० मे हुआ था। इनके पिता का नाम उदयलाल था। इन्होने हिन्दू विश्वविद्यालय काशी से हिंदी-

अंग्रेजी मे एम० ए० किया था। ये बिडला कालेज, पिलाणी, के वाइस प्रिंसिपल तथा हिंदी-अंग्रेजी के प्रोफेसर थे। इनका देहान्त स० १९९६ मे हुआ था।

पारीकजी बडे उत्साही साहित्य-सेवी एव हिन्दी-राजस्थानी के समर्थ विद्वान् थे और बडी लगन के साथ नूतन साहित्य का निर्माण और प्राचीन साहित्य का सग्रह, सशोधन एव सपादन कर रहे थे। राजस्थान के आधुनिक काल के विद्वानो मे ये पहले व्यक्ति थे जिन्होने अपनी भाषा और साहित्य से उदासीन राजस्थान-वासियो का ध्यान अपनी मातृभाषा की ओर आकृष्ट किया और उसकी साहित्यिक समृद्धि एव विशेषताओ को उनके सामने रखा। उनका यह प्रयत्न एक ऐतिहासिक घटना है जिसे कभी भुलाया नही जा सकता।

इन्होने १५-२० उच्च कोटि के साहित्यिक लेख लिखे और तेरह ग्रथो का निर्माण व सपादन किया जिनके नाम ये है—

(१) कानन कुसुमाजली (२) मेघमाला (३) ज्योत्स्ना (४) गद्य गीतिका (५) बोलावण (६) रति रानी (७) मित्रो के पत्र (८) वेलि क्रिसन रुकमणी री (९) ढोला मारू रा दूहा (१०) जटमल ग्रन्थावली (११) छन्द राव जैतसी रौ (१२) राजस्थानी वार्ता और (१३) राजस्थान के लोकगीत।

पारीकजी सहृदय साहित्यकार और सूक्ष्मदर्शी समालोचक थे। ये बहुत प्रौढ, परिमार्जित एव मधुर भाषा लिखते थे और इस बात को खूब जानते थे कि किसी तथ्य को खाली लिख देना ही साहित्य नही है जब तक कि उसके लिखने के ढग मे कुछ और विशेषता या अनूठापन न हो। इसलिए जिस बात को भी वे लिखते उसे ऐसे हृदयग्राही एव रमणीय ढग से लिखते थे कि उनके विचारो से सहमत न होते हुए भी पाठक के दिल पर उनकी छाप बैठ जाती थी। इनकी लेखन-शैली स्वर्गीय पडित रामचन्द्र शुक्ल की

शैली मे बहुत कुछ मिलती-जुलती है। वही बल, वैसी ही गहराई, उतना ही सौष्ठव इनके गद्य मे भी पाया जाता है। बल्कि भाषा-प्रवाह इनमे उनसे भी अधिक मिलता है। उदाहरण—

"भारतवर्ष मे भले दिनो का सूत्रपात हो रहा है। चारो ओर से आशा का नव प्रभात झलकने लगा है। इस नवयुग के प्रकाश मे हमारे भाग्य विधायको का ध्यान सबसे पहले शिक्षा सुधार की ओर जाना स्वाभाविक है। तो क्या हम आशा न करें कि निकट भविष्य मे हमारे विद्यालय इस नवप्रभात की सुवर्णमयी कोमल किरणो के प्रकाश से देदीप्यमान वे सरस्वती के मन्दिर बनेंगे, जिनमे प्रवेश करते हुए मातृ-भाषा की मधुर मुसकान हमारा दुलार करेगी, अपनी सस्कृति की द्वार-शिला पर मस्तक टेकते हुए हमारा हृदय श्रद्धा से भरा होगा, और सभ्य आचरण और उच्च विचारो के अन्त प्रकाश मे आत्म-विश्वास, देश-प्रेम, निर्भीकता, परमेश-भक्ति, उदारता, स्वाभिमान और विश्व-मैत्री का सपूर्ण राग हमारे कठ से ध्वनित होता होगा ? उस दिन जब हम मातृ-मदिर की घटी को विनय सपन्न हाथो से छू देंगे, तब उसके झकार को सारा ससार सम्मानपूर्वक कान लगाकर सुनेगा और माता के चरणो मे अर्पित की हुई हमारी अजलि के पुष्पो की महक दिगत के रस लोभी भ्रमरो को उस ओर श्रद्धापूर्वक आकृष्ट करेगी।"

जिनविजय

मुनि जिनविजय का जन्म स० १९४४ मे मेवाड राज्य के रूपाहेली ठिकाने के एक पँवार क्षत्रिय परिवार मे हुआ। इनके पिता का नाम वृद्धिसिंह और माता का राजकुँवर था। देवीहस नाम के एक जैन यतीश्वर इनके गुरु थे जिन्होने इनको बचपन मे विद्याभ्यास कराया और जैन धर्म की शिक्षा-दीक्षा प्रदान की। मुनिजी का देश-विदेश की अनेक प्रतिष्ठित साहित्यिक सस्थाओ मे सबध रहा है और इस समय राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मदिर के डाइरेक्टर हैं।

जिनविजयजी आदर्शचेता पुरुष और साहित्यिक तपस्वी हैं। इनका सारा जीवन साहित्य-सेवा में व्यतीत हुआ है और आजकल भी दिन भर साहित्याध्ययन और साहित्यान्वेषण में लगे रहते हैं। ये बहुभाषा ज्ञानी हैं। संस्कृत, प्राकृत, पाली, अपभ्रंश, गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी आदि अनेक भाषाओं का इन्हें भारी ज्ञान है। इसके सिवा इतिहास, पुरातत्व आदि विषयों पर भी प्रमाण माने जाते हैं। इन्होंने कोई ५० ग्रंथों का संपादन, संकलन व निर्माण किया है जिनका देश-विदेश के विद्वानों में बड़ा आदर है।

मुनिजी हिन्दी के अनन्य प्रेमी हैं। यथासंभव हिंदी ही में लिखते हैं। ये संस्कृतमय भाषा लिखते हैं जो बहुत परिष्कृत और कर्णमधुर होती है। उर्दू, फारसी आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों के प्रयोग के पक्ष में ये नहीं हैं। इनकी भाषा में कहीं-कहीं गुजराती का रंग भी देखने में आता है। नमूना लीजिए—

"उसके संपादकों को रासो की प्राचीन भाषा का कुछ विशेष ज्ञान रहा हो ऐसा प्रतीत नहीं हुआ। बिना प्राकृत, अपभ्रंश और तद्भव पुरातन देश्य भाषा का गहरा ज्ञान रखते हुए इस रासो का संशोधन-संपादन करना मानो इसके भ्रष्ट कलेवर को और भी अधिक भ्रष्ट करना है। इस ग्रंथ में हमें कई गाथाएँ दृष्टिगोचर हुई जो बहुत प्राचीन होकर शुद्ध प्राकृत में बनी हुई हैं, लेकिन वे इसमें इस प्रकार भ्रष्टाकार में छपी हुई हैं जिससे शायद ही किसी विद्वान् को उसके प्राचीन होने की या शुद्ध प्राकृतमय होने की कल्पना हो सके। यही दशा शुद्ध संस्कृत श्लोकों की भी है। संपादक महाशयों ने, न तो भिन्न-भिन्न प्रतियों में प्राप्त पाठान्तरों को चुनने में किसी प्रकार की सावधानता रखी है, न खरे-खोटे पाठों का पृथक्करण करने की चिन्ता की है, न कोई शब्दों या पदों का व्यवस्थित संयोजन या विश्लेषण किया गया है न विभक्ति अथवा प्रत्यय का कोई नियम ध्यान में रखा गया है। सिर्फ 'यादृश पुस्तके दृष्ट तादृश लिखित मया।' वाली उक्ति का अनुसरण किया गया मालूम देता है।

झाबरमल

पंडित झाबरमल शर्मा का जन्म सं० १९४५ में जयपुर राज्यान्तर्गत खेतड़ी ठिकाने के जसरापुर नामक गाँव में हुआ। इनके पिता का नाम रामदयाल था। ये संस्कृत, हिंदी, राजस्थानी आदि भाषाओं के प्रौढ़ विद्वान् प्रतिष्ठित इतिहासकार एवं गद्य-पद्य लेखक हैं और कई वर्षों से साहित्य-सेवा कर रहे हैं। 'भारत', 'ज्ञानोदय', 'मारवाड़ी,' 'कलकत्ता-समाचार' और "हिंदू-संसार" नामक पत्रों के संपादक भी ये रहे हैं। उन्होंने पन्द्रह से अधिक ग्रंथों का निर्माण व संपादन किया है जिनमें से नीचे लिखे ग्यारह ग्रंथ छप चुके हैं।—

(१) भारतीय गोधन (२) अरविंद चरित्र (३) सांभर का इतिहास (४) खेतड़ी का इतिहास (५) खेतड़ी नरेश (६) विवेकानन्द (७) आदर्श नरेश (८) भारतीय देश रत्नों की कारावास कहानी (९) केसरीसिंह-समर (१०) लिमिटेड कंपनियाँ, और (११) तिलक गाथा।

पंडितजी एक अनुभवी साहित्यकार और सिद्धहस्त लेखक हैं। ये संस्कृत-मय हिंदी लिखते हैं जो विषय-वस्तु का एकान्त अनुसरण करती है। इनकी लेखन-शैली गंभीर, स्वाभाविक और चित्ताकर्षक होती है। इनके इतिहास विषयक ग्रन्थों के पढ़ने से पाठक को उपन्यास का सा आनन्द आता है और वह सरलता से इतिहास की वस्तु को हृदयंगम करता हुआ चलता है। इनकी भाषा का नमूना लीजिए,—

"इतिहास परिणाम था अवसाद और उस अवसाद ने उनका पिंड अब तक भी नहीं छोड़ा है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि, अवसाद कर्तव्य का शत्रु है। जिस जाति अथवा व्यक्ति के यहाँ अवसाद को स्थान मिला कि, वह अपने उच्च कर्तव्यों की ओर से मुँह फेर लेता है। राजस्थान के क्षत्रियों में जो विलासिता और मद्य-पानादि दोष अधिक मात्रा में दिखलाई दे रहे हैं,

उनके मूल मे वही अवसाद काम कर रहा है। उस अवसाद-ग्रस्त क्षत्रिय जाति मे अजीतसिंह के समान कर्तव्य-तत्पर तेजस्वी पुरुष का जन्म ग्रहण करना निस्सन्देह ईश्वर की कृपा का फल था।"

विश्वेश्वरनाथ

इनका जन्म स० १९४७ मे जोधपुर नगर मे हुआ। इनके पिता का नाम मुकुन्द मुरारि था जो काश्मीर की राजधानी श्रीनगर से आकर जोधपुर मे बस गए थे। स० १९६६ मे पडित जी ने सस्कृत-साहित्य की आचार्य परीक्षा पास की और एक वर्ष बाद जोधपुर के इतिहास-कार्यालय मे लेखक नियुक्त हुए। वहाँ रह कर इन्होने प्राचीन लिपियो, मुद्राओ, मूर्तियो इत्यादि का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया और उत्तरोत्तर उन्नति करते हुए इतिहास कार्यालय के अध्यक्ष बन गए। इस समय इनके अधिकार मे उक्त कार्यालय के अतिरिक्त सरदार म्यूजियम, पुस्तक प्रकाश आदि पाँच महकमे और भी है।

पडित जी इतिहास के प्रख्यात विद्वान् और सस्कृत, हिन्दी-अग्रेजी आदि भाषाओ के अच्छे जानकार है। इन्होने 'भारत के प्राचीन राजवश,' 'राजा-भोज,' 'राष्ट्रकूटो का इतिहास' तथा 'मारवाड का इतिहास' नामक चार ग्रन्थ हिन्दी मे और एक ग्रन्थ अग्रेजी मे लिखा है। इनके अलावा इन्होने फुटकर लेख भी कई लिखे हैं। और शैव-सुधाकर का भाषानुवाद तथा महाराजा जसवतसिंह कृत वेदान्त विषयक पाँच ग्रन्थो एव महाराजा मानसिंह कृत कर्ण-विलास का सपादन भी किया है।

रेउजी सीधी-सादी बोलचाल की हिन्दी लिखते है। इनकी भाषा मे न तो सस्कृत शब्दो की भरमार रहती है और न उर्दू-फारसी के शब्दो की। अपने विषय को ये बहुत विश्वासजनक ढग से प्रस्तुत करते हैं और प्राचीन युद्ध-घटनाओ के वर्णन इस तरह करते हैं कि वे आँखो के सामने सजीव और

यथार्थ से लगते है। विचारो को सरस-तर्कयुक्त शैली मे उपस्थित करने मे ये निपुण है। उदाहरण—

"अजीतसिंह के अपने पुत्र बखतसिंह द्वारा मारे जाने का तो किसी ने भी विरोध नही किया है। परन्तु इसके कारण के विषय मे मतभेद है। टॉड को सूचना देनेवालो नें उसे बतलाया कि अपने बडे भाई अभयसिंह के इशारे से ही बखतसिंह ने यह कार्य किया था और अभयसिंह उस समय देहली में होने से बादशाह के दबाव मे था। इस हत्या के करनेवाले के लिए ५६५ गावो के सहित नागौर का परगना इनाम मे रक्खा गया था। कहते है कि अभयसिंह की इस पाशविक प्रवृत्ति को उत्तेजित करने मे कृतघ्न सैय्यद-भ्राताओ का भी हाथ था, क्योकि वे फर्रुखसीयर को गद्दी से उतारने के समय अजीतसिंह द्वारा किये गये विरोध का बदला लेना चाहते थे। अब इस विषय मे कुछ बातो पर साधारणतया विचार करना आवश्यक है। क्या ऊपर लिखा पारितोषिक बखतसिंह को इस हत्या के लिए उत्तेजित करने को पर्याप्त था? सभव है कि वह अधिक चालाक न हो, परन्तु वह इतना बेवकूफ भी न था कि जो ऐसी बदनामी को, अपने फायदे को छोडकर केवल अपने भाई के फायदे के लिए अथवा उस जागीर के लिए, जो कि राजपूतो के आम रिवाज के अनुसार उसके पिता की प्राकृतिक मृत्यु के बाद भी उसे मिल जाती, अपने सिर लेता।"

घनश्यामदास

बिडलाजी भारत के विख्यात व्यापारी है। इनके सत्कार्यों की ख्याति भारत भर मे है। इनका जन्म स० १९४८ मे राजा बलदेवदास बिडला के घर पिलाणी मे हुआ। ये राजनीति और अर्थशास्त्र के विशेषज्ञ है। साथ ही साहित्यकार, अध्येता और विचारक भी है। राजस्थानी भाषा, साहित्य एव सस्कृति के ये बडे प्रेमी तथा पृष्ठ-पोषक है और कई वर्षो से राजस्थान के

प्राचीन साहित्य का सग्रह-सशोधन करवा रहे है। इन्होने सात ग्रथ लिखे है जिनका हिन्दी भाषा-भाषियो मे वडा आदर है। ये ग्रथ खडी वोली मे है। नाम ये हैं—

(१) वापू (२) डायरी के पन्ने (३) रुपये की कहानी (४) विखरे विचार (५) ध्रुवोपाख्यान (६) श्री जमनालाल जी, और (७) कर्जदार से साहूकार।

बिडलाजी वहुत सीधी-सादी भाषा लिखते है। इनकी अपनी शैली है और अपना दृष्टिकोण। राजनीति, धर्म, शिक्षा आदि विषयो पर इन्होने गभीरतापूर्वक विचार किया है और इन पर इनकी अपनी कुछ निश्चित धारणाएँ हैं जिनको ये वडी दृढता, सच्चाई और मौलिक विधि से सामने रखते है। इनकी रचनाओ मे भावुकता की अपेक्षा वुद्धि-तत्व अधिक पाया जाता है। गाँधीवाद की भी हलकी-सी झाँई देख पडती है। इनके गद्य का थोडा-सा नमूना यहाँ दिया जाता है। यह इनकी 'वापू' नामक पुस्तक से लिया गया है—

"अहिंसा को राजनीति मे गाँधीजी ने जान-बूझ कर प्रविष्ट किया है, क्योकि राजनीति मे अधर्म विहित है, ऐसा मानकर हम आत्मवचना करते थे। उलझन मे इसलिए पड गए है कि जहाँ हम गदगी का पोषण करना चाहते थे, वहाँ गाँधीजी ने हमे पानी और सावुन दिया है। हम हैरान है कि पानी और सावुन से हमारी गन्दगी की रक्षा कैसे हो सकती है। और यह हैरानी सच्ची है, क्योकि गन्दगी की रक्षा किसी हालत मे न होगी। वस, यही उलझन है, यही पहेली है और इसी ज्ञान मे शका का समाधान है।"

हरिभाऊ

हरिभाऊ उपाध्याय का जन्म स० १९४९ मे हुआ। ये राजस्थान के प्रमुख राजनैतिक कार्यकर्ता और ख्यात-नामा लेखक हैं। इन्होंने अठारह

ग्रथ लिखे है जिनमे से कुछ मराठी, गुजराती, अग्रेजी और सस्कृत ग्रन्थो के अनुवाद और कुछ मौलिक हैं। इनके नाम ये है—

(१) मौलिक—स्वतन्त्रता की ओर, बुदबुद, स्वगत, युगधर्म (जब्त), हिन्दू-मुसलमान, मनन, अहिंसा के अनुभव।

(२) अनुवाद—सम्राट अशोक (म०), रागिनी (म०), काबूर (म०), मेरे जेल के अनुभव (गु०), आत्मकथा (गु०), काग्रेस का इतिहास (अ०), मेरी कहानी (अ०), बोलशेविज्म (म०), जीवन-शोधन (गु०), हिन्दी गीता (म०) और कृतार्थ जीवन (स०)।

इन ग्रथो के अतिरिक्त हरिभाऊजी ने फुटकर लेख-कविताएँ भी सैकडो की सख्या मे लिखी हैं और 'मालव-मयूख', 'नवजीवन', 'त्यागभूमि', 'राजस्थान' और 'जीवन-साहित्य' नामक पत्रो का सपादन भी बडी योग्यता के साथ किया है।

उपाध्यायजी उच्चकोटि के साहित्यकार, आदर्शवेत्ता लोकनायक तथा गभीर विचारक है। इन्होने जो कुछ भी लिखा है वह देश-हित और देशोत्थान की भावना से प्रेरित होकर लिखा है। अत देशभक्ति से ओत-प्रोत इनकी रचनाएँ मनुष्यो को उच्च आदर्शों की ओर ले जाती और उनमे नवीन जीवन का सचार करती है। इनके प्रारभिक ग्रथ विशुद्ध हिन्दी मे है। परन्तु इधर कुछ वर्षों से ये हिन्दुस्तानी लिखने लग गये हैं। इनकी भाषा सरल और विचार-वैभव से लदी हुई होती है। व्यर्थ का वागाडबर और पाडित्य प्रदर्शन इनमे कही दिखाई नही देता। कठिन विषय को भी इस तरह समझाते हैं कि उससे पाठक के मन मे अरुचि पैदा नही होती, उसका ध्यान बराबर विषय की ओर बना रहता है। इनके ग्रन्थो को पढते वक्त हमे यह नही मालूम होता कि हम कोई ग्रथ पढ रहे है, बल्कि ऐसा भास होता है कि उपाध्यायजी के पास बैठे हुए उनसे बातचीत कर रहे है। उदाहरण—

"हिंदी-समाज की वर्तमान आवश्यकता क्या है? शृगार-विलास या शूर-वीरता! निस्सदेह शूर-वीरता। इसमे दो मत हो नही सकते। फिर हिंदी-साहित्य मे शृगार विलास प्रधान साहित्य की सृष्टि क्यो हो रही है? पुस्तको के मुख-पृष्ठ पर, मासिक पत्रो के भीतर-बाहर सब जगह कामिनियो के चित्र हम क्यो देखते है? हमारा समाज क्षय रोग से दिन-दिन क्षीण हो रहा है। हम उसकी सेवा-शुश्रूषा के लिए रभा और मेनकाओ की नियुक्त करते है और इतना ही नही हम उन्हे हाव-भाव-कटाक्षो के प्रयोग के लिए भी स्वाधीनता दे देते हैं, मानो हमारे इतिहास मे माताओ, देवियो और साध्वियो की कमी है, जो हमे नायिकाओ की सृष्टि का कार्यालय खोलना पडता है। इसका क्या कारण है? हमारा ध्यान रोगी का रोग दूर करने की तरफ उतना नही है, जितना रोगी को रिझाने की तरफ है। यदि हम चाहते हो कि हमे बल पौरुष की आवश्यकता है तो हमे यह वृत्ति बद कर देनी चाहिए।"

सुख सपतिराय

ये भडारी कुलोत्पन्न ओसवाल महाजन है। इनका जन्म स १९५२ मे जोधपुर राज्य के जैतारण गाँव मे हुआ। ये सस्कृत, हिंदी, गुजराती, मराठी, अग्रेजी आदि भाषाओ के सुज्ञाता, सहृदय विद्वान् एव प्रौढ लेखक हैं और 'श्री वेंकटेश्वर समाचार', 'पाटलीपुत्र', 'किसान', प्रभृति पत्रो के सपादक भी रहे है। इन्होने कुल मिलाकर २० ग्रथ लिखे है जिनकी देश के बडे-बडे विद्वानो और नेताओ ने प्रशसा की है। कुछ के नाम ये हैं—

भारत-दर्शन, राजनीति-विज्ञान, तिलक-दर्शन, सुलभ कृषि-शास्त्र, स्वर्गीय जीवन, महात्मा बुद्ध, ज्योतिर्विज्ञान, विज्ञान और आविष्कार, जगत-गुरु भारतवर्ष, डा० जगदीश चद्र बोस और उनके आविष्कार, ससार की क्रातियाँ, रवीन्द्र-दर्शन और भारत के देशी राज्य।

अन्मित ग्रथ पर इनको इंदौर दरबार की ओर से १५०००) का पुरस्कार भी मिला है। इस समय ये अंग्रेजी-हिंदी का एक वैज्ञानिक शब्द-कोष तैयार करने में सलग्न हैं। इसके तीन भाग छप भी चुके हैं।

भंडारी जी संस्कृत-गर्भित भाषा लिखते हैं जो मँजी हुई और श्रुति मधुर होती है। ये जो कुछ कहते हैं, प्रत्यक्ष रूप से और सीधे-सादे शब्दों में कहते हैं। इनकी भाषा में मुहावरों की प्रधानता रहती है और छितरी-बितरी विषय-सामग्री को सुन्दर ढंग से सजाकर गूथना खूब जानते हैं। कथ्य विषय की गहराई भी इनमें पूरी-पूरी पाई जाती है। उदाहरण—

"घटना बहुत साधारण है। पर हिन्दुओं की राज्य कल्पना के वास्तविक उद्देश्यों को बतलाने वाली है। यह घटना बतलाती है कि हिन्दुओं की राज्य कल्पना का आदर्श यह नहीं था कि राजा प्रजा को अपनी इच्छानुकूल चलावे, और देश का शासन भी अपनी व्यक्तिगत इच्छा के अनुसार करे। बल्कि वह आदर्श यह था कि राजा प्रजा का मुख्य कर्मचारी है। और उसका शारीरिक सुख, आकांक्षाएँ और व्यवसाय प्रजा की भलाई के नीचे हैं। उसका कर्तव्य शासन करना है न कि अधिकार। यदि प्रजा की सेवा करने योग्य गुणों की उसमें न्यूनता हो तो उसे सिंहासन-त्याग के निमित्त हमेशा प्रस्तुत रहना चाहिए।"

रामकृष्ण

प० रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' एम० ए० का जन्म स० १९५८ में हुआ। इनके पिता का नाम नन्दकिशोर था। ये महाराजा कॉलेज जयपुर में हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष और हिंदी के प्रोफेसर थे। ये हिंदी के सहृदय विद्वान्, कहानी-लेखक तथा समालोचक थे। कोई चार वर्ष पूर्व इनका देहान्त हुआ। इन्होंने बीस ग्रथ लिखे जिनमें से कुछ प्रकाशित और अप्रकाशित हैं। प्रकाशित ग्रथों के नाम ये हैं—

(१) प्रसाद की नाट्यकला (२) काव्य-जिज्ञासा (३) आधुनिक

हिंदी-कहानिया (४) सुकवि समीक्षा (५) आर्य भापा और सस्कृत (६) रचना-तत्व (७) रचना-रहस्य (८) जीवन-कण (९) गभीर विपयो पर सरल विचार (१०) उसका प्यार (११) ह ह ह और (१२) अमृत और विष।

शुक्लजी प्रौढ लेखनी के धनी थे। इनकी शैली मे सजीवता, प्राजलता, और ओज है। इनको सरल और कठिन दोनो तरह की भाषा लिखने का अभ्यास था। इनकी कहानियो की भापा सरल, लेखादि की अपेक्षाकृत कठिन है। भाषा सरल हो अथवा कठिन वह विषय के अनुकूल चलती है और उसमे इतनी क्षमता है कि वह अनेक प्रकार के भाव, विचार आदि को सफलता पूर्वक व्यक्त कर सकती है। नमूना—

"मनुष्य पशु से मानव तो बना, परन्तु क्या उसकी पशुता दूर हो गई ? पशु मे विवेक तो शायद वैसा नही होता, परन्तु उसमे प्राणित्व तो मनुष्य की ही भाँति है। प्राणिता का रूप केवल साँस लेना ही नही है, उसका तत्व रहना या जीना है। रहने मे सहज सकल्प का भाव है, और सकल्प का अस्तित्व रुचि से है। पशु भी जब रहने का काम करता है तो रुचि का अनुसरण करता है। मनुष्य ने रुचि को ही विवेक से सस्कृत किया है। रुचि के अर्थ मे प्रियता सन्निहित है। प्रियता की वैयक्तिकता मे विवेक का सस्कार है।"

रामसिंह

ये बीकानेर-निवासी तँवर राजपूत है। इनका जन्म स० १९५९ मे हुआ। ये अग्रेजी के एम० ए० और सस्कृत, हिंदी तथा राजस्थानी के मर्मज्ञ विद्वान् है। इनके द्वारा रचित तथा सपादित ग्रथो के नाम ये है—

(१) कानन कुसुमाजली (२) मेघमाला (३) ज्योत्सना (४) वेलि क्रिसन रुक्मणी री (५) ढोला मारू रा दूहा (६) जटमल ग्रथावली (७) छद राव जैतसी रो (८) राजस्थान के लोकगीत (९) गद्य गीतिका (१०) सौरभ (११) किणका और (१२) चद्रसखी के भजन।

अन्तिम तीन ग्रथो का प्रणयन अथवा सपादन इन्होने स्वतत्र रूप से और शेष का अपने मित्रो के साथ किया है।

ठाकुर साहब हिंदी गद्य और पद्य दोनो लिखते हैं और राजस्थानी के भी सिद्धहस्त लेखक हैं। इनकी भाषा सरस विचार-व्यजना कवित्व-पूर्ण और वर्णन-शैली स्वाभाविक होती है। शब्द-गुथन की मधुर ध्वनि द्वारा मन को मोह लेने की एक अद्भुत शक्ति जो इनमे पाई जाती है वह बहुत कम लोगो मे देखने मे आती है। इनके राजस्थानी गद्य का थोडा-सा अश यहाँ दिया जाता है —

"राजस्थानी भाषा मरियोडा नै जिवाया है। राजस्थानी रै प्रताप सू धड सू सिर अळगो हु ज्याणै पर भी सूरमा रण खेत मे जूझ्या है। राजस्थानी री प्रेरणा सू कायर भी सायर वण्या है। इसी यसस्विनी मा रो दूध आपा नही लजासा। माता रै वासते आपा नै सरवस त्यागणो पडे तो भी पग पाछा कोनी देसा। उण री एक झाकी सू ही आपा कृतार्थ हु ज्यासा। अतीत-गौरव री प्राप्ति रै साथै-साथै भविस्य भी ऊजळो वण जासी। आवो, भाई-बहना! आपा सै मिल मातृ मदिर मे प्रेम सू माता री आरती उतारा और आपणी भक्ति रै फळ सरूप जननी रा दरसण पा'र कृतार्थ वणा।"

नरोत्तमदास

ये बीकानेर-निवासी जय श्री रामदासजी के पुत्र हैं। इनका जन्म स० १९६१ मे हुआ। ये हिंदी-सस्कृत दोनो मे एम० ए० हैं। इन्होने हिंदी-राजस्थानी के प्राचीन ग्रथो के सकलन-सपादन आदि का बहुत महत्वपूर्ण काम किया है। इनके १८-२० ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है और लगभग इतने ही अप्रकाशित पडे है। 'राजस्थान रा दूहा' नामक ग्रन्थ पर इनको हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रयाग की ओर से 'मानसिंह पुरस्कार' भी मिला है। इनके प्रकाशित ग्रथो के नाम ये है—

(१) राजस्थान रा दूहा (२) राजस्थान के लोक गीत (३) राजस्थान के ग्राम्य गीत (४) ढोला मारू रा दूहा (५) राजस्थानी भाषा और साहित्य (६) मीरा मदाकिनी (७) सूर समीक्षा (८) सूर साहित्य सुधा (९) तुलसी सुधा (१०) मधु माधवी (११) सरल अलकार (१२) अलकार परिचय (१३) स्वर्ण महोत्सव पाठमाला (१४) हिंदी पद्य पारिजात (१५) हिंदी गद्य साहित्य का इतिहास (१६) कबीरदास (१७) त्रिवेणी (१८) राजिया रा दूहा इत्यादि।

स्वामीजी सस्कृत, हिन्दी राजस्थानी आदि भाषाओ के मर्मज्ञ विद्वान्, हिन्दी के सुयोग्य गद्य-लेखक एव समालोचक है और दिन-रात साहित्य सृजन मे लगे रहते हैं। सीधी-सादी भाषा, छोटे-छोटे वाक्य तथा सुलझी हुई विचार-व्यजना इनकी लेखन-शैली के प्रधान गुण हैं। इनका ध्यान हमेशा विषय स्पष्टीकरण की तरफ रहता है और इसलिए एक ही बात को प्रकारातर से इस तरह समझते है कि वह पाठक के हृदय-पटल पर स्थायी रूप से जम जाती है। शब्दाडबर, पाडित्याभिमान और विषय-वस्तु का अनावश्यक विस्तार इनमे नही मिलता। जो भी कहना होता है उसे सक्षेप मे, शालीनता एव हृदयग्राही ढग से कहते हैं। इनकी भाषा का नमूना लीजिए—

"बात को सक्षेप मे और चुभते हुए ढग से कहने के लिए दूहा बहुत ही उपयुक्त छन्द है। इसी कारण कबीर आदि सत-महात्माओ ने अपनी साखियाँ इसी छद मे कही। रहीम और वृन्द जैसे नीति कवियो ने भी इसी को पसद किया और बिहारी, मतिराम, रसनिधि आदि ने अपनी अपूर्व रस धारा भी इसी मे प्रवाहित की। इन लोगो को जो सफलता तथा लोकप्रियता प्राप्त हुई उसके विषय मे कुछ कहना आवश्यक है। राजस्थानी का अधिकाश लौकिक साहित्य इसी छद मे निर्मित हुआ है। प्राचीन काल से सैकडो

दूहे लोगो की जबान पर चलते है, जिनका बात-बात मे कहावतो की भाँति प्रयोग किया जाता है। राजस्थानी जनता का सर्वप्रिय 'माँड राग' का माधुर्य्य और आकर्षण भी उसके दोहो पर निर्भर है। प्राचीन लौकिक वीरो की कीर्ति इन्ही छोटे-छोटे दूहो की बदौलत नाम-शेष हो जाने मे बच गई है। आज भी प्राचीन ढग से राजस्थानी कहानी कहनेवाले लोग कहानियो के बीच-बीच मे भावपूर्ण स्थलो पर दूहो का प्रयोग करके श्रोता लोगो को मुग्ध करते हैं।"

रघुवीरसिंह

सीतामऊ का राजघराना अपनी साहित्य-सेवा के लिए प्रसिद्ध है। महाराज कुमार डा० रघुवीरसिंह भी इसी घराने के उज्जवल रत्न हैं। ये राठौड नरेश श्रीमान् सर रामसिंह जी बहादुर के युवराज हैं। इनका जन्म स० १९६५ मे हुआ।

डा० साहब भारत के गण्यमान्य इतिहासकार और सिद्धहस्त लेखक है? ये हिन्दी और अग्रेजी दोनो मे लिखते हैं। इन्होने बिखरे फूल, सप्तदीप, शेष स्मृतियाँ, पूर्व मध्यकालीन भारत, एव मालवा मे युगान्तर नामक पाँच ग्रन्थ और अनेक फुटकर लेख लिखे है जिनका विद्वत्ससार मे बडा मान है। इस समय ये मालवे का इतिहास लिखने मे सलग्न है।

उपर्युक्त ग्रन्थो मे 'मालवा मे युगान्तर' इनकी सर्वोत्तम रचना है। यह इनके 'मालवा इन ट्रान्जीशन' नामक अग्रेजी ग्रन्थ, जिस पर इन्हें आगरा विश्वविद्यालय की ओर से डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त हुई है, का हिन्दी रूपान्तर है। ग्रन्थ बडी खोज एव मेहनत के बाद लिखा गया है और लेखक की असाधारण शोध-बुद्धि का परिचायक है। इसकी भूमिका भारत के सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक सर जदुनाथ सरकार ने लिखी है।

महाराज कुमार साहब विशुद्ध हिन्दी के पक्षपाती है। अत उर्दू-फारसी के शब्दो का प्रयोग इनकी भाषा मे कम देखने मे आता है। यथासभव सस्कृत शब्दो से ही काम लेते ह। ये हिन्दी साहित्य के उन इने-गिने विद्वानो मे से है जिन्होने इतिहास और राजनीति की भूमि पर उतरकर भी अपनी कलात्मक विदग्धता का अत्यत अभिराम आकलन किया है। डा० साहब गद्य लिखते है और अपने को गद्यकार ही शायद समझते हैं। परन्तु कवि भी ये पूरे हैं यह बात इनकी 'शेष स्मृतियाँ' से साफ झलकती है जिसमे ऐतिहासिक सत्य और कवि-कल्पना का सुन्दर योग हुआ है। नीचे हम इनके गद्य का थोडा-सा अश उद्धृत करते हैं —

"वैभव से विहीन सीकरी के वे सुन्दर आश्चर्यजनक खडहर मनुष्य की विलास-वासना और वैभव-लिप्सा को देखकर आज भी वीभत्स अटटहास करते हैं। अपनी दशा को देखकर सुध आती है उन्हें उन करोडो मनुष्यो की, जिनका हृदय, जिनकी भावनाएँ, शासको धनिको तथा विलासिको की कामनाएँ पूर्ण करने के लिए निर्दयता के साथ कुचली गई थी। आज भी उन भव्य खडहरो मे उन पीडितो का रुदन सुनाई देता है। अपने गौरवपूर्ण भूतकाल को याद कर वे निर्जीव पत्थर भी रो पडते है। अपने उस बाल वैधव्य को स्मरण कर वह परित्यक्ता नगरी उसासें भरती है। विलास-वासना, अतृप्त कामना तथा राजमद के विष की बुझाई हुई ये उसासे इतनी विषैली हैं कि उनको सहन करना कठिन है। इन्ही आहो की गरमी तथा विष से मुगल साम्राज्य भस्मीभूत हो गया। अपनी दुर्दशा पर ढलके हुए आँसुओ के उस तप्त प्रवाह मे रहे-सहे भस्मावशेष भी बह गए।"

जनार्दनराय

प० जनार्दनराय नागर एम० ए० का जन्म स० १९६५ मे उदयपुर मे हुआ। इनके पिता का नाम प्राणलाल था। ये हिन्दी के परम प्रेमी,

अच्छे साहित्यकार एवं सार्वजनिक कार्यकर्ता हैं और भाषण-कला मे भी निपुण हैं। मेवाड़ मे हिन्दी की उन्नति, हिन्दी के प्रचार और हिन्दी की गौरव-वृद्धि के लिए जो अथक उद्योग इन्होंने किया है वह एक इतिहास की बात है। इन्होंने अनेक गद्य-काव्य और कहानियाँ लिखी हैं जिनकी स्वर्गीय प्रेमचन्द्र ने बहुत बड़ाई की है। साहित्य, राजनीति, शिक्षण-कला आदि विषयों पर फुटकर लेख भी इन्होंने सैकड़ो लिखे हैं जिनमे इनकी अध्ययन-शीलता और सूक्ष्म बुद्धि का परिचय मिलता है। इनके रचे ग्रन्थो के नाम ये हैं—

(१) ध्रुवतारा (उपन्यास), (२) तिरंगा झंडा (उपन्यास), (३) आधीरात (नाटक), (४) पतित का स्वर्ग (नाटक), (५) जीवन का सत्य (नाटक) और (६) विष का प्याला (नाटक)।

नागरजी को हिन्दी के प्रति जो सहज, स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक प्रेरणा है उसका निदर्शन उनके लेख, उनकी कहानियाँ उनके गद्य काव्य आदि सभी मे मिलता है। ये संस्कृत-प्रधान हिन्दी के पक्षपाती हैं, पर साथ ही अंग्रेजी व अर्बी-फार्सी के जन-प्रचलित शब्दो का बहिष्कार करने के पक्ष मे भी नही हैं। उनकी भाषा विषय के अनुसार चलती है। यदि विषय गंभीर हुआ तो भाषा कुछ कठिन और साधारण हुआ तो सरल रहती है। इनके गद्य का थोड़ा सा अंश हम नीचे उद्धृत करते हैं जो इनकी भाषा शैली का अच्छा प्रतिनिधित्व करता है—

'अभी गये सप्ताह देशी नरेशो की कान्फ्रेंस मे भाषण देते हुए भारत के अन्तिम वायसराय लॉर्ड माउन्टबेटन ने कहा था कि प्रत्येक रियासत को किसी भी विधान परिषद मे शामिल हो जाना चाहिए। इस भाषण की आलोचना करते हुए महात्मा गाधी ने कहा था कि वायसराय ने राजाओ को तो उपदेश दिया है और उनकी सुरक्षा का आश्वासन भी दे दिया है। पर प्रजा के सबध मे कुछ भी नही कहा इसका अफसोस है। गाधीजी ने इस विषय

में जो इशारा किया वह कम महत्व का नहीं है। इसका मतलब है कि वायसराय ने जनता की माँग की ओर ध्यान नही दिया है। अच्छा होता वायसराय अपने भाषण मे उत्तरदायी शासन स्थापित करने के लिए भी राजाओ से कहते। जनता के हृदय मे अब राजा महाराजाओ की ज्यादतियो ने असन्तोष पैदा कर दिया है। इसलिए भी यह आवश्यक था कि वायसराय राजाओ के साथ प्रजा के सबध को दृढ और सुन्दर बनाने के लिए कुछ वाक्य कह देते। पर अग्रेजो की तो सदा यह नीति रही है कि फूट डालो और स्वार्थ पूरा करो, फिर उनसे हम यह कैसे आशा कर सकते है? अग्रेज जा तो रहे है पर भारत मे अपने लिए स्थान जरूर बनाये रखना चाहते है। इसलिए इस तरह के कूटनीति-पूर्ण भाषण बार-बार दे दिया करते है, अलग-अलग पार्टिओ से अलग-अलग बातें करते हैं, अलग-अलग समझौते करते हैं। काश, जाते-जाते भी यदि अग्रेज हिन्दुस्तानियो के दिल मे विश्वास पैदा कर देते।"

अगरचन्द

ये बीकानेर के प्रसिद्ध सेठ स्वर्गीय शकरदानजी नाहटा के पुत्र है। इनका जन्म स० १९६७ मे हुआ। ये जैन मतावलबी और जैन साहित्यानुरागी हैं। इन्होंने 'युग प्रधान श्री जिनचन्द्र', 'ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह' इत्यादि ७।८ ग्रन्थो का प्रणयन-सपादन किया है और एक भारी सख्या मे फुटकर लेख लिखे है जिनसे जैन साहित्य व हिन्दी साहित्य से सबद्ध अनेकानेक तमाच्छन्न तथा सदिग्ध वृत्तो पर अच्छा प्रकाश पडता है।

नाहटाजी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाओ के सुज्ञाता एव हिन्दी के सुयोग्य लेखक है और बडी लगन तथा सच्चाई से साहित्य-सेवा कर रहे है। साहित्यान्वेषण की इनको धुन है। साथ ही सूझ और योग्यता

भी है। साफ सोचते और साफ लिखते है। इनकी भापा सरल और शैली हृदयग्राही होती है। स्पष्टवादिता और व्यग का सामजस्य उसे और भी आकर्षक वना देता है। उदाहरण लीजिए—

"हिन्दी साहित्य की खोज-शोध का कार्य अभी वहुत ही मन्द गति से चल रहा है। पचास वर्षों से खोज होते रहने पर भी सैकडो उल्लेखनीय कवियो एव महत्वपूर्ण ग्रन्थो से हिन्दी जगत अभी तक अपरिचित है। नाम के लिए हिन्दी साहित्य के वीसियो इतिहास प्रकाशित हो चुके और हो रहे है, पर उनमे नवीन अन्वेपण वहुत कम क्या विलकुल नही दिखाई पडता। फलत शिवसिंह सरोज और मिश्रवन्धु-विनोद की सैकडो भद्दी भूलें अभी तक ज्यो-की-त्यो चली आ रही हैं। साहित्य का इतिहास लिखने के लिए साहित्य-शास्त्र और इतिहास दोनो का अध्ययन और अनुभव होना आवश्यक है। पर हमारे हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखको मे ऐतिहासिक दृष्टि का प्राय अभाव-सा है। स्वतन्त्र शोध करनेवाले विद्वान् नही के वरावर हैं। अधिकाश इतिहास-लेखक अपने से पूर्व के लेखको का अनुकरण मात्र करते हैं। भारत की प्रधान भाषा हिन्दी के लिए यह वात अशोभनीय है।"

कन्हैयालाल सहल

इनका जन्म स० १९६८ मे नवलगढ मे हुआ। स० १९९४ मे इन्होने आगरा विश्वविद्यालय से हिन्दी मे और स० २००१ मे सस्कृत मे एम० ए० किया। ये दोनो परीक्षाएँ इन्होंने प्रथम श्रेणी मे पास की है। इस समय ये विडला कालेज, पिलाणी मे हिन्दी-सस्कृत विभाग के अध्यक्ष है।

सहलजी हिन्दी के प्रतिष्ठावान लेखक और सुयोग्य समालोचक हैं। इन्होने चौवोली, हरजस वावनी, राजस्थानी कहावतें और राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद नामक चार ग्रथो का संग्रह-प्रणयन किया है और फुट-

कर लेख भी अनेक लिखे है जो इनकी गभीर और विवेचनात्मक शैली के अच्छे परिचायक है। इन लेखो का एक सग्रह 'सामीक्षाजलि' नाम से छप भी चुका है।

सहलजी सस्कृत गर्भित और सुष्ठु भाषा लिखते हैं जिसमे अग्रेजी शब्दो का प्रयोग तो कही-कही मिलता है पर अर्बी फारसी शब्दो का नही मिलता। इनके विषय-विवेचन मे गभीर चिंतन का प्राधान्य रहता है और विषय के अनुरूप शैली भी प्रौढ एव गुफित रहती है। उदाहरण लीजिए—

"अमेरिका के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक एडलर अपने को तुच्छ समझने की वृत्ति, (Inferiority - Complex) के जन्मदाता है। इस सिद्धात के अनुसार मनुष्य के सपूर्ण-कार्य-व्यापार का आधार उसकी हीनता या क्षुद्रता के अनुभव मे है। वह अपने अह को अक्षुण्ण रखने के प्रयत्न मे बचपन से ही लग जाता है वह अनेक उपायो द्वारा अपने अस्तित्व को महत्वपूर्ण और दर्शनीय बनाने की चेष्टा मे लगा रहता है। वह समाज मे-अपने व्यक्तित्व को एक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व के रूप मे देखना चाहता है। मनुष्य जब यह अनुभव करता है कि समाज मे उसकी अनुपयोगिता के कारण उसका कोई उल्लेखनीय अस्तित्व ही नही है, तब वह अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए कला की सृष्टि करने मे प्रवृत्त होता है।"

उल्लिखित लेखको के अतिरिक्त भी अनेक शक्तिशाली लेखको ने हिन्दी व राजस्थानी साहित्य की श्री वृद्धि की है और कर रहे हैं। इनमे सर्वश्री अम्बिकादत्त व्यास, समर्थदान, रामनाथ रत्नू, चन्द्रधर गुलेरी, किशोरसिंह बारहठ, कल्याणसिंह सेखावत, रामनारायण दूगड, गोविन्द नारायण आसोपा, सुन्दरलाल गर्ग, डा० मथुरालाल शर्मा, डा० दशरथ शर्मा, जगदीशसिंह गहलोत, हरविलास सारडा, रामनिवास शर्मा, हनुमान शर्मा चतुर्भुजदास चतुर्वेदी, प्रभुनारायण शर्मा इत्यादि मुख्य है।

आठवाँ प्रकरण

उपसंहार

पिछले पृष्ठो मे राजस्थानी साहित्य के लगभग एक हजार वर्षों के इतिहास का सक्षेप में दिग्दर्शन कराया गया है। अब यह देखना शेष रह गया है कि इस समय राजस्थान मे कौन-कौन सी साहित्यिक प्रवृत्तियाँ चल रही हैं और उनका भविष्य कैसा है।

कविता

जैसा कि पहले निर्देश किया जा चुका है राजस्थान के कवि अधुना ब्रजभाषा, खडीबोली और राजस्थानी तीनों मे कविता कर रहे है। ब्रज-भाषा के कवियो मे कोई मौलिकता और नवीनता दृष्टिगोचर नही होती। अधिकाश कवि सूर, तुलसी, बिहारी, मतिराम, भूषण, देव, पद्माकर आदि प्राचीन कवियों के भावों की पुनरावृत्ति कर रहे हैं। छंद भी इनके वही पुराने हैं— कवित्त, सवैया और दोहा। मालूम नही, क्यों ये लोग इस तरह ब्रजभाषा के पीछे पडे हुए है। अधिकाश को न तो ब्रजभाषा के व्याकरण का ज्ञान है, न उसकी उच्चारण सबधी विशेषताओ का पता है और न उसकी अन्यान्य सूक्ष्मताओ से परिचित है। इसमे सन्देह नही कि इनमे कुछ ऐसे कवि है जिनमे कविता करने की जन्मसिद्ध प्रतिभा विद्यमान है। परन्तु ब्रजभाषा के प्रति अत्यधिक मोह होने के कारण ये पूरी तरह से विकसित नही हो पा रहे हैं। यदि ये लोग ब्रजभाषा को छोडकर अपनी मातृभाषा मे कविता

करना प्रारंभ करे तो अपना और साहित्य दोनो का बहुत कुछ उपकार कर सकते हैं।

खडी बोली के कवि राजस्थान मे सैकडो है और कुछ ने अच्छी ख्याति भी प्राप्त की है। परन्तु अधिकाश की रचनाओ मे प्राय वही दूषण पाये जाते है जो राजस्थान के बाहर के खडी बोली के अधिकाश कवियो मे देखने मे आते हैं। ये लोग कविता करते हैं और कवि कहलाते हैं पर कविता क्या वस्तु है, इस बात का ज्ञान इनको नही है। ईश्वर-प्रदत्त कवित्व शक्ति के साथ-ही-साथ एक सच्चे कवि को रस, अलकार, छद आदि काव्यागो का अच्छा बोध होना चाहिए, और शब्द-भाडार पर पूरा अधिकार होना तो आवश्यक है ही, परन्तु ये लोग इन गुणो से सर्वथा शून्य पाये जाते हैं। ये ऐसे क्लिष्ट शब्दो का प्रयोग करते है कि जिनका अर्थ खुद नही समझते। इनके कान भी इतने सधे हुए नही है कि जिससे इस बात का विवेक हो सके कि अमुक शब्द कर्ण-कटु और अमुक कर्ण-मधुर है। भाषा की अशुद्धता के सबध मे तो कुछ न कहना ही अच्छा है।

व्रजभाषा और खडी बोली के कवियो की अपेक्षा राजस्थानी भाषा के कवियो का काम अधिक उत्तम है। पेशेदार जातियो के कवियो की बात तो जाने दीजिए, क्योंकि वे तो अभी तक ठकुर-सुहाती और नरेश-भक्ति के दलदल ही मे फँसे पडे है और स्वतन्त्रता के इस नवीन युग, नवीन वातावरण मे भी उन्हे राजा-महाराजा 'कर्ण', 'कल्पवृक्ष' और 'पार्थ' दिखाई दे रहे हैं। परन्तु इतर कवियो ने बहुत उच्च कोटि की रचनाएँ प्रस्तुत की है और कर रहे है। विशेषकर इनकी फुटकर कविताएँ बहुत ही सुन्दर तथा भावपूर्ण बन पडी है। इस तरह की कविता करनेवालो मे सर्वश्री कन्हैयालाल सेठिया, रामनिवास हारीत, मेघराज मुकुल, भरत व्यास, कुवर मोतीसिह, सच्चिदानन्द शर्मा, गणपति स्वामी, कुवर चोकळासिह आदि प्रधान हैं।

राजस्थान के जिन कवियो को राजस्थानी और खडी वोली दोनो मे काव्य रचना का अभ्यास है उनसे हम कुछ निवेदन करना चाहते हैं। वात यह है कि भापा का विपय से घनिष्ठ सवध रहता है। यही वात छदो के सवध मे भी कही जा सकती है। वाल्मीकि रामायण का अग्रेजी अनुवाद पढते समय हमारे मन में रामचन्द्र के प्रति वह भक्ति पैदा नही होती जो सस्कृत-छदो मे लिखे मूल ग्रन्थ को पढने से होती है। अग्रेजी अनुवाद पढते समय ऐसा मालूम पडता है मानो हम राविन्सन क्रूसो अथवा हातिम-ताई का किस्सा पढ रहे है। अत ग्रथारभ करने से पूर्व हमारे कवियो को यह सोचना चाहिए कि उनकी भापा और छद विपय के साथ मेल खाते है या नहीं। अर्थात् उनको यह देखना चाहिए कि अपने काव्य के लिए जो विपय उन्होने विचारा है उसका निर्वाह राजस्थानी भापा और राजस्थानी छदो मे अधिक अच्छा हो सकेगा या खडी वोली और खडी वोली के छदो मे। वस्तुत विपय के अनुरूप भापा और छन्द चुनना भी कवि-कर्म ही है। श्रीपतराम गौड-रचित 'रेगिस्तान' एक अनूठा खड काव्य है। इसमे राजस्थान का वातावरण है। राजस्थान की प्राकृतिक शोभा का मनोहर चित्रण है। परन्तु खडी वोली मे होने से इसकी कान्ति कुछ फीकी पड गई है। यदि यही राजस्थानी मे रचा गया होता तो वात ही दूसरी होती। दूसरा उदाहरण चद्रसिह कृत 'वादळी' का लीजिये। यह राजस्थानी भापा की एक नवीन ढग की रचना है। पर दोहा छद मे लिखी होने से नवीन होते हुए भी प्राचीन-सी मालूम देती है। किसी पुरानी मोटर गाडी के कुछ कल-पुर्जे नये वदल देने से वह नई नही कहला सकती। नई तभी कहलायगी जव उसके सभी भाग नये होगे।

राजस्थान मे चद, मीरां, पृथ्वीराज, वृन्द, नागरीदास आदि अनेक एक-से-एक वढकर कवि हो गये है और इनकी अमर रचनाओ के सामने आजकल के कवियो की कृतियाँ साधारण कोटि की दीख पडती हैं।

परन्तु यह सब होते हुए भी भारत के अन्य प्रान्तो की तुलना मे काव्य-प्रतिभा की दृष्टि से राजस्थान गरीब नही है।

नाटक

अच्छे नाटक राजस्थान मे बहुत थोडे लिखे गये हैं। सर्वप्रथम स्वर्गीय अंबिकादत्त व्यास ने नाटक-रचना का सूत्रपात किया था। इनके पश्चात् शिवचन्द्र भरतिया ने राजस्थानी भाषा मे 'केसर विलास', 'बुढापा की सगाई', "फाट का जजाल" इत्यादि नाटक रचे जो बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुए। तदन्तर हिन्दी-राजस्थानी मे छोटे-मोटे अनेक नाटक यहाँ रचे गये परन्तु विशेष आदर न पा सके, स्कूल-कॉलेजो की नाटक-मडलियो के बाहर उनका प्रचार नही हुआ। इस समय राजस्थान मे प० चतुर्भुजदास, प० प्रभुनारायण, प० ज्ञानदत्त, प० जनार्दन राय, श्रीकृष्णलाल वर्मा आदि अच्छे नाटककार हैं और इन्होंने नाट्य साहित्य की उन्नति के लिए प्रशसनीय प्रयत्न किया है। परन्तु इनमे कोई ऐसा नही है जिसकी कीर्त्ति राजस्थान की सीमाओ को लाँघकर बाहर पहुँची हो।

उपन्यास

उपन्यासो की दृष्टि से भी राजस्थान विशेष धनी नही है। प० लज्जाराम मेहता के उपन्यासो का कुछ वर्ष पूर्व अच्छा प्रचार था। पर आजकल उन्हे कोई नही पढता। वे पुराने हो गए है। ठा० कल्याणसिंह शेखावत का 'शुक्ल और सोफिया', चादकरण सारडा का 'कालेज हॉस्टल' सुन्दरलाल गर्ग का 'अभागिनी' इत्यादि उपन्यास काफी रोचक है। परन्तु कथानक, घटना वचित्र्य, चरित्र-चित्रण इत्यादि की दृष्टि से ये सर्वथा निर्दोष नही है। राजस्थानी भाषा मे तो अभी तक एक भी उपन्यास नही लिखा गया है। वस्तुत, उपन्यास-रचना का समूचा क्षेत्र राजस्थान मे एक तरह से खाली ही पडा है।

कहानी

कहानी को राजस्थानी मे 'वात' कहते है। वात साहित्य अथवा कहानी-साहित्य राजस्थान मे प्रचुर मात्रा मे रचा गया है और काफी प्राचीन भी है। आज से कोई ६०० वर्ष पहले की लिखी कहानियाँ उपलब्ध है जो गद्य और पद्य दोनों मे है। इनमे धार्मिक, नैतिक, पौराणिक, ऐतिहासिक आदि विभिन्न विषयो का अभिव्यजन बहुत सीधी-सादी भाषा और रोचक शैली मे किया मिलता है। परन्तु आधुनिक ढग की कहानियाँ लिखने की परिपाटी चालीस वर्ष से अधिक पुरानी नही है। इसका श्रीगणेश चन्द्रधर गुलेरी ने किया था। इनकी 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियो मे से एक है और हिन्दी साहित्य की अमूल्य थाती समझी जाती है। स्वर्गीय मुन्दरलाल शर्मा कुशल कहानीकार थे। इनकी कहानियो का एक सग्रह 'पात-फूल' नाम से प्रकाशित भी हुआ है। प० जनार्दन राय नागर भी अच्छे कहानी-लेखक है। इनकी कुछ कहानियो की प्रेमचन्द, जैनेन्द्र आदि ने बहुत बडाई की है। कुछ का गुजराती आदि अन्य भाषाओ मे भी अनुवाद हुआ है। इनके अतिरिक्त और भी अनेक नवयुवक कहानी-लेखक है जिनकी कहानियाँ सामयिक पत्र-पत्रिकाओ मे छपा करती है।

निबध

राजस्थान का निबन्ध साहित्य काफी उन्नत अवस्था मे है। साहित्य, कला, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र आदि अनेकानेक विषयो पर विद्वत्तापूर्ण लेख लिखकर यहाँ के साहित्यकारो ने हिन्दी-राजस्थानी के निबन्ध साहित्य को समृद्ध बनाया है। इनमे कुछ निबन्ध तो ऐसे लिखे गये है जिन्होने हिन्दी साहित्य को स्थायी गौरव प्रदान किया है। उदाहरण के लिए स्वर्गीय चन्द्रधर गुलेरी का 'पुरानी हिन्दी' और डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा

का 'पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल' शीर्षक लेख इसी कोटि के हैं। आजकल वर्णनात्मक निबन्धों के अतिरिक्त भावनात्मक एव विचारात्मक निबन्ध भी लिखे जा रहे है जिनमें विभिन्न शैलियों का प्रयोग पाया जाता है।

समालोचना

समालोचक प्राय सभी देशों मे कम ही पाये जाते हैं। राजस्थान में भी इनकी सख्या अधिक नहीं है। स्वर्गीय सूर्यकरण पारीक बहुत उच्चकोटि के समालोचक थे। उनकी समालोचनाएँ बहुत गभीर, निष्पक्ष एव विद्वत्तापूर्ण हुआ करती थीं। उनकी असामयिक मृत्यु से राजस्थान की बहुत हानि हुई है। वर्तमान समालोचको मे श्री रामकृष्ण शुक्ल, श्री नरोत्तमदास स्वामी और श्री कन्हैयालाल सहल के नाम उल्लेखनीय हैं।

इतिहास

राजस्थान एक इतिहास-प्रसिद्ध देश है। यहाँ के निवासियो मे इति-हास के प्रति स्वाभाविक अनुराग पाया जाता है और अपने पूर्वजो की गौरव-गाथाएँ सुनने-सुनाने मे ये बडा रस लेते हैं। अत इतिहास-विषयक कार्य यहा विशेष हुआ है जो विशद भी है और प्रामाणिक भी। यहाँ के इतिहासकारो मे सर्वोच्च स्थान डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा का है। ये अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के पुरुष थे। इनको राजस्थान का 'गिबन' कहा गया है। इनके अतिरिक्त सर्वश्री कविराजा श्यामलदास, मुन्शी देवीप्रसाद, रामनाथ रत्नू, रामनारायण दूगड, रामकर्ण आसोपा, हरविलास सारडा, डा० रघुवीरसिंह, विश्वेश्वरनाथ रेउ, पृथ्वीसिंह मेहता, डा० मथुरालाल शर्मा, डा० दशरथ शर्मा, झाबरमल शर्मा, जगदीशसिंह गहलोत, हनुमान शर्मा इत्यादि और भी अनेक प्रतिष्ठावान इतिहास लेखक हुए हैं जिनके ग्रन्थों का विद्वानो मे बडा आदर है। इनमे से कुछ महाशय अब भी मौजूद हैं तथा इतिहास सबधी कार्य कर रहे हैं।

समाचार-पत्र

राजस्थान के समाचार पत्रों की जो दयनीय दशा आज से पाँच-सात वर्ष पूर्व थी वैसी इस समय नहीं है। द्वितीय महायुद्ध के पहले यहाँ केवल दस-बारह पत्र निकलते थे, जो सभी साप्ताहिक थे। परन्तु आज इनकी संख्या पचास तक पहुँच गई है। इनमें पाँच दैनिक व शेष साप्ताहिक हैं। दैनिक पत्रों के नाम हैं 'लोकवाणी' (जयपुर), 'जयभूमि' (जयपुर), 'राष्ट्रनायक' (जोधपुर), 'रियासती' (जोधपुर) और 'नवज्योति' (अजमेर)। इनके अतिरिक्त 'रचना', 'उदय', 'राजस्थान-क्षितिज' आदि दो-चार मासिक पत्र भी यहाँ से निकल रहे हैं। इन पत्रों में से अधिकांश ने राष्ट्रीयता के प्रचार तथा पुरानी स्वेच्छाचारी शासन-व्यवस्था को जर्जरित करने में अच्छा योग दिया है और आज भी अपने पथ पर अटल हैं। इसमें सन्देह नहीं कि स्वच्छ पत्रकारिता की दृष्टि से इनमें कुछ त्रुटियाँ हैं, परन्तु जिस गति से ये उत्तरोत्तर उन्नति कर रहे हैं उसको देखते हुए इनका भविष्य बहुत ही उज्ज्वल और आशाजनक दिखाई पड़ता है।

शोध-कार्य

राजस्थान साहित्यिक सम्पत्ति का खजाना है। साहित्य-विषयक अतुल सामग्री यहाँ के विभिन्न जैन भंडारों, उपासरों, रामद्वारों, अस्थलों, मठों, राजकीय पुस्तकालयों एवं चारण-भाटों के घरों में अस्त-व्यस्त दशा में पड़ी हुई है जिसकी रक्षा करना परम आवश्यक है। कर्नल टॉड, डा० टैसीटरी, मुंशी देवीप्रसाद, पुरोहित हरिनारायण इत्यादि विद्वानों के उद्योगों से इस सामग्री का जो अंश अभी तक प्रकाश में आया है वह सम्पूर्ण अज्ञात सामग्री का शतांश भी नहीं है। वस्तुतः यह काम अभी तक ज्यों-का-त्यों अधूरा पड़ा है और जब तक यह पूरा नहीं हो जाता तब तक हिन्दी अथवा

राजस्थानी साहित्य का प्रामाणिक व पूर्ण इतिहास लिखा जाना सम्भव नही है।

हर्ष का विषय है कि राजस्थान के आधुनिक कुछ विद्वानो का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है और वे इस दिशा मे बहुत प्रशनीय कार्य कर रहे हैं। इनमे श्री अगरचन्द नाहटा, डा० रघुवीरसिंह, श्री नरोत्तमदास श्री कन्हैयालाल सहल, श्रीपतराम गौड, श्री रावत सारस्वत इत्यादि मुख्य है।

हिन्दी विद्यापीठ (उदयपुर) श्री मादूळ राजस्थानी रिसर्च इस्टीट्यूट (बीकानेर), बगाल हिन्दी मडल (कलकत्ता) इत्यादि सस्थाओ के तत्वावधान मे भी यह कार्य हो रहा है। शोध विषयक दो-एक त्रैमासिक पत्रिकाएँ भी निकल रही है। परन्तु कार्य के महत्व और उसकी विशालता को देखते हुए अधिक सगठित प्रयत्नो की आवश्यकता है। हमारे खयाल से नागरी प्रचारिणी सभा (काशी), हिन्दी-साहित्य सम्मेलन (प्रयाग), भडारकर ओरियटल रिसर्च इस्टीटयूट (पूना) और रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑव बगाल (कलकत्ता) मे से किसी को, जो समर्थ भी है और जिनका मुख्य काम यही है, यह काम हाथ मे लेना चाहिए। क्योकि यह कार्य केवल स्थानीय महत्व का नही, बल्कि भारतीय महत्व एव भारतीय साहित्य और सस्कृति की रक्षा का है।

अत मे राजस्थान के साहित्यकारो की कतिपय कठिनाइयो का उल्लेख कर देना भी यहाँ आवश्यक जान पडता है। भाषा साहित्य, सस्कृति इतिहास, जन-तत्व, रहन-सहन आदि की दृष्टि से राजस्थान अपने आप मे एक पूरी इकाई है, पर राजनीतिक दृष्टि से विभिन्न भागो मे बँटा हुआ होने से यहाँ के साहित्यकारो का सगठन नही हो सका है और इस समय भी नही है। फलत जगल मे रास्ता भूले हुए बटोहियो की तरह ये दिशा शून्य-से भटकते नजर आते हैं। एक ही तरह का काम अलग-अलग व्यक्ति एव साहित्य-

समितियाँ अलग-अलग स्थानो पर कर रही है और मनमानी प्रणाली से कर रही है। इसलिए श्रम, शक्ति और द्रव्य सभी का अपव्यय हो रहा है। यदि नागरी प्रचारिणी सभा अथवा हिन्दी साहित्य सम्मेलन जैसी कोई सस्था यहाँ होती तो कदाचित् ऐसा न हो पाता।

दूसरे, यहाँ के साहित्यकारो और पत्र-सपादको मे यथेष्ट मेल नही है। यहाँ के सपादक लोग अपने पत्रो मे राजनीतिक-विषयक लेख-कविताओ को अधिक स्थान देते आये है और विशुद्ध साहित्यिक रचनाओ की अवहेलना की है। देश स्वतन्त्र हो गया है, पर इस समय भी वही स्थिति है। अत या तो इन सपादको को अपना दृष्टिकोण बदलना चाहिये या नई शुद्ध साहित्यिक पत्रिकाएँ निकालना चाहिए जिसमे ऊँचे साहित्य का पोषण और विकास हो सके।

इसके अतिरिक्त प्रचार, प्रकाशन, प्रेस, सार्वलौकिक मच इत्यादि की और भी अनेक ऐसी असुविधाओ का सामना यहाँ के साहित्यिको को करना पडता है जिनका अनुमान बाहरवालो को नही हो सकता।

इन सब कठिनाइयो के होते हुए भी पिछले १०–१२ वर्षों मे राजस्थान मे प्राचीन साहित्य के अनुसधान और नवीन साहित्य के निर्माण का आशातीत कार्य हुआ है। इधर देश की स्वतन्त्रता ने तो यहाँ के साहित्यकारो मे नया जीवन ही फूक दिया है।

विगत शताब्दियो मे राजस्थान ने भारतीय साहित्य एव सभ्यता को अपूर्व बल दिया है। आगे भी यह उसी तरह योगदान देता रहेगा, इस मनोकामना के साथ हम इस विषय को समाप्त करते है।

सहायक ग्रंथ

(हस्तलिखित)

अचळदास खीची री वचनिका (शिवदास)
अभियविलास (खेतसी)
अवतार चरित्र (नरहरिदास)
अश्वमेघ यज्ञ (मुरली)
इच्छा-विवेक (जसवन्तसिंह)
कविवल्लभ (हरिचरणदास)
गुण-गोविन्द (कल्याणदास भाट)
गुण रूपक (केशवदास गाडण)
चद कुवर री वात (प्रतापसिंह)
चदन मलयागिर री वात (भद्रसेन)
जगविलास (नदराम)
ढोरा मारू री चौपई (कुशललाभ)
तत्ववेत्ता रा सवैया (तत्ववेत्ता)
प्रिया-विनोद (मुरली)
दसम भागवत रा दूहा (पृथ्वीराज)
नागदमण (साँया जी)
नेहतरग (वुधसिंह)
पच सहेली रा दूहा (छीहल)
पद्मिनी चरित्र (लब्बोदय)
पद्मिनी चौपई (हेमरत्न)
परसरामसागर (परशुराम)
पृथ्वीराज रासौ (चद)
विडद सिणगार (करणीदान)
वुद्धिरासौ (जल्ह)
भक्तमाल (नाभादास)
भक्तमाल की टीका (प्रियादास)
भक्तमाल की टीका (वालकराम)
भापा भारथ (खेतसी)
भापा भूपण (जसवतसिंह)
भीमप्रकाश (रामदान)
भीमविलास (किशन जी आढा)
मूता नैणसी री ख्यात (नैणीस)
रघुवर जस प्रकास (किशन जी आढा)
रस मजरी (जान)
रसिकप्रिया की टीका (कुशलधीर)
राजप्रकास (किशोरदास)
राजविलास (मानजी)
राणा रासौ (दयाराम)
राम रासौ (माधोदास)
रुक्मणी हरण (साँया जी)
वचनिका राठौड रतनसिंह महेस दासोतरी (जग्गा जी)
व्रजराज-पचावली (जवानसिंह)
वाराणसी विलास (देवकर्ण)
विक्रम पच दड (नरपति)
विजयविलास (करणीदान)
विनोदरस (सुमति हस)
वीरमाण (ढाढी वादर)

वीर सतसई (सूरजमल)
वेलि क्रिसन रुकमणी री (पृथ्वीराज)
वेलि क्रिसन रुकमणी री टीका (अज्ञात)
वेलि क्रिसन रुकमणी री टीका (कुशलधीर)
वेलि क्रिसन रुकमणी री टीका (शिवनिधि)
शत्रुसाल रासौ (डूगरसी)
शिकारभाव (नदराम)
समतसार (साँईदान)
सगतसिंह रासौ (गिरधर)
सूरज प्रकास (करणीदान)
हरिपिंगल प्रबन्ध (जोगीदास)
हरिरस (ईसरदास)
हालाँ-झालाँ रा कुंडळिया (ईसर-दास)

(मुद्रित)

हिन्दी राजस्थानी

अलकार रत्नाकर (दलपतराय-वसीधर)
आदर्श नरेश (झावरमल)
आप बीती (लज्जाराम)
उदय-प्रकाश (किशन जी)
ऊमर-काव्य (ऊमरदान)
ऐतिहासिक जैन-काव्य सग्रह (अगरचन्द)
कवि-रत्नमाला (देवी प्रसाद)
केसरीसिंह-समर (हरिनाभ)
केहर-प्रकाश (बख्तावर जी)
कोटा राज्य का इतिहास (डा० मथुरालाल)
गीत-मजरी (श्री सादूळ प्राच्य ग्रथमाला)
चतुर-चिंतामणि (चतुरसिंह)
छद राव जैतसी रो (डा० टैसी-टरी)
जसवत जसो भूषण (मुरारिदान)
जौहर (सुधीद्र)
डिंगल-कोश (मुरारिदान)
डिंगल मे वीररस (मोतीलाल मेनारिया)
ढोला मारु रा दूहा (नागरी प्रचा-रिणी सभा)
देश के इतिहास मे मारवाडी जाति का स्थान (बालचद)
नटनागर-विनोद (नटनागर)
नागर समुच्चय (नागरीदास)
पाडव यशेन्दु-चन्द्रिका (स्वरूपदास)
पुरातन प्रबन्ध-सग्रह (जिनविजय)
पृथ्वीराज रासौ (काशी नागरी प्रचारिणी सभा)
पृथ्वीराज रासौ (दि रॉयल एशियाटिक सोसायटी)
पृथ्वीराज रासौ (मथुराप्रसाद दीक्षित)
प्रताप-चरित्र (केसरीसिंह)
बाकीदास-ग्रन्थावली- भाग १—३ (काशी नागरी प्रचारिणी सभा)
बादळी (चन्द्रसिंह)
बापू (घनश्यामदास)
बीसलदेव रासौ (काशी नागरी

प्रचारिणी सभा)
बुढापा की सगाई (शिवचन्द्र)
भारत के देशी राज्य (सुख सपति राय)
महाराणा यश प्रकाश (भूरसिंह)
मारवाड का इतिहास (विश्वेश्वर नाथ रेउ)
मारवाडी व्याकरण (गमकर्ण)
मिश्रबन्धु-विनोद भाग २–४ मिश्र बन्धु)
मोहन-विनोद (रामसिंह)
रघुनाथ-रूपक (काशी नागरी प्रचारिणी सभा)
राजपूताने का इतिहास (ओझा)
राज रसनामृत (देवी प्रसाद)
राजरूपक (काशी नागरी प्रचारिणी सभा)
राज-विलास (काशी नागरी प्रचारिणी सभा)
राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रथो की खोज (मोतीलाल मेनारिया)
राजस्थान रा दूहा (नरोत्तमदास)
राजस्थानी साहित्य की रूप-रेखा (मोतीलाल मेनारिया)
राजिया रा दूहा (कृपाराम)
रेगिस्तान (पतराम गौड)
वंश-भास्कर (सूरजमल)
विरुद्ध छहत्तरी (दुरसाजी)
वीरविनोद (श्यामलदास)
वीरविनोद (गणेशपुरी)
वेलि क्रिसन रुकमणी री (हिन्दुस्तानी एकेडमी)
वेलि क्रिसन रुकमणी री (डा० टैसीटरी)
व्रजनिधि ग्रथावली (हरिनारायण)
व्रजमाधुरी सार (वियोगीहरि)
शबनम (दिनेशनंदिनी)
शिवसिंह सरोज (शिवसिंह)
शेषस्मृतियाँ (डा० रघुवीरसिंह)
सतवाणी-सग्रह (वेलवेडियर प्रेस)
सतसई (बिहारीलाल)
समीक्षाजली (कन्हैयालाल सहल)
सुन्दर-ग्रन्थावली (हरिनारायण)
स्त्री कवि-कौमुदी (ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल')
हमीर रासौ (जोधपुर)
हरिरस (ईसरदास)
हिन्दी साहित्य का इतिहास (रामचन्द्र शुक्ल)

गुजराती

कवि-चरित, भाग पहला (केशवराम काशीराम)
चारणो अने चारणी साहित्य (झवेर चन्द्र मेघाणी)
जैन गुर्जर कविओ, भाग १–४ (मोहनलाल दलीचद देसाई)
प्राचीन गुर्जर काव्य (केशवलाल हर्षदराय)
प्राचीन गुजराती गद्य-सदर्भ (मुनि जिन विजय)
बृहत काव्य दोहन, भाग ७ (इच्छाराम-सूर्यराम)

संस्कृत

काव्यप्रकाश (मम्मट)
पाइअ-सद्द-महण्णवो (हरगोविन्द-दास-त्रिकमचन्द
पृथ्वीराज विजय महाकाव्य (जयानक)
प्राकृतपैंगल (एशियाटिक सोसाइटी)
राजप्रशस्ति महाकाव्य (रणछोड भट्ट)
यजुर्वेद संहिता (आर्य्य साहित्य मंडल)

अंग्रेजी

A Descriptive (Catalog-ue of Bardic and Historical Manuscripts—Part I & II Dr L. P. Tessitori)
Annals and Antiquities of Rajasthan (Col Tod)
Gujarat and Its Literature—K M. Munshi)
History of Classical Sanskrit Literature (Krishnamachariar)
Linguistic Survey of India, Vol IX, Pt II '(Dr G. A. Grierson)
Preliminary Report on the Operation in Search of Mss of Bardic Chronicles (Haraprasad)
Rajputana Gazetteer

पत्र-पत्रिकाएँ

जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल
नागरी प्रचारिणी पत्रिका
भारतीय विद्या
राजस्थान भारती
क्षात्र-धर्म संदेश
विशाल भारत
राजस्थानी
माधुरी
चारण

नामानुक्रमणिका

भारती
क्रमांक 15114
जयपुर